CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तान्त्रिक परम्परा

आचार्य डा. स्थानेश्वर तिमल्सिना

VIMARSHA FOUNDATION
ऋतं च सत्यं च

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तान्त्रिक परम्परा

रचयिता

आचार्य डा. स्थानेश्वर तिमल्सिना

अनुवादक

डा. माधवप्रसाद लामिछाने

प्रकाशक

VIMARSHA FOUNDATION
ऋतं च सत्यं च

Vimarsha Foundation

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तान्त्रिक परम्परा

रचयिता	:	आचार्य डा. स्थानेश्वर तिमल्सिना
अनुवादक	:	तन्त्राचार्य डा. माधवप्रसाद लामिछाने
प्रकाशक	:	विमर्श फाउन्डेशन
संस्करण	:	प्रथम, (५०० प्रति), २०८२
सर्वाधिकार	:	प्रकाशकाधीन
ISBN	:	978-9937-1-8682-7
आवरण लेआउट	:	हरि विक्रम विशंखे
मूल्य	:	₹ ४५०।-
मुद्रक	:	एनी टाइम प्रेस (+९७७-९८५११४८००५)

प्रकाशक की स्वीकृति विना इस पुस्तक के किसी भी अंश वा सम्पूर्ण पुस्तक किसी भी माध्यम से पुनरुत्पादन, प्रकाशन, फोटोकपी वा प्रसारण करना वर्जित है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रकाशकीय

विश्वव्यापी चेतना को विस्तारित करने के लिए ऋषिपरम्परा से प्राप्त पौरस्त्य ज्ञान का प्रवर्द्धन, प्रचारप्रसार, अनुसन्धान एवम् प्रकाशन, रचनात्मक संवाद के लिए चिन्तनशील परम्परा का विकास, धार्मिक एवम् दार्शनिक परम्परा का प्रयोगात्मक और वैज्ञानिक अनुभवजन्य निष्कर्ष का कार्यान्वयन, विश्वव्यापी दर्शनपरम्पराओं के बिच सहकार्य के लिए साझा मञ्च की सिर्जना आदि बृहत्तर उद्देश्य के साथ सन् २०१९ में स्थापित विमर्श फाउन्डेशन उपर्युक्त उद्देश्य प्राप्ति के लिए नियमित रूप से पौरस्त्य ज्ञानधारा को प्रवाहित करता आ रहा है।

इसी सन्दर्भ में इस फाउन्डेशन के संस्थापक आचार्य डा. स्थानेश्वर तिमल्सिनाद्वारा विरचित तथा डा. माधवप्रसाद लामिछानेद्वारा हिन्दी भाषा में अनूदित तान्त्रिक परम्परा शीर्षक की कृति प्रकाश में आई है। तन्त्रशास्त्र में रुचि रखने वाले जिज्ञासु पाठक तथा इस सम्बन्ध में अध्ययन तथा अनुसन्धान करने वालों के लिए यह कृति सहयोगी होगी, ऐसा विश्वास प्रकाशक को है। ऐसी महत्त्वपूर्ण कृति के लिए इसके रचयिता र अनुवादक दोनों को प्रकाशक की ओर से हार्दिक कृतज्ञता अर्पण करते हैं।

विमर्श फाउन्डेशन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनुवादक की ओर से

गत साल जनवरी माह मे इस पुस्तक का नेपाली संस्करण सार्वजनिक हुआ था। इस पुस्तक के सार्वजनिक होने की समाचार आते ही भारतीय मित्रों ने इस के हिन्दी संस्करण की आवश्यकता का स्मरण कराया। अतः इस पुस्तक को हिन्दी भाषा में अनुवाद करने का दायित्व भी मेरे ही कन्धे पर आ गया। इस पुस्तक में लेखक के कूल आठ आलेख शामिल हैं। इसके अलावा लेखक के संस्कृत में लिखा हुआ श्रीतन्त्रहृद्गह्वर और संवर्तस्तव नामक दो रचनायें भी शामिल हैं। लेखों को उनके शीर्षकों के वर्णानुक्रम अनुसार व्यवस्थित किया गया है।

मैं अपने आदरणीय गुरु जी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करना चाहता हूँ जिन्होंने मुझे विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित उनके लेखों को एकत्र करने और उन्हें आवश्यक संशोधन और परिष्कार के साथ पुस्तक के रूप में लाने का निर्देश दिया। साथ ही मैं नरेन्द्र भारद्वाज जी को धन्यवाद देना चाहता हूँ जिन्होंने आवश्यक परिष्कार और संशोधन में सहयोग किया।

इस पुस्तक को इस रूप में लाने के लिए टाइपसेटिंग, लेआउट और कवर सजावट में मदद करने के लिए हरिविक्रम विशंखे और एनी टाइम प्रेस बुद्धनगर के प्रोप्राइटर मानव के.सी., जिन्होंने निर्धारित समय के भीतर मुद्रण कार्य पूरा करने में मदद की, उनको और प्रेस के कर्मचारियों को धन्यवाद देता हूँ।

अन्त में, यदि मेरे भ्रम, प्रमाद और गलती के कारण कोई त्रुटि हुई हो तो मैं सभी से क्षमा चाहता हूँ।

यद्यत्र किञ्चित् स्खलितं प्रमादेन भ्रमेण वा।
तन्त्रज्ञास्तच्छोधयन्तु कस्य न स्खलितं मनः ॥

वि.सं. २०८२ आषाढ शुक्ल प्रतिपदा

डा. माधवप्रसाद लामिछाने
सहप्राध्यापक
पूर्वमीमांसा तथा तन्त्रविभाग
नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय,
वाल्मीकि विद्यापीठ, प्रदर्शनीमार्ग, काठमाडौँ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विषयसूची

१.	आत्मपूजा	१
२.	क्रमविमर्श	८
३.	तान्त्रिक परम्परा: एक विहंगम दृष्टि	२२
४.	पूजा रहस्य	३१
५.	भैरवविमर्श	४०
६.	भैरव समावेश का उपाय	९२
७.	भैरवाद्वैतवाद	९८
८.	महात्रिपुरसुन्दरी : एक चर्चा	१०८
९.	श्रीतन्त्रहृद्ह्वरः	१३७-१६४
	श्रीतत्त्वगर्भः	१३७
	श्रीचक्रगर्भः	१४४
	श्री–अर्चागर्भः	१५१
	श्रीमन्त्रविद्यागर्भः	१५८
१०.	संवर्तस्तवः	१६५
११.	सन्दर्भग्रन्थसूची	१७३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आत्मपूजा

स्वात्मैव देवता प्रोक्ता ललिता विश्वविग्रहा अर्थात् छत्तीस तत्त्वों से युक्त विश्वमय शरीरवाली ललिता त्रिपुरसुन्दरी देवी ही वास्तव में अपनी आत्मा है। यह वाक्य उपासकों के लिए विशेष महत्त्व रखता है। इस वाक्य में 'स्वात्मा' इस पद में 'स्व' और 'आत्मा', जीवात्मा और परमात्मा को निर्देश करता है। जीव का वास्तविक रूप आत्मा है, शिव ही है और शिव की जीवभाव काल्पनिक है जैसे रस्सी में साँप मिथ्याकल्पित है। 'देवता' शब्द का तात्पर्य सदैव गतिशील संवित् से है। शुद्ध संवित् से किसी भी अन्य सामग्री की अपेक्षा किए विना अपनी स्वतन्त्रता के माध्यम से सम्पूर्ण विकल्प का निर्माण होता है। देवता शब्द से समग्र प्रपञ्चमयता और उससे मुक्ति भी निर्दिष्ट होती है। ललिता शब्द भी देवत्व पर बल देता है। विश्वात्मकता केवल पराम्बा का खेल है इस विषय पर विशेष जोर दिया गया है। यहाँ 'विश्व' शब्द से शिव से लेकर पृथ्वी तक के छत्तीस तत्त्वों को माना गया है। संसार पराम्बा की मूर्ति या शरीर है।

चिदात्मैव हि देवोऽन्तःस्थितमिच्छावशाद् बहिः।
योगीव निरूपादानमर्थजातं प्रकाशयेत्॥

इस उक्ति के अनुसार, जिस प्रकार योगी विना किसी उपादान के जड़ को और संकल्पद्वारा जीवप्रपञ्च को प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार चिदात्मा भी अपने भीतर विकल्पभाव से विद्यमान सम्पूर्ण मेय पदार्थ को प्रकाशित करता है। यहाँ 'मेय' शब्द से न केवल 'स्थूल' प्राणीरूप प्रपञ्च बल्कि मन्त्रमहेश्वर का भी बोध होता है। परप्रमाता वास्तव में प्रमाता है क्योंकि वह किसी का प्रमेय नहीं हो सकता, वह हर किसी का प्रमाता है। चैतन्यस्वभाव शिव वास्तव में स्वयं को आत्मा और जीवभाव, जड़भाव आदि सभी रूपों में प्रकट करते हैं। आत्मा के इसी सत्य स्वरूप का उद्घाटन करना ही वास्तव में आत्मपूजा है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सबसे पहले, वह अत्यन्त अन्धकारपूर्ण स्थिति जिसमें जीव केवल अत्यन्त क्षणभंगुर और वस्तुओं की ओर ही प्रवृत्त होता है, वहाँ शिवात्मक उन्मेष का कोई चिह्न नहीं है। जीव का मलरूप अन्धकार कम होते ही जीव शिवत्व की खोज में लग जाता है लेकिन जीव की इस दूसरी अवस्था में भी बाह्य विकल्प की चाहत विशेष रूप से विद्यमान रहती है और इस स्थिति में वह स्वयं को ईश्वर से भिन्न मानता है, साधक उस ईश्वर को 'मेय' के रूप में अनुभव करने या सांसारिक परिणाम प्राप्त करने की इच्छा से भर जाता है। इसमें जीव और ईश भेद दोनों ही कल्पित है, वस्तुतः इस ज्ञान के उदय के बाद कि मैं स्वयं ईश्वर हूँ, भेदभाव का नामोनिशान नहीं रहता और यही वास्तविक स्थिति है। जीव की इसी दिव्य स्वभाव का पता लगाने के लिए 'आत्मपूजा' की जाती है।

देवो भूत्वा यजेद्देवं नादेवो देवमर्चयेत् अर्थात् स्वयं देवता बनकर देवता का पूजा करना, न कि देवता बने विना देवता की पूजा करना इस वाक्य का तात्पर्य अपनी शिवात्मकता का ही उद्घाटन है। अपरा पूजा की शुरुआत आत्मपूजा के रूप में निजचैतन्य की प्राप्ति के बाद ही सम्भव है। जब तक देवत्व का आवेश न हो तब तक मन्त्रजप अक्षरन्यास आदि का ही विधान है, तब तक पूजा करने का अधिकार नहीं है। एक क्षण के लिए भी जब दिव्यता प्रकट हो जाती है तो अपने चिन्मात्र स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। जैसे-जैसे इस प्रकार की भावना प्रबल होती जाती है, अन्य पदार्थ और स्व-विकल्प अविभाज्य हो जाते हैं। यह परामर्श ही उपासना का क्रम है।

आत्मपूजा में ३६ तत्त्वों को योगपीठ माना जाता है। शैवागम के अनुसार शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्धविद्या, माया, अविद्या, कला, राग, काल, नियति, पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, मन, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी ये ३६ तत्त्व हैं। आत्मपूजा के आरम्भ में **शिवादिपृथिव्यात्मने श्रीयोगपीठाय नमः** इस मूल मन्त्र से मस्तक की पूजा की जाती है। ३६ तत्त्वस्वरूप योगपीठ की पूजा करने के बाद मूलाधार आदि चक्र में डाकनी आदि देवता और उनके आवरण की भावना की जाती है। इसे 'षट्चक्र विमर्श' के रूप में लिया जाता है। इन चक्रों की भावना के बाद मूलाधार और स्वाधिष्ठान चक्र की किरणों को एकत्र कर **ऐं स्वयम्भूलिंगाय नमः** मन्त्र से स्वयम्भू लिंग की पूजा की जाती है। वह पिण्डीकृत रश्मिलिंग को हृदय में ले जाकर उसे वहाँ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विश्राम देकर मणिपुर और अनाहतचक्र में बिखरी हुई किरणों को एकत्र किया जाता है और उन सभी को हृदय में पिण्डीकृत किया जाता है और **ई बाणलिंगाय नमः** मन्त्र के साथ बाणलिंग की भावना करके पूजा की जाती है। उस किरणपिण्ड को ललाटदेश में ले जाकर विशुद्धचिक्र और आज्ञाचक्र में फैली हुई किरणों को एकत्र किया जाता है और सभी किरणों को एक लिंग में संयोजित किया जाता है जिसे इतरलिंग कहा जाता है। इस इतरलिंग की पूजा **औं इतरलिंगाय नमः** मन्त्र से की जाती है। इसके बाद सहस्रदल कमल के आलिन्द में चिन्मात्रस्वरूप परलिंग की भावना करके सम्पूर्ण किरण को पिण्डीकृत किया जाता है और उस पिण्डीकृत किरण को विश्वात्मक प्रपञ्च की तेज के रूप में आमर्शन करते हुए **ऐं ईं औं परलिंगाय नमः** मन्त्र से पूजा की जाती है। इस प्रकार वह्निरश्मि की १०८ किरणें, सूर्य की ११६ किरणें तथा चन्द्र की १३६ किरणें एकत्रित होकर ३६० किरणें होती हैं। इस षट्चक्रविमर्श में षडन्वयशाम्भवविद्या की भी भावना की जाती है, जिसमें १८० शाम्भवरश्मि तथा १८० शाम्भवरश्मि का सामूहिक रूप से परामर्शन किया जाता है। इन सभी किरणों की भावना और पिण्डन के बाद चिन्मात्रतामर्शन किया जाता है। इसमें किरणों के सभी पिण्ड पानी में बर्फ के कणों की तरह विलय होते हैं। निष्कल रश्मि में सम्पूर्ण किरणों को पानी में बर्फ की तरह विलय करने के बाद निष्कलता का परामर्शन किया जाता है।

उसके बाद खेचरीमुद्रा की भावना की जाती है। **स्वरद्वयपुटान्तःस्थमनच्कद्वयसंश्रयम्। तेजो दण्डमयं ध्यायेत् कुलाकुलनियोजनात्॥** अर्थात् कुल और अकुलरूप शिव और शक्ति को यानी 'अ' और 'ह' को एक साथ संयुक्त करके इडा और पिंगलारूप वाम और दक्षिण नाडी के मध्य में स्थित सुषुम्ना नाड़ी को दण्डाकार तेज के रूप में चिन्तन किया जाता है। श्रीसिद्धनाथपाद ने अनच्क का रहस्य उजागर करते हुए कहा है- **अनच्कं यत् परंज्योतिः सर्वप्राणिहृदिस्थितम्। इच्छा कुण्डलिनी तस्य तेजो नादसमुद्भवः॥** इसके अनुसार, नादरूप परमात्मा जिसे हृदय में 'अहम्' के रूप में समझा जाता है, वही परम प्रकाश ही 'अनच्क' पदद्वारा समझा जाता है। 'अ' रूप प्रथम वर्ण ही परम नादरूप अनुत्तर है और उसकी आमर्शनरूप इच्छा ही कुण्डलिनी है। कुण्डलिनी, जो परम तत्त्व का संकेत करने के लिए बिन्दुमात्र से अकार को और प्रकाश विमर्श और सामरस्यरूप तीन अवस्थाओं को एकत्रित करती है, उसको तीन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बिन्दुओं या सर्पाकार 'इ'कार के संकेत द्वारा दर्शाया जाता है, इसलिए इकार कुण्डलिनी का वाग्रूप है। श्रीतन्त्रसद्भाव में इस भावना का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

बध्वा पद्मासनं योगी नाभावक्षेश्वरं न्यसेत्।
दण्डाकारं तु तत्तावन्नयेद् यावत् कखत्रयम्।।
निगृह्य तत्र तत्तूर्णं प्रेरयेत् खत्रयेण तु।
एतां बध्वा महायोगी खे गतिं प्रतिपद्यते।।

अर्थात् योगी को पद्मासन में बैठकर नाभिचक्र पर अक्षेश्वर का विन्यास करना चाहिए। इसमें अ से लेकर क्ष तक सम्पूर्ण वर्ण को साढे तीन वृत्तों में घुमते हुए चिन्तन किया जाता है और कुण्डलाकार अक्षग्राम को दण्डाकार करके उठाते हुए कखत्रय तक ले जाया जाता है। क शब्द से शिरोरूप योगपीठ का द्योतन होता है जिसमें ख अर्थात् शून्यरूप तीन स्थान शक्ति, व्यापिनी और समनारूप तीन आकाश हैं। इस तेजोमय दण्ड को खत्रय मे ले जाकर खत्रय से प्रेरित करने से जो खेचरीबन्धन होता है, इस खेचरी मुद्रा को बाँध कर योगी 'ख'रूप बोधगगन में प्रवेश करता है। चूँकि व्योमवामेश्वरी देवी मेय रूप में विचरण कर रही हैं, इसलिए सभी प्राणियों के हृदय में स्पन्दित होने वाली जीवनशक्ति का शुद्ध रूप ही वास्तविक 'खेचरी' है।

इस प्रकार तेजस्विता और शून्यता की तर्पण देकर ३६ तत्त्वात्मक शिरपीठ में 'सौः' मन्त्र की भावना करके पराकला की भावना की जाती है। निष्कलरूप तुरीय पराभगवती की फिर से विग्रहस्वरूप की भावना इस प्रकार की जाती है :

अकलंकाशशांकाभा त्र्यक्षा चन्द्रकलावती।
मुद्रापुस्तलसद्बाहाः पातु वः परमा कला।

अर्थात् निष्कलंक चन्द्रमा के समान कान्तिवाली; सोम, सूर्य और वह्निरूप तीन आँखों वाली, चन्द्रमा की कला से सुशोभित, मुद्रा और पुस्तक धारण करने वाली 'परा' भगवती हमारी रक्षा करें।

इस पराम्बा की मानसिक उपचार से पूजा करके शिर के बिन्दुस्थान के चारों ओर त्रिकोण-पञ्चकोण-वृत्त-चतुर्दल-पञ्चारचतुष्टय और चतुरस्रात्मक मण्डल की भावना की जाती है, जो इस प्रकार है-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

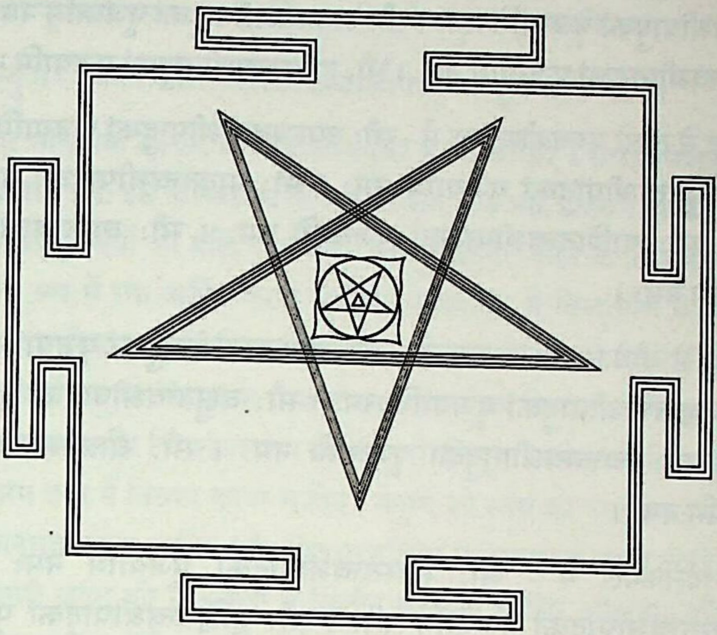

इस मण्डल में पूजा के लिए पराभट्टारिका से अनुमति ली जाती है। भगवती से अनुमति प्राप्त करने के बाद रश्मिपूजा इस प्रकार की जाती है :

१. चतुरस्र की आठ दिशाओं में - **अं असितांगभैरवाय नमः । आं ब्राह्म्यै नमः । इं रुरुभैरवाय नमः । ईं माहेश्वर्यै नमः । उं चण्डभैरवाय नमः । ऊं कौमार्यै नमः । ऋं क्रोधभैरवाय नमः । ॠं वैष्णव्यै नमः । लृं उन्मत्तभैरवाय नमः । ॡं वाराह्यै नमः । एं कपालीभैरवाय नमः । ऐं इन्द्राण्यै नमः । ओं भीषणभैरवाय नमः । औं चामुण्डायै नमः । अं संहारभैरवाय नमः । अंः महालक्ष्म्यै नमः।**

२. सबसे बाहरी पञ्चकोण चक्र में - **सौः पृथिवीतत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः जलतत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः तेजस्तत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः वायुतत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः आकाशतत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।**

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३. बाहर से दूसरे पञ्चकोण चक्र में - सौः गन्धतत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः रसतत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः रूपतत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः स्पर्शतत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः शब्दतत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

४. बाहर से तीसरे पञ्चकोण चक्र में - सौः उपस्थतत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः पायुतत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः पादतत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः पाणितत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः वाक्तत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

५. बाहर से चौथे पञ्चकोण चक्र में - सौः घ्राणतत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः जिह्वातत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः चक्षुतत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः त्वक्तत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः श्रोत्रतत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

६. चतुर्दलकमल में - सौः मनस्तत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः अहंकारतत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः बुद्धितत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः प्रकृतितत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

७. कमल के अन्दर के वृत्त में - सौः पुरुषतत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः नियतितत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः कालतत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः रागतत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः कलातत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः अविद्यातत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः मायातत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

८. वृत्त के भीतर पञ्चकोण में- सौः शुद्धविद्यातत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः ईश्वरतत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः सदाशिवतत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः शक्तितत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः शिवतत्त्वश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

९. इसके भीतर के त्रिकोण में - ऐं सत्त्वगुणाय नमः । क्लीं रजोगुणाय नमः । सौः तमोगुणाय नमः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१०. त्रिकोण की रेखाओं में - **ऐं इच्छाशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः । क्लीं ज्ञानशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि नमः । सौः क्रियाशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।**

११. बिन्दु में - **ऐं क्लीं सौः परशक्त्यम्बाश्रीपादुकां पूजयामि नमः ।**

इस प्रकार मानसिक उपचार के साथ रश्मिपूजा करनी चाहिए। **रागद्वेषपशून् हत्वा तर्पयेच्च रसामृतैः** इस विधिवाक्य के अनुसार राग, द्वेष और मोहरूप खेचर, थलचर और जलचर प्राणियों की बलि देकर तथा उन्हें पुनर्जीवित करने के लिए संस्कार या वासना के रूप में रक्त अर्पित करना चाहिए। द्वादशान्त में बिन्दुतर्पण के बाद इन विकल्पों को भी ग्रास करके निष्कलीकरण किया जाता है और बिन्दुत्रय की भावना के बाद शुक्लबिन्दु को त्रिशूल के साथ जोड़कर विसर्गरूप बिन्दुद्वय में विश्रान्त किया जाता है। प्रकाश और विमर्श पादरूप दो बिन्दुओं की पूजा करके तत्त्वे विश्रामयेन्मुहुः अर्थात् परम तत्त्व में विश्राम करना चाहिए। मनुष्य को स्वयं को परसंविद्भट्टारिका के रूप में अनुभव करना चाहिए और मिश्रचरणविद्या से आराधना करनी चाहिए और सम्पूर्ण प्राणी जगत् को मिश्रचरण में विलीन कर देना चाहिए और बार-बार जगत् को निष्कल स्वरूप में विश्राम की भावना करनी चाहिए। इस प्रकार अपने चिदानन्द स्वरूप का अवलोकन कर निम्नलिखित मन्त्र से तर्पण करना चाहिए-

ऐं आत्मतत्त्वाधिपतिः श्रीपरा तृप्यतु। ईं विद्यातत्त्वाधिपतिः श्रीपरा तृप्यतु। अः शिवतत्त्वाधिपतिः श्रीपरा तृप्यतु।

इसके बाद मूलाधार पर त्रिकोण आकार के कुण्ड की भावना करते हुए **कुण्डलिन्यधिष्ठितचिदग्निमण्डलाय नमः** इस मन्त्र से अग्निमण्डल की पूजा की जाती है। फिर शुरू होता है हवन। इसे अन्तर्याग द्वारा समझाया गया है जो आत्म-पूजा के समान ही अत्यन्त रहस्यमय है। ये सभी अभ्यास दीक्षा के बाद ही करने चाहिए क्योंकि इस शास्त्र में अदीक्षित का अधिकार नहीं है।

■■■

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

क्रमविमर्श

क्राम्यति क्रमते वा सर्वं विग्रह में कर्त्रर्थक अच् प्रत्ययान्त और **क्राम्यन्ति वस्तूनि जडाजडसाधारणानि यस्मिन्** विग्रह बहुल ग्रहणानुवृत्ति से पुंसि संज्ञायां घ: प्रायेण इस सूत्र से घ प्रत्यय करके कालार्थक क्रम शब्द का निर्माण हुआ है। 'क्रम' शाक्त दर्शन की प्रमुख शाखा है जिसमें तान्त्रिक दर्शन के सभी रहस्य छिपे हुए हैं।

क्रम पर आधारित समृद्ध साहित्य पर दृष्टि डालें तो योग-विज्ञान-भक्ति आदि से परिपूर्ण साहित्य हमारे सामने आता है। के.सी. पाण्डे ने क्रम साहित्य को ऐतिहासिक दृष्टि से इस प्रकार विभाजित किया है -

१. मूल आगम

२. प्राचीन आचार्यों के स्तोत्र

३. अज्ञातकर्तृक

४. अभिनवगुप्त और बाद के कश्मीर और चोलवासियों के कृतियाँ।

इनमें से पहले में क्रमसद्भाव, क्रमसिद्धि, ब्रह्मयामल और तन्त्रराजभट्टारक शामिल हैं; दूसरे में शिवानन्द, एरक, ह्रस्वनाथ और सोमराज के फुटकर स्तोत्र हैं; तीसरे में क्रमस्तोत्र, क्रमोदय, पञ्चशतिक, सार्द्धशतिक, क्रमस्तोत्र, महानयप्रकाश और महानयपद्धति और चौथे में क्रमस्तोत्र में 'क्रमकेलि' व्याख्या, देहस्थदेवताचक्रस्तोत्र, महेश्वरानन्द की क्रमवासना, क्रमसूत्र पर क्षेमराज की व्याख्या, ऋजुविमर्शिनी, महार्थमञ्जरी, महार्थोदय, तन्त्रालोक पर जयरथ की विवेक नामक टीका को भी परिगणित किया गया है। यद्यपि इसकी पहचान शाक्त सम्प्रदाय से की जाती है क्योंकि यह शाक्तोपाय पर आधारित विचार है, शैव दर्शन पर इसका बहुत प्रभाव है। सौत्रान्तिक मत का क्रम एवं लौकिक चिन्तन तथा न्याय मत के क्षण की परिभाषा भी तुलना हेतु विश्लेषणीय प्रतीत होती है। महानयप्रकाश में बताया गया है कि यह एक ही शक्ति में सृजन आदि का भेद ही क्रम है। इसे कहते हैं-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भेदैश्चतुर्भिरेकस्यां शक्तौ यत् क्रमणं क्रमात् ।
सृष्टिस्थितिलयानाख्यैः स क्रमः परिकीर्तितः ।।[१]

आचार्य पुण्यानन्द ने इस 'क्रम' को इस प्रकार प्रकट किया है–

क्रमणं पदविक्षेपः क्रमोदयस्तेन कथ्यते द्वेधा ।[२] अर्थात् 'क्रमण' का अर्थ 'पदविक्षेप' और 'क्रमोदय' दो प्रकार से होता है। 'पदविक्षेप' 'संवित्' की अनन्त किरण है, जो अनन्त शक्ति उत्पन्न करने की क्षमता रखती है। यह उन्मेष को दर्शाता है, जबकि 'क्रमोदय' का अर्थ है 'दिव्य', 'सिद्ध' और 'मानव' गुरु जो चैतन्य तक पहुँचने का रास्ता बताते हैं। अतः 'गुरु' भी पदार्थ के संघ में ही एक बोधगम्य चेतना है। 'पदविक्षेप' प्रपञ्च का साधन है, जबकि 'क्रमोदय' निवृत्ति का साधन है। वैयाकरण मत में संवित्तत्त्व क्रमसंहारमय पश्यन्ती अवस्था का विमर्शन करने वाला है। इसे शिव दृष्टि में इस प्रकार दर्शाया गया है-

सर्वतः क्रमसंहारमात्रमाकारवर्जितम् ।
ब्रह्मतत्त्वं पराकाष्ठा परमार्थस्तदेव सः।।[३]

अनुत्तर अर्थात् 'अ' का अर्थ एक बिन्दु या अणु है जिसमें तीन प्रकार की अवस्थाएँ सञ्चित होती हैं–

स्वातन्त्र्यशक्तिः क्रमसंसिसृक्षा क्रमात्मता चेति विभोर्विभूतिः ।
तदेव देवीत्रयमन्तरास्तामनुत्तरं मे प्रथयत् स्वरूपम् ।।[४]

अर्थात् स्वातन्त्र्यशक्ति, क्रमसिसृक्षा और क्रमात्मता वे शक्तियाँ हैं जो अनुत्तर के भीतर विद्यमान हैं (जिनके पहले कुछ भी नहीं है)। यद्यपि इससे अधिक सूक्ष्म कुछ भी नहीं है तथापि जो बोध में विकल्प स्थापित करके द्वैत का कारण नहीं बनता है, उस संवित्तत्त्व का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

---

१ महानयप्रकाश, ३।६

२ कामकलाविलास, ३५

३ शिवदृष्टि, २।५

४ तन्त्रालोक, १।५

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एकैवेति न कोऽप्यस्याः क्रमस्य नियमः क्वचित्।
क्रमाभावान्न युगपत् तदभावात् क्रमोऽपि न ।।[५]

अर्थात् परमार्थ में कोई 'क्रम' नहीं है, इसका मतलब यह नहीं है कि 'अक्रम' है, और अक्रम के अभाव का मतलब यह नहीं है कि यह क्रम है क्योंकि यह क्रम और अक्रमरूपी कल्पनाचक्र से दूर अवस्थातीत है।

यद्यपि पारम्परिक शब्द 'क्रम' दीक्षा, मुद्रा आदि को सन्दर्भित करता है, 'योगदर्शन' की विधि इसके मूल विचार को समझाने में सरल है। वाचस्पति मिश्र ने **क्षणतत्क्रमयोः संयमाद् विवेकजं ज्ञानम्**[६] सूत्र की व्याख्या में अविभाज्य कालांश को क्षण माना है, जबकि भोज ने उक्त व्याख्या का समर्थन करते हुए कहा है कि जिस क्षण की कला की आंशिक कल्पना भी नहीं की जा सकती वही क्षण है। क्रम की व्याख्या में **तथाविधानां कालक्षणानां यः पौर्वापर्येण परिणामः** इसप्रकार कहते हुए क्रम को काल के पूर्ववर्ती और आगामी क्षणों का परिणाम बताया गया है। यदि हम और अधिक सूक्ष्म विश्लेषण करें तो **यावता वा समयेन चलितः परमाणुः पूर्वदेशं जह्यात्, उत्तरदेशमुपसम्पद्येत स कालः क्षणः तत्प्रवाहाविच्छेदस्तु क्रमः**[७] अर्थात् एक परमाणु को एक देश से दूसरे स्थान तक पहुँचने में जितना समय लगता है वह एक क्षण है, और चूँकि क्षणों का प्रवाह एक अजेय क्रम है, इसलिए यह समझा जाता है कि क्षण क्रम का आश्रय लेता है और क्रम क्षण की निरन्तरता को बनाए रखता है। क्षण वस्तु के सापेक्ष होता है और क्रम में रहता है तथा क्रम आन्तरिक प्रवृत्ति है जो क्षणों में आती है। कालात्मवादी इसे ही 'काल' कहते हैं। वस्तुतः **पूर्वस्मादुत्तरभाविनो यदानन्तर्यं क्षणस्य स क्रमः**[८] अर्थात् पहले क्षण और पिछले क्षण के बीच कोई रुकावट न होना ही क्रम है। विज्ञानभिक्षु भी क्रम के इसी दृष्टिकोण का पोषण करते हैं – **क्षणाख्यस्तु कालो वस्तुकोटिप्रविष्टः। सर्वदैव वर्तमान लक्षण एव क्षणस्तिष्ठति न पूर्वोत्तरे क्षण इति नास्ति तयोः क्षणतत्क्रमयोः वास्तवं मिलनं मुहूर्तादिरूपमित्यर्थः**[९]

---

५ तन्त्रालोक, ४।१८०

६ पातञ्जलयोगसूत्र, ३।५२

७ पातञ्जलयोगदर्शन, ३।५२ व्यासभाष्य

८ पातञ्जलयोगदर्शन, ३।५२ व्यासभाष्य

९ योगवार्तिक।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अर्थात् क्षण और क्रम कभी मिलते नहीं। क्रम वस्तुनिष्ठ नहीं है जबकि क्षण अधिक वस्तुनिष्ठ है। इस परिभाषा को पलटने पर कि 'अक्रम' का अर्थ एक क्षण में उपस्थित होना है,[१०] यह स्पष्ट हो जाता है कि 'क्रम' का अर्थ एक से अधिक क्षण में उपस्थित होना है। एक अन्य परिभाषा से यह भी ज्ञात होता है कि यह 'क्रम' क्षण का प्रतियोगी और पूर्वक्षण एवं परक्षण का आधार है।[११] यहाँ प्रतियोगी शब्द का अर्थ सम्बन्धित अथवा 'सूचक' है। परिणामों की समाप्ति से क्षणों का क्रम ज्ञात होता है।[१२] नित्य वस्तु में कोई क्रम नहीं होता, इसलिए उस से 'क्रम' का बोध वाञ्छित नहीं होता है। क्षण समूह 'क्रम' भी नहीं है बल्कि 'क्रम' उस पर निर्भर करता है। एक अनित्य वस्तु में परिवर्तन के परिणाम से क्रम का बोध होता है, जैसे; हम नहीं जानते कि घर का हर कण बदल गया है लेकिन हम जानते हैं कि घर ढह गया है। घर ढह जाने की जो परिणाम से बीच के बदलावों के क्रम का अनुमान होता है। कहा जाता है कि गुणों का परिणामक्रम पूरा होने पर मुक्ति मिलती है।[१३] इस सम्पूर्ण विश्लेषण से ज्ञात होता है कि 'भव' क्रम मे आश्रित है और 'क्रम' क्षण समूह में आश्रित है। सरलता के लिए, यदि हम 'क-ख' देशों में रहने वाले 'ट-ठ' और 'ड-ढ' परमाणुओं की स्थिति मान लें -

प फ

→ (ट) → (ठ) → (ड) → (ढ) →

क ———————————————————— ख

'क' से 'ख' तक जाने में परमाणु को 'ट' देश, 'ठ' देश, 'ड' देश और 'ढ' देश से होकर गुजरना पड़ता है। चूँकि देश का सबसे छोटा हिस्सा भी परमाणु से अलग हो जाता है, इसलिए 'ट' से 'ठ' तक की दूरी एक परमाणु के आयतन के बराबर होती है। 'ट' से 'ठ'

---

१० अक्रममित्येकक्षणोपारूढम्।
- पातञ्जलयोगदर्शन, ३।५४ व्यासभाष्य

११ क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः।
- पातञ्जलयोगसूत्रम्, ४।३३

१२ क्षणानन्तर्यात्मा परिणामस्यापरान्तेनावसानेन गृह्यते क्रमः।
- पातञ्जलयोगसूत्रम् ४।३३, व्यासभाष्य

१३ गुणाधिकारक्रमसमाप्तौ कैवल्यमुक्तम्।
- पातञ्जलयोगसूत्रम् ४।३३, व्यासभाष्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

होकर 'ड' में गुजरने से पहले और 'ठ' से 'ड' होकर 'ढ' तक जाने से पहले, 'प' और 'फ' के बिन्दु पर क्रम निर्बाध होता है जो संक्रमण की अनुमति नहीं देता है।

जहाँ एक ओर इस प्रकार से निष्पन्न क्रमार्थ शाक्तदर्शन में 'क्रम' की व्याख्या के लिए आवश्यक एवं उपयोगी है, वहीं दूसरी ओर यह क्रमदर्शन और योगदर्शन के बीच सामग्री के आदान-प्रदान के अध्ययन का द्वार भी खोलता है। 'क्रम' 'देश' और 'काल' पर आधारित है तथा अक्रम में 'काल' के समान कोई सापेक्ष की सापेक्ष सत्ता भी नहीं रहता है-

यस्यैषां प्रतिभात्येतत् परार्थक्रमरूपिता।
अक्रमानन्दचिद्रूपः प्रमोदात् स महेश्वरः॥[१४]

अर्थात् अर्थ = पदार्थ और क्रम = 'तत्सापेक्ष उल्लिखित तत्त्व' जो ज्ञान के अन्तर्गत है, उस क्रम का उल्लंघन करने में सक्षम महेश्वरस्वरूप हो जाता है। जिस प्रकार पृथ्वी से शिव तक छत्तीस पदार्थ क्रमिक रूप से बोध की अवस्था में स्फुरित होते हैं उसी प्रकार दीक्षा के माध्यम से एक ही समय में उन सभी का स्फुरण सम्भव है ऐसा कहा गया है[१५] इसलिए यह संकेत मिलता है कि तत्त्व का स्फुरण सक्रम और अक्रम दोनों रूपों में होता है। घट, पट आदि वृत्तिज्ञान अर्थात् जिस प्रकार घटज्ञान पटज्ञान में पर्यवसित है उसी प्रकार ये वृत्तियाँ चित्त पर पर्यवसित हैं और मन भी संवित् पर पर्यवसित है, इसलिए यह दिखाया गया है कि चिद्गगन पर पर्यवसितता क्रम का उल्लंघन स्वरूप है[१६], इसलिए यह व्यासभाष्य के **गुणाधिकारक्रमसमाप्तौ कैवल्यमुक्तम्** के उपर्युक्त अर्थ के समान है। महेश्वरानन्द ने यत्र-तत्र दर्शाया है कि विकल्प की संकल्पना को क्रम तथा उससे अतीत को अक्रम माना जाता है। ईश्वर

१४ अभिनवगुप्त, कामकलाविलास—८, चिद्वल्लीव्याख्या में उद्धृत।

१५ यद्यत् स्फुरति च तत्तद्वस्तु धरण्यादि तद्वदेवं च।
पौर्वापर्यानियत्या तत्त्वानां क्रमिकताऽपि युतैव॥
संकुचितजीवरूपं तत्तत्कर्माभिमानतत्फलभुक्।
भासयति क्रमशोऽसौ दीक्षादावक्रमेणापि॥
- स्वच्छन्दतन्त्र ५ पटल उपसंहारश्लोक, उद्योतव्याख्या।

१६ भावा वृत्तिषु ताश्चित्ते चित्तं संविदि सा परे।
व्योम्न्यस्तङ्गमितो यत्र क्रम उल्लङ्घनात्मकः॥
- महानयप्रकाश, महार्थमञ्जरी-३५, परिमलव्याख्या पृ ८१ में उद्धृत।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को काल छू नहीं सकता क्योंकि वह क्रमिक नहीं है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि चूँकि अज्ञान का आवरण भंग कर चुका मुक्त पुरुष भी क्रमोल्लंघन का स्वाद चखता है, अत: उस स्थिति में मुक्ति के बारे में कोई सन्देह नहीं रहता है[१७] और ईश्वर की क्रमस्पर्शशून्यता **पौर्वापर्यादिकल्पनाक्रमेण क्रम्यते**[१८] ऐसा कहकर भी उन्होंने स्पष्ट किया है। विरूपाक्षपञ्चाशिका के कथन से स्पष्ट है कि शिव अक्रम हैं, लोक क्रमिक है तथा चैतन्य उभयात्मक है।[१९] उपर विवेचित काल का क्रम में पर्यवसान अर्थात् क्रम काल से सूक्ष्म है इसप्रकार की योगसूत्र की व्याख्या के साथ महार्थमञ्जरी की **क्रमवार्तानभिज्ञस्यास्य कालाख्येन कलंकेन सम्पर्को न केनचिदपि प्रकारेण सम्भवति। कालस्य तत्त्ववृत्त्या क्रमतयैव पर्यवसानात्**[२०] उक्ति साम्य रखता है। दूसरे शब्दों में, इन दोनों दर्शनों में 'क्रम' का अर्थ और उद्देश्य एक ही है।

'क्रम' उत्तराम्नाय से सम्बन्धित है, यह महेश्वरानन्द द्वारा दिए गए पर्यायवाची शब्दों से जाना जा सकता है, जैसे महार्थोत्तरम्, उत्तराम्नाय, अनुत्तराम्नाय, क्रमसरणि आदि।[२१] त्रिक दर्शन के साथ इसका सम्बन्ध **श्रीमहारथत्रिकदर्शनयोर्नात्यन्तं भेदप्रथा**[२२] कथन से स्पष्ट होता है। वस्तुतः क्रम, कुल, त्रिक, मत आदि की साधनाएँ भिन्न होते हुए भी दार्शनिक पृष्ठभूमि एक ही प्रतीत होती है। क्रम को भैरवीस्रोत मानने से **क्रमात् कुलोदयो व्याप्तिः कुलौघश्चायमुच्यते**[२३] कहकर कुल मत को ऊर्ध्वाम्नाय कहना क्रमसंगत लगता है।

---

१७ क्रमिको भवति न देवस्तस्य कथं कालकल्मषस्पर्शः।
नित्यनिरावरणस्यापि को जीवतो मोक्षप्रत्यूहः॥
- महार्थमञ्जरी, ५३ श्लोक।

१८ महार्थमञ्जरी-५३, परिमलव्याख्या।

१९ अक्रमता मे क्रमिकं ज्ञात्राद्यं सक्रमाक्रमा तु चितिः।
- विरूपाक्षपञ्चाशिका।

२० महार्थमञ्जरी-५३, परिमलव्याख्या।

२१ क) महार्थ : श्रीपादुकोदयः, महार्थमञ्जरी-२, परिमलव्याख्या में उद्धृत।
ख) औत्तरम् : महार्थमञ्जरी-७०,परिमलव्याख्या, पृ १८३।
ग) औत्तराम्नाय : ग्रन्थावतारोपक्रमः , पृ १८९।
घ) अनुत्तराम्नाय : महार्थमञ्जरी-६७, परिमलव्याख्या, पृ १७०।
ङ) क्रमसरणि : महार्थमञ्जरी, परिमलव्याख्या मङ्गलाचरण श्लोक १०।

२२ महार्थमञ्जरी --३८।

२३ सिद्धनाथ—कुलरत्नमाला, नित्याषोडशिकार्णव, पृ. २०५ में उद्धृत।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'क्रम' शाक्तोपाय है जिसमें मन को अव्यक्त वस्तुओं का चिन्तन करके शिवसमावेश प्राप्त करना होता है। निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट है कि क्रमानुसार ऐसी सूक्ष्मताओं का विश्लेषण किया गया है जो साधक को अक्रम अवस्था की प्राप्ति करा सके-

अक्रमक्रमविमर्शलक्षणं या क्रमाक्रममयी क्रमाक्रमम् ।
अक्रमशिवमवेक्ष्य मध्यगम् त्वां च सत्कुलमिदं तवाननम् ।[२४]

एक ही आदि बीज 'प्रणव' में भी मात्रा का विभाजन होता है और समना तक विभाजन होता है, अतः यह समझा जाता है कि क्रम ही मन का विश्लेषण है । इस क्रम का विश्लेषण करते हुए क्रमसिद्धि में कहा गया है-

क्रकारः क्रोधरूपस्तु मकारो मंगलो भवेत् ।
क्रोधे तु मंगलं कुर्यात् क्रमः कालाक्रमो भवेत् ।।
गुर्वायत्तं क्रमज्ञानमाज्ञासिद्धिकरं परम् ।
क्रमाज्ञानान्महादेवी त्रैलोक्यं कवलीकृतम् ।।[२५]

कहकर यह समझा जाता है कि क्रमज्ञान आज्ञासिद्धिकर और भेद समूह को दूर करने का एक साधन है। यह भी ज्ञात है कि क्रम को मुख्यतः कालानुक्रमिक तथा देशानुक्रमिक के रूप में लिया जाता है।

कालक्रम की तरह वर्णक्रम, सृष्टिक्रम, स्थितिक्रम, मुद्राक्रम आदि होते हैं। वर्णक्रम का अर्थ है अनुत्तर से विमर्श (अ-ह) तक, शिव से शक्ति तक, पूर्ण चेतन से जड़ तक को बोध करने वाला।

सृष्टि आदि के क्रम में जिस प्रकार सृष्टि के सृष्टि+सृष्टि, सृष्टि+स्थिति, सृष्टि+संहार, सृष्टि+अनाख्या यह चार भेद हैं उसी प्रकार स्थिति और संहार की भी चार चार भेद होने से कुल बारह भेद हैं। इन बारह भेदों को सोलह स्वरों में से "ऋ,ॠ, ऌ, ॡ" को छोड़कर शेष बारह स्वरों द्वारा समझाया गया है। जो शक्तियाँ इन बारह स्थितियों का प्रतिनिधित्व करती हैं और एक ही स्थान पर रहकर काल के रूप में फैलती हैं और काल को ही विलीन कर देती हैं, उन्हें 'काली' कहा जाता है। सृष्टि के पञ्चक्रम

२४ चिद्गगनचन्द्रिका, २४।
२५ श्रीक्रमसिद्धि, महार्थमञ्जरी—४१, परिमलव्याख्या में उद्धृत।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को लेते हुए क्षेमराज का उल्लेख है कि **आभासन-रक्ति-विमर्शन-बीजावस्थापन-विलापनस्तानि** ।[२६] इसके प्रमाण के रूप में वरदराज का निम्नलिखित श्लोक लिया जा सकता है-

सृष्टिस्थितिलयानाख्याभासाशक्तिः प्रसारणात् ।
प्रपञ्चविषयं चञ्चत् पञ्चकृत्य प्रपञ्चितम् ।।

तया प्रसारितस्यास्य शक्तिः चक्रस्य यत्पुनः ।
सन्धानमान्तराम्नायाम्नातक्रमविमर्शनम् ।।[२७]

मुद्राक्रम प्रवृत्तिपरक को प्रवृत्त करने और निवृत्तिपरक को निवृत्त करने के लिए खेचरी, गोचरी, दिक्चरी, भूचरी के रूप में वामेश्वरी का उल्लास है। मुद्राक्रम की व्याख्या करते हुए क्षेमराज ने **सृष्टि-स्थिति-संहृतिसंविच्चक्रात्मकं क्रमं मुद्र्यति, स्वाधिष्ठितम् आत्मसात् करोति येयं तुरीया चितिशक्तिः**[२८] कहकर चितिशक्ति की अक्रम स्थिति की ओर ले जाने वाले गुरुधर्मी तत्त्व के स्वरूप का प्रदर्शन किया है। उन्होंने क्रमसूत्र का उल्लेख किया है तथा बाह्य एवं आन्तरिक क्रममुद्रा के भेद को स्वीकार किया है। जिस प्रकार बाहरी पदार्थ आन्तरिक पदार्थ में प्रवेश करता है, उसी प्रकार आन्तरिक पदार्थ भी बाहरी पदार्थ में प्रवेश करता है। इन दोनों को क्रमसूत्र में सम्मिलित किया गया है।[२९] इस प्रकार मुद्राक्रम भी शक्ति में ही पर्यवसित होता है।

कालक्रम दर्शाया गया है। सोमानन्द का विचार है कि फल की प्राप्ति के लिए क्रिया के क्रम का पालन करना आवश्यक है और यह क्रम भी काल का ही एक रूप है -

प्रक्रियामात्रमेवैतद् यतः पूर्वापरात्मता ।
क्रियायाः कारकाणां हि क्रमोऽस्त्येव स्वकर्मणि ।[३०]

पूर्वापरता केवल मन द्वारा किया गया एक विश्लेषण है, और मन चेतना की एक संकीर्ण अवस्था है। सोमानन्द का उक्त श्लोकबीज का अंकुरण ईश्वरप्रत्यभिज्ञा में निहित है-

२६ प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, ११।
२७ शिवसूत्रवार्तिक, १।४०–४१।
२८ प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, १६ की वृत्ति।
२९ क्रमसूत्र, १९ की वृत्ति।
३० शिवदृष्टि, ४।१०५।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अत एव यदप्युक्तं क्रिया नैकस्य सक्रमा ।
एकेत्यादि प्रतिक्षिप्तम् तदेकस्य समर्थनात् ।[३१]

इससे पता चलता है कि अक्रम क्रिया होते हुए भी अबुद्धों में क्रम का भान होता है और इसलिए इसे सक्रम कहा जाता है। परम शिव की स्वातन्त्र्य ऐसा है की, वे अक्रम में भी क्रम का भान करा सकते हैं। अभिनवगुप्तपादाचार्य **प्रणमामि भासयन्तं क्रमरहितेऽपि क्रममनेकम्**[३२] कहकर इसका समर्थन करते हैं। परस्पर विरुद्ध धर्म एकत्व और अनेकत्व का एक ही अधिकरण कैसे हो सकता है? इसे प्रतीतिबलात् अथवा स्वातन्त्र्यवशात् कहकर समझना चाहिए। यदि महेश्वर कालावच्छिन्न हैं तो उनको अनित्य मानना पडेगा, क्रिया को क्रमिक स्वीकार करने से काल से अनवच्छिन्न परमेश्वर में क्रम होना मान्यता के कारण आवश्यक है परन्तु-

सक्रमत्वं च लौकिक्याः क्रियायाः कालशक्तितः ।
घटते न तु शाश्वत्याः प्राभव्या स्यात् प्रभोरिव ।[३३]

लौकिक क्रियाएँ काल सापेक्ष होने से सक्रम होती हैं, लेकिन नित्य क्रियाएँ काल सापेक्ष न होने से सक्रम नहीं होती हैं। इस विश्लेषण से काल ही पदार्थों का वियोजक प्रतीत होता है। हालाँकि कुछ लोग काल को शाश्वत मानते हैं तथापि उत्पलदेव का-

कालः सूर्यादिसञ्चारस्तत्तत्पुष्पादिजन्म वा ।
शीतोष्णे वाथ तल्लक्ष्यः क्रम एव स तत्त्वतः ।।[३४]

कथन से यह ज्ञात होता है कि काल, सूर्य आदि का स्वभाव भेद या क्रम ही है। वैशेषिक के अनुसार काल पदार्थ है। सांख्यमत में प्रवर्तनात्मक होने के कारण रजः स्वभाव है। वैयाकरणमत में नित्य में न रहने वाली प्रवृत्ति स्वभाव है, और बौद्ध धर्म में जो भाव = पदार्थ फैल रहा है वह परमार्थ या भावस्वरूप (अन्य तथाकथित भावस्वरूप) है। ये सभी अर्थ क्रम का उल्लंघन नहीं करते हैं। चूँकि 'कलति = क्षिपति = परिच्छिन्नत्ति' अर्थस्वरूप काल होने से और क्रिया भी काल होने से क्रिया से भी परिच्छेद होने का

३१ ईश्वरप्रत्यभिज्ञा, क्रियाधिकार १।१।
३२ ईश्वरप्रत्यभिज्ञा, विवृत्तिविमर्शिनी क्रियाधिकार १।१।
३३ पूर्ववत्, १।२।
३४ पूर्ववत्, १।३।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पता चलता है। भले ही ब्रह्मा महाप्रलय में सो जाएँ, श्वास की क्रिया बनी रहती है, या विष्णु, रुद्र आदि की क्रियाएं, जो ब्रह्मा से ऊपर हैं, शाश्वत रहती हैं अतः वे सभी भूमि कालावच्छिन्न हैं। 'क्रम' का होना अभेद में सम्भव नहीं है, इसलिए क्रम भेदाश्रय है। देश और काल के अनुसार भेद किया जाता है। भावभेद का सम्बन्ध घट, पट को लेकर देशक्रम से भासित होता है, जबकि कालक्रम का सम्बन्ध क्रियाभेद से होता है।

मूर्तिवैचित्र्यतो देशक्रममाभासयत्यसौ।
क्रियावैचित्र्यनिर्भासात् कालक्रममपीश्वरः ॥[३५]

इस प्रकार यह समझ में आता है कि देश और काल मूर्ति और क्रिया सापेक्ष हैं। निम्नलिखित श्लोक में भर्तृहरि ने निर्देश दिया है कि चूँकि बुद्धि स्वयं मूर्ति और क्रिया का रूप लेती है, इसलिए बुद्धि की अवसान में अक्रमता होता है–

अव्यक्तः क्रमवाञ्छब्द उपांशु योऽभिधीयते।
अक्रमस्तु वितत्यैव बुद्धिर्यत्रावतिष्ठते।[३६]

क्रमो यावदेकः क्षणः[३७] कहकर क्षण तक की सापेक्षता को क्रम स्वरूप माना गया है। इसी को वैयाकरण साधू का कहना कि **पूर्वोत्तरैस्तथा क्षणैः समवस्थापितक्रमः**[३८] अर्थात् पूर्वोत्तर क्षणों ने क्रम को स्थापित किया, यह क्रम सम्बद्ध मत प्रकृत क्रम मत के साथ अविरुद्ध है। हम समय को सूर्य के माध्यम या आधार से जानते हैं। सौर काल को सूर्य के आधार से जाना जाता है, लेकिन अन्य काल भी इससे सम्बन्धित हैं, अन्य काल की तात्पर्य आध्यात्मिक काल से है। आइए यहाँ काल के सौर अन्तर का विश्लेषण करें-

मानुषाक्षिनिमेषस्य अष्टमांशः क्षणः स्मृतः।
क्षणद्वयं तुटिर्ज्ञेया तद्वयं तु लवः स्मृतः॥

लवद्वयं निमेषस्तु ज्ञातव्यो गणितक्रमात्।
दशपञ्चनिमेषाश्च काष्ठा चैव प्रकीर्तिता॥

---

३५ पूर्ववत्, १।५।

३६ वाक्यपदीयम्, २।१९।

३७ ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृत्तिविमर्शिनी, भाग ३, पृ. १६।

३८ वाक्यपदीयम्, ३।८।११।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्रिंशत्काष्ठा कला ज्ञेया मुहूर्तस्त्रिंशदेव ताः।
मुहूर्तस्तु पुनस्त्रिंशदहोरात्रस्तु मानुषः ॥[३९]

अर्थात् पलकें झपकने में जितना समय लगता है उसके आठवें भाग का एक भाग को क्षण कहते हैं। दो क्षण की एक तुटि, दो तुटि का एक लव, दो लव का एक निमेष, पन्द्रह निमेष का एक काष्ठा, तीस काष्ठा का एक कला, तीस कला का एक मुहूर्त, तीस मुहूर्त का एक अहोरात्र। इसी क्रम के आधार पर पितरों और देवताओं आदि के कालमानों का निर्धारण किया जाता है, लेकिन यहाँ समझने की बात यह है कि क्षणिक परिणामों के आधार पर समझा जाने वाला क्रम सन्ध्या नहीं है क्योंकि सन्ध्या की उपदेश अलग ढंग से दी गई है। जिसके अनुसार-

मन्वन्तरे व्यतिक्रान्ते चान्यस्मिन् पुनरागते।
पञ्च वर्षसहस्राणि मध्ये सन्ध्या भवेत् सदा ॥[४०]

सबसे पहले और सबसे अन्तिम मन्वन्तर के अतिरिक्त अन्य मन्वन्तरों की सन्ध्याकाल पाँच हजार वर्ष की बताई गई है। सन्ध्याकाल को सन्धि शब्द से भी लिया जाता है।[४१]

यहाँ कालक्रम की चर्चा का उद्देश्य युगों के कालक्रम से इसकी तुलना करना है। सिद्धान्त शिरोमणि में कालमान की विभाजन की अवधारणा इस प्रकार है-

योऽक्ष्णोर्निमेषस्य खरामभागः स तत्परस्तंच्छतभाग उक्ता।
त्रुटिर्निमेषैर्धृतिभिश्च काष्ठा तत्त्रिंशता सद्गणकैः कलोक्ता॥
त्रिंशत्कलाऽऽक्षीं घटिका क्षणः स्यान्नाडीद्वयं तैः खगुणैर्दिनं च।[४२]

अर्थात् पलकें झपकने में जितना समय लगता हैं उसके ३० में से १२ भाग को 'तत्पर' तत्पर के १००वें भाग के १ भाग को 'तुटि' कहा जाता है। १८ निमेष की १ काष्ठा, ३० काष्ठा की १ कला, ३० कला की १ घटिका, २ घटिका का १ क्षण और ३० क्षण का १ दिन हैं। यहाँ 'क्षण' शब्द का अर्थ ऊपर वर्णित 'क्षण' शब्द के अर्थ से बिल्कुल भी

---

३९ स्वच्छन्दतन्त्रम्, ११।२०१-३।
४० स्वच्छन्दतन्त्रम्, ११।२२३।
४१ स्वच्छन्दतन्त्रम्, ११।२२९।
४२ सिद्धान्तशिरोमणि, १।१।१।१६-१७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मेल नहीं खाता है, बल्कि 'क्षण' को काल का सूक्ष्मतम अंश मानने का स्वच्छन्दतन्त्र का मत और योगसूत्र और व्यासभाष्य का 'क्षण' को मानने का जो मत है वह बिल्कुल एक जैसा पाया जाता है। वासनावार्तिक में **निमेषाष्टकं क्षण इति**[४३] कहकर गार्ग्य के मत के प्रमाणों के साथ चर्चा की गई है कि परम्परा का भेद ही मत-मतान्तर का कारण है। वहाँ यह भी बताया गया है कि शाकल्य और मनुस्मृति की अलग-अलग परिभाषा है। इस प्रकार न केवल क्षण में, बल्कि क्रम में भी विचारों की समानता दिखाई देती है और **क्रमान्यत्वे परिणामान्यत्वे हेतुः**[४४] अर्थात् क्रमान्तर होने पर भिन्न परिणाम होने का विचार भी मिलता है। योगसूत्र की एक और विशेषता यह है कि यहाँ 'अक्रम' का विचार एक ही शब्द में[४५] और शब्दान्तर में भी है। व्यासभाष्य से यह भी स्पष्ट है कि **सोपक्रमं निरूपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा**[४६] इस सूत्र में सोपक्रम का अर्थ 'अक्रम' तथा 'निरूपक्रम' का अर्थ 'क्रम' है।

परवर्ती तन्त्रों ने विभिन्न स्थानों पर 'क्रम' शब्द का प्रयोग किया है।[४७] दस महाविद्याओं की साधना में पालना की जाने वाली महानीलक्रम, चीनाचारक्रम, गन्धर्वक्रम आदि क्रम में इस अर्थ की लालसा हो सकती है। क्रम के दार्शनिक विश्लेषण में सोमानन्द की धारा ही उत्कृष्ट है। काली परम्परा के तन्त्रशास्त्र क्रम की प्रधानता को स्वीकार करते हैं। क्रमस्तोत्र, क्रमदीपिका, क्रमसाधनम्, कालिकुलक्रम, गुह्यसिद्धिक्रम, गुह्यक्रमार्चनम् आदि ग्रन्थों के नाम से यह तथ्य ज्ञात होता है कि इस परम्परा के ग्रन्थों के नाम में भी 'क्रम' शब्द है।[४८]

क्रमदर्शन के विशिष्ट ग्रन्थ में **ये मनः प्रणिदधुमहर्षयस्तान् पतञ्जलिमुखानुपस्महे**[४९] कहकर पतञ्जलि को ईश्वरवन्दना के बाद गुरुवन्दना के समय में स्मरण करने से भी गुरुपरम्परा की संगति स्थापित हो सकती है। शाक्त धारा में क्रम शब्द का प्रयोग क्रमदीक्षा, कादिक्रम, हादिक्रम, कहादिक्रम, सादिक्रम आदि परम्परा के अर्थ में किया

---

४३ सिद्धान्तशिरोमणि, वासनावार्तिक १।१।१।१६–१७।
४४ पातञ्जलयोगसूत्र, ३।१५।
४५ पातञ्जलयोगसूत्र, ३।५४।
४६ पातञ्जलयोगसूत्र, ३।२२।
४७ शक्तिसङ्गमतन्त्र भाग ३, चीनाचारतन्त्र, गन्धर्वतन्त्र।
४८ संक्षिप्तसूचीपत्र (वीर पुस्तकालय)।
४९ चिद्गगनचन्द्रिका, श्लोक ९कख।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जाता है। क्रमदीक्षा में भी सृष्टि से लय तक के चक्र को स्वीकार किया जाता है, जबकि कादि-हादि-सादि भेद मन्त्र की आनुपूर्वी पर आधारित है।

दार्शनिक मूल से उत्पन्न 'क्रम' धीरे-धीरे कर्मकाण्डीय 'कर्म' से सम्बन्धित होता चला जाता है। क्रम का सूक्ष्म विश्लेषण तान्त्रिकों की रहस्यमय गुत्थियों में उलझ कर सहजिया साधकों और भैरवीचक्र के प्रवर्तकों में उलझ कर रह जाता है।

वर्तमान में कुछ भी हो रहा हो, यदि इतिहास की ओर दृष्टि दिया जाए तो 'क्रम' प्रकाशित हो जाएगा। उत्पलदेव का क्रमचिन्तन और अभिनवगुप्तपादाचार्य के शाक्तोपाय के अन्तर्गत का क्रमविश्लेषण काल के सूक्ष्म चिन्तन से जुड़ा है। उपरोक्त आन्तरिक विश्लेषण से यह भी ज्ञात होता है कि इसकी जड़ें पतञ्जलि तक पहुँची हैं। क्रम और अक्रम के चिन्तन में समानता और न केवल 'क्षण' को काल का सूक्ष्मतम अंश मानना बल्कि काल को तत्त्वबोध का माध्यम बनाना चिन्तन की एक और समानता है। इससे शाक्तों के 'क्रम' के प्रवाह को अध्ययन की सीमाओं का विस्तार करके देखना होगा। शास्त्रान्तरों में उल्लिखित **कालः पचति भूतानि सर्वाण्येव महात्मना, नानाविधशक्तिमयी सा जनयति कालतत्त्वमेवादौ**[५०] वचन भी प्रकृत काल की परमेश्वरता को सिद्ध करने और संवित् के बहिरुल्लास में कालतत्त्व की आद्यसृष्टि के विषय के समानान्तर अध्ययन के लिए उपयुक्त प्रतीत होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'क्रमदर्शन' के ऐतिहासिक विश्लेषण में विद्वानों की दृष्टि भी सीमित है।

जयरथ के **..शिवानन्दाल्लब्धानुग्रहात्म्य:.. श्रीसोमानन्दाभिधानाय गुरवे सञ्चारयाम्बभूव**[५१] इस कथन को लेकर कान्तिचन्द्र पाण्डे शिवानन्द को क्रमदर्शन का प्रथम आचार्य मानते हैं।[५२] यहाँ वर्णित गुरुक्रम को देखने से पता चलता है कि शिवानन्द के तीन शिष्या केयूरवती, मदनिका और कल्याणिका की शिष्यपरम्परा में क्रमशः गोविन्दराज, श्रीभानुक और एरक में से गोविन्दराज के शिष्य बने सोमानन्द। सोमानन्द के समय को नवीं शताब्दी[५३] मानकर एक गुरु के पचास

५० सिद्धान्तशिरोमणि वासनावार्तिक १।१।१।१५।

५१ तन्त्रालोक, ४।१७३ विवेकव्याख्या।

५२ अभिनवगुप्त, के.सी. पाण्डेय, पृ. ४६४–४६६।

५३ जयदेवसिंह, शिवसूत्रज् इण्ट्रोडक्शन्, पृ. १८।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वर्ष के काल मानें तो आठवीं शताब्दी के प्रथम चरण अथवा सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध शिवानन्द का आविर्भाव काल देखा जा सकता है। जयरथ द्वारा उद्धृत उक्त वचन को देखकर यह सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि शिवानन्द के समय में कोई पीठ, उपपीठ आदि थे। यदि क्रमदर्शन का सम्बन्ध पातञ्जल दर्शन से जोड़ दिया जाए तो न केवल योगदर्शन बल्कि सांख्य में प्रयुक्त षष्टितन्त्र आदि को भी तन्त्र शब्द के अर्थ में सुसंगत किया जा सकता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से, यदि प्राचीन 'क्रम' के भीतर के वैज्ञानिक तथ्यों को सामने लाया जा सके तो एक अत्यधिक विकसित और गणितीय तथ्य में आधारित सोच सामने आ सकती है, जिसका उपयोग सापेक्षता सिद्धान्त के पुनर्मूल्यांकन के लिए आधार के रूप में किया जा सकता है।

■■■

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तान्त्रिक परम्पराः एक विहंगम दृष्टि

तत्त्व तथा मन्त्र सहित विभिन्न पदार्थों का विस्तार करके प्राणियों की रक्षा करने वाले शास्त्र तन्त्र कहलाते हैं (द्विवेदी, १९८३, पृ. २०३)। इसे सिद्धान्त के पर्याय के रूप में भी लिया जाता है (शास्त्री, १९८२, पृष्ठ ६०३)। शैव सम्प्रदाय में मुख्य रूप से 'आगम', 'संहिता' और 'तन्त्र' ग्रन्थों को शास्त्रबोधक अर्थ में प्रयोग किया जाता है। जब शिव की पाँच शक्तियाँ चित्-आनन्द-इच्छा-ज्ञान-क्रिया शिव के पाँच मुखों के रूप में प्रकट होती हैं, तो 'सदाशिव' स्थिति में द्वैत, द्वैताद्वैत और अद्वैत शास्त्र का विस्तार होता है। शिव के ईशान, तत्पुरुष और सद्योजात मुख से उत्पन्न होती हुई अवस्था, उत्पन्न अवस्था, उपर्युक्त तीन मुखों में परस्पर दो अन्य मुखों के जुड़ने की स्थिति और सभी मुखों की समष्टि से दस द्वैतवादी शैवागम उत्पन्न होते हैं। इसमें जब वामदेव और अघोर का मिलन होता है तो अठारह द्वैत रौद्रागम उत्पन्न होते हैं। अद्वयस्वरूप शिवशक्तिसंघट्ट और योगिनीमुख दक्षिणवक्त्र में प्रत्येक उत्पन्न होती हुई, उत्पन्न, तिरोहित होती हुई और तिरोहित अवस्था गुणित होने से सोलह भेद होते हैं। इनमें दक्षिण (अघोर) के अलावा, अन्य चार मुख परस्पर मिलकर चौंसठ अद्वय भैरवागम उत्पन्न होतें हैं (कौल, १९९८, पृष्ठ १४०)। कामिक, योगज, चिन्त्य, करण, अजित, सुदीप्त, सूक्ष्म, सहस्र, सुप्रभेद और अंशुमान् दस शैवागम हैं। विजय, निःश्वास, स्वायम्भुव, वाथुल, वीरभद्र, रौरव, माकुट, विरस, चन्द्रहास, ज्ञान, मुखबिम्ब, प्रोद्गीत, ललित, सिद्ध, सन्तान, सर्वोद्गीत, किरण और परमेश्वर ये अठारह रौद्रगम हैं। चौसठ भैरवागमों को आठ अष्टकों में विभाजित किया गया है। वे हैं- भैरवाष्टक, यामलाष्टक, मताष्टक, मंगलाष्टक, चक्राष्टक, शिखाष्टक, बहुरूपाष्टक और वागीशाष्टक। इसमें श्रीकण्ठीयसंहिता, वामकेश्वरतन्त्र की लक्ष्मीधरव्याख्या, वामकेश्वरतन्त्र के भास्करराय की व्याख्या, सर्वोल्लासतन्त्र में उद्धृत तोडलतन्त्र के अनुसार विभिन्न मतभेद हैं। महासिद्धिसारतन्त्र के अनुसार चौंसठ तन्त्रों के भेदों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को अश्वक्रान्त, रथक्रान्त और विष्णुक्रान्त श्रेणियों में जोड़ने पर, चौसठ तन्त्रों की सात सूचियाँ उपलब्ध हैं (कविराज, १९७२: पृ १९)।

इन आगमों को 'श्रुति' माना जाता है क्योंकि इन्हें श्रवण परम्परा में शिव और देवी द्वारा सिखाया गया है। वैदिकी श्रुति के समान तान्त्रिकी श्रुति माने जाने का प्रमाण धर्मग्रन्थों में भी मिलता है (भट्ट, २०२२: पृष्ठ ७१)। शैव दर्शन में परम शिव प्रकाश और विमर्श का सामरस्य स्वरूप हैं। ऐसा माना जाता है कि उस चित् स्वरूप में षडध्व का भान होता है। देश और काल ही वस्तुओं को परिच्छिन्न करते हैं। इसमें देश से कला, तत्त्व, भुवन और काल से वर्ण, पद और मन्त्र का समावेश होता है। इसी में समग्र पदार्थ शामिल हैं, जैसे:-

	वर्ण	पद	मन्त्र	कला	तत्त्व	भुवन
	१	२८	२	निवृत्ति(१)	१	१०८
	२३	२१	२	प्रतिष्ठा(१)	२३	५६
	७	२०	२	विद्या(१)	७	२७
	३	११	२	शान्ता(१)	३	१८
	१६	१	३	शान्त्यतीता(१)	२	१५
कुल	५०	८१	११	५	३६	२२४

(अयंगर, १९५०: पृष्ठ १३७)

तान्त्रिक दीक्षा का मुख्य उद्देश्य मुक्ति है और इसमें षट्पाश का शुद्धीकरण किया जाता है।

द्वैतवाद

द्वैतवादी मत के शैव लोग पति, पशु और पाश इन तीन पदार्थों को पूर्णतया भिन्न मानते हैं। पति यानि शिव को सदैव मल से अनादिमुक्त और अशरीरी माना जाता है। ईशान आदि मन्त्र शिव के शरीर हैं। शिव सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह और अनुग्रह इन पाँचों क्रियाओं को करने में पूर्णतः स्वतन्त्र हैं। द्वैत मत में शिव निमित्त कारण हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इनका भी अवस्थाभेद से शक्त, उद्युक्त और प्रवृत्त भेद माना जाता है और पशु शरीर से अलग, शाश्वत, व्यापक, अनेक, चेतन, किञ्चिज्ज्ञ माना जाता है। इसके तीन भेद हैं : विज्ञानाकल, प्रलयाकल और सकल। पाँच पाश हैं जो आत्म-अभिव्यक्ति की अनुमति नहीं देते हैं। वे हैं मल, तिरोधायक शक्ति, महामाया, माया और कर्म। अविद्यास्वरूप अणुत्वका सम्पादक मल है। ज्ञान और क्रिया तिरोधान शक्ति के द्वारा सीमित हैं। शुद्धाध्वा की उपादान महामाया को वागीश्वरी के नाम से भी जाना जाता है। तान्त्रिक साधना में इसे कुण्डलिनी भी कहा जाता है। माया को अशुद्धाध्वा का कारण माना जाता है। धर्म-अधर्म के रूप में कर्म जाति, आयु और भोग को निर्धारित करता है (द्विवेद, १९८३: पृ. १२३-१५०)। भेदवाद में मोक्ष को जीव का परमशिव से मिलन माना जाता है। कालामुख समानता की उत्पत्ति को मोक्ष मानते हैं, पाशुपत शिवधर्म के संक्रमण से समानता मानते हैं, कापालिक समावेश के माध्यम से समानता मानते हैं और कुछ शैव अभिव्यक्ति के माध्यम से समानता पर विश्वास करते हैं (द्विवेद, १९८३: पृ. ४२)।

अद्वैतवाद

अद्वैत शैवदर्शन आगमधारा, स्पन्दधारा और प्रत्यभिज्ञा में विकसित हुआ है (Singh, १९८२: XV) जिसमें चित्, आत्मा, शिव, महेश्वर सभी को पर्यायवाची के रूप में लिया गया है। शिव विश्वोत्तीर्ण, विश्वमय, चिदानन्दघन हैं। सभी पदार्थों की आत्मा या सार शिव या चैतन्य है। यह परमतत्तत्व ही प्रतिमाओं और कालखण्डों द्वारा भिन्न-भिन्न पदार्थों के रूप में प्रकट होता है। यद्यपि जीव वास्तव में परम शिव से अलग है, तथापि वह अपनी स्वातन्त्र्यशक्ति से जड़भाव को धारण करता है। इसके आवरण को तोड़ने के लिए शाम्भव, शाक्त और आणव उपाय हैं। शाम्भव उपाय में साधक के प्रयास के विना भगवान शिवरूप गुरु की कृपा से ज्ञान प्राप्त होता है, शाक्त उपाय में उन चीजों का ध्यान करने से ज्ञान प्राप्त होता है जिनका उच्चारण नहीं किया जा सकता है, और आणव उपाय में उच्चारण, ध्यान, वर्ण, स्थान आदि स्थूल प्रयत्न शामिल होता है (अवस्थी, १९७०: १२-१८)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कौल परम्परा

स्वच्छ प्रकाशस्वरूप शिव अकुल और पचास अक्षरों के समूह को कुल शक्ति के रूप में लिया जाता है (पाण्डेय, १९७६: पृ १०८)। ऐसा माना जाता है कि इस परम्परा की उत्पत्ति शिव के ऊर्ध्ववक्त्र से हुई है (पाण्डेय, १९७६: पृ १०८)। कुल शब्द का तात्पर्य पराशक्ति, सामर्थ्य, सर्वकरणता (ऊर्ध्वता), स्वातन्त्र्य, ओज, वीर्य, पिण्ड, संवित् (आत्मा), शरीर आदि से है (कौल, १९१८: पृ ३२९३)। बाह्य शक्तियामल अर्थात् मैथुन अवस्था, शरीर, प्राण और बुद्धि को कुल याग का आधार माना जाता है। जिन पदार्थों का शास्त्रों में निषेध है, उनका प्रयोग यहाँ बताया गया है। विभिन्न प्रकार की सुराओं को पराशक्ति और मद्य को ही भैरव माना जाता है। कौल परम्परा में, जैसे ही मुंह शराब और मांस से खाली हो जाता है, व्यक्ति पशुत्व को प्राप्त कर लेता है। आनन्द ब्रह्म का रूप है और इसकी अभिव्यक्ति मद्य, मांस और मैथुन के सेवन से होती है, इसलिए जो इन तीन पदार्थों का सेवन करता है वह ब्रह्मचारी है (कौल, १९१८: पृष्ठ ३३५५)। इसमें कौलधर्मी द्वारा मुद्रा और मत्स्य का समावेश करके पञ्चमकार का सेवन किया जाता है। कौल अद्वैत दर्शन का पालन करते हैं। कौल परम्परा का मुख्य स्रोत रुद्रयामलतन्त्र है, जिसके सार रूप में विज्ञानभैरव और परात्रीशिका उपलब्ध हैं। कौलाचार वामाचार और दक्षिणाचार के मेल से बना है (पाण्डेय, १९६३: पृ ६१०)। कौल परम्परा में नर, शक्ति और शिव की त्रिकात्मकता के उपर परमशिव की स्थिति माना जाता है। इसे अनुत्तर तत्त्व भी कहा जाता है। इसीका विस्तार से संघट्टदशा का जन्म होता है जहाँ आनन्द की अभिव्यक्ति होती है। उसके बाद पराशक्ति का उदय होता है जिसे इच्छा कहते हैं। इच्छा के विस्तार को ईशान कहते हैं। व्यापक शक्ति के उन्मेष के रूप में और उसीका विस्तार ऊनता के रूप में सामने आता है। जब इन मातृशक्ति का बाहर की ओर प्रसार और अन्तर्मज्जन होता है, तो पचास अक्षर स्वरूप कुलशक्ति का विस्तार हो जाता है (पाण्डेय, १९६३: ६५०-६५६)।

क्रमपरम्परा

विकल्पों को शुद्ध करके और शुद्ध विकल्पों की सहायता से परम शिव तक पहुँचने की शाक्त पद्धति पर आधारित परम्परा क्रमपरम्परा है। शाक्त अद्वैतवाद इसकी दार्शनिक भूमि है। ऐसा प्रतीत होता है कि जब तक यह पूर्ण अनुभूति तक नहीं पहुँच जाता तब

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तक यह द्वैत का रूप ले लेता है (रस्तोगी, १९७९: पृ. ५) और संवित् ही क्रम के रूप में भासित होता है। सृष्टि, स्थिति, प्रलय, अनाख्या और भासा (सृष्टि के प्रति उन्मुख अद्वैत अवस्था) का विश्लेषण इस परम्परा में किया जाता है। संवित् के बारह भेदों के अनुसार प्रमाणदशा में उदय माना जाता है और इसे सूर्य माना जाता है। प्रमेय को सोम और प्रमाता को वह्नि माना गया है। अनाख्यचक्र की बारह देवियाँ या कालिकाएँ तब उभरती हैं जब सृष्टि, स्थिति, प्रलय और अनाख्या अवस्था में प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय को गुणा की जाती है। इन बारह कालिकाओं को विश्रान्तिस्वरूप उत्तीर्णकालिका मानकर कुल तेरह कालिकाएँ मानने की क्रम परम्परा भी है (कौल, १९१८: पृ. ७४४)। प्रमा, प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय के चार अवस्थाओं में सृष्टि, स्थिति, संहार और अनाख्या को गुणा करके सोलह काली मानने की क्रमसद्भाव आदि की परम्परा भी है (कौल, १९१८: पृष्ठ ७५२)। अष्टदल, षोडशदल और द्वादशदलचक्र को कालिका का चक्र माना गया है। इन भेदों में बारह कालिकाएँ मानने वाली मुख्य परम्परा में सृष्टिकाली, स्थितिकाली, संहारकाली, रक्तकाली, स्वकाली, यमकाली, मृत्युकाली, रुद्रकाली, परमार्ककाली, मार्तण्डकाली, कालाग्निरुद्रकाली, महाकालकाली मानी जाती हैं, जबकि तेरह कालिका के मामले में एक और महाभैरवचण्डोग्रघोरकाली को अपनाने की परम्परा है (कौल, १९१८: पृष्ठ ५८)।

काली शब्द कल बिल क्षेपे, कल गतौ, कल सङ्ख्याने, कल शब्दे इन चार धातुओं से बना है जिसका अर्थ है क्षेप, ज्ञान, सङ्ख्यान, गति और नाद। क्षेप का अर्थ है स्वयं को अलग और बाहर फैलाना, ज्ञान का अर्थ है जो फैले हुए हैं उन्हें अपने से अभिन्न रूप में जानना, संख्यान का अर्थ है यह समझना कि यह यही है, इससे अलग नहीं, गति का अर्थ है संवित्स्वरूप में प्रवेश करना और नाद का अर्थ है केवल स्वयं को समझना। इस प्रकार की कलना करने वाली देवी काली को कालसंकर्षिणी भी कहा जाता है (कौल, १९१८: पृष्ठ ८२१)।

त्रिक दर्शन में परा, परापरा और अपरा से तुरीय रूप में द्वादशकाली माना जाता है और इसकी बारह शून्य (void) पूजा की जाती है (सैण्डर्सन, १९८६: पृष्ठ १८९)। यह भी देखा गया है कि त्रिक क्रम के बाद ही कालसंकर्षिणी का अवस्थान हुआ है। इसका स्वरूप शूलेश्वरी और एकान्तवासिनी के समान है (सैण्डर्सन, १९९०: पृष्ठ ५८)।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्रिपुरा सम्प्रदाय

शाक्तोपाय के शक्तिपारम्यवादी क्रम या महानय से जुड़ी परम्पराओं में त्रिपुरा का स्थान महत्त्वपूर्ण है। प्रमाता, प्रमाण और प्रमेयरूपी त्रिकोण के कामेश्वरी, वज्रेश्वरी और भगमालिनी के भीतर की त्रिपुरादेवी को क्रमदर्शन की त्रयोदशी काली के रूप में लिया जा सकता है। नित्याषोडश के नाम से जानी जाने वाली देवियाँ सृष्टि-सृष्टि, स्थिति-सृष्टि, संहार-सृष्टि और अनाख्या-सृष्टिरूप चार सृष्टिभेद, चार स्थितिभेद, चार संहारभेद और चार अनाख्याभेद के रूप में प्रकट होती हैं जो कि शुद्ध क्रम है (द्विवेद, १९८४: पृष्ठ ६५)। त्रिपुरा के वाग्भव, कामराज और शक्तिबीज को सोम, सूर्य और वह्निस्वरूप माना जाता है। इसका ध्यान और कूट त्रिपुरशेखराविद्या के ध्यान और कूट के समान है (पाण्डेय, १९७६: पृ. ३०९-३१७)। त्रिपुरा सम्प्रदाय में वामकेश्वरीमत, योगिनीहृदय और परशुरामकल्पसूत्र विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं।

त्रिपुरा उपासना में कौलमत, समयमत और मिश्रमत हैं। इसमें कुलाचार को बाह्य पूजापरक तथा समयाचार को आन्तर पूजापरक और वैदिक पद्धति के अनुरूप माना गया है। कौल मत में संहारक्रम से और समय मत में सृष्टिक्रम से चक्रोद्धार किया जाता है (द्विवेद, १९८४: पृष्ठ ६०)। समय मार्ग में छह प्रकार के ऐक्य भावना को ही पूजा माना जाता है जिसमें कला में बिन्दु की एकता, नाद में कला की एकता, नाद में बिन्दु की एकता, नाद के साथ कला और बिन्दु की एकता और बिन्दु में नाद और कला दोनों की एकता आते हैं (गिरि, १९८६: पृ. ६५)। सौन्दर्यलहरी और सुभगोदय से ज्ञात होता है कि श्रीविद्या का सम्बन्ध षडन्वयशाम्भवक्रम से है।

आम्नायभेद

शाक्त सम्प्रदाय के प्रसार के साथ ही विभिन्न विद्याओं का प्रादुर्भाव हुआ। वाम, दक्षिण और सिद्धान्त ये तीन स्रोत प्राचीन माने जाते हैं। इसमें सप्तमातृपरक मिश्रतन्त्र जोड़ने से चार आम्नाय होते हैं। पञ्चस्रोतविभाग में पूर्ववक्त्र तत्पुरुष से गारुडतन्त्र को जोड़ा गया है और पश्चिमाम्नाय को मूलतन्त्र के रूप में लिया गया है (द्विवेद, १९८४: पृष्ठ ५३)। परातन्त्र आदि से ज्ञात होता है कि पिचुवक्त्र अधराम्नाय को सम्मिलित करने से पशुपतिनाथ के षड्वक्त्र होते हैं और इनसे तन्त्र का विस्तार होता है जिसके

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनुसार पूर्वाम्नाय पूर्णेश्वरी-अधिष्ठित, दक्षिणाम्नाय निशीश्वरी-अधिष्ठित, पश्चिमाम्नाय कुब्जिका-अधिष्ठित, उत्तराम्नाय कालिका-अधिष्ठित, ऊर्ध्वाम्नाय श्रीविद्या-अधिष्ठित और अधराम्नाय वज्रयोगिनी-अधिष्ठित माने जाते हैं। श्रीयन्त्र में त्रैलोक्यमोहन चक्र से लेकर सर्वसङ्क्षोभण चक्र तक के तीन चक्र सृष्टिस्वरूप पूर्वाम्नाय, सर्वसौभाग्य चक्र से लेकर सर्वरक्षाकर चक्र तक के तीन चक्र स्थितिस्वरूप दक्षिणाम्नाय, सर्वरोगहर चक्र से लेकर सर्वानन्दमय चक्र तक के तीन चक्र संहारस्वरूप पश्चिमाम्नाय और नौ चक्र के समष्टि उत्तराम्नाय माने गए हैं जिसके कारण श्रीचक्र को समग्र विद्या तथा समग्र आम्नाय का स्वरूप माना जाता है।

शाक्त परम्परा में काली, तारा, श्रीविद्या, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगला, मातंगी और कमला को महाविद्या माना जाता है। इन्हीं महाविद्याओं के आधार पर भी तान्त्रिक साहित्य का विस्तार हुआ है (कविराज, १९७२: पृ. २६-४०)।

नेपाल की तान्त्रिक परम्परा

पञ्चमुख शिव को सम्पूर्ण तन्त्र का अवतारक माना जाता है, जिसकी प्रधानता नेपाल के प्रामाणिक इतिहास के प्रारम्भ से ही देखी जाती है। पाशुपत सम्प्रदाय की विभिन्न शाखाएँ यहाँ विकसित हुई हैं (रेग्मी, २०४०: पृष्ठ ११३)। इस सम्प्रदाय के आचार्य लकुलीश की मूर्ति की स्थापना तथा आचार्य प्रणर्दन आदि के प्रभाव से भी यह सिद्ध होता है कि नेपाल में इसकी परम्परा विद्यमान है (रेग्मी, २०४०: पृ. १२३)। त्रिकदर्शन की गुरु परम्परा में लकुलीश की गणना भैरव और भैरवी के बाद की जाती है (कौल, १९१८: पृ. ३६७१-७३)। लकुलीश पाशुपत दर्शन के मुख्य गुरु हैं, इस प्रकार लकुलीश को पाशुपत दर्शन और त्रिकदर्शन दोनों के मूल गुरु के रूप में देखा जाता है। इस परम्परा में रावण, विभीषण, राम को भी विद्यावतारक माना जाता है। महाकालसंहिता में उल्लेख है कि इन्होंने इन विद्याओं की उपासना किया था। मत्स्येन्द्रनाथ छठी शताब्दी के प्रारम्भ में नेपाल आये और यहाँ अवलोकितेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुए (पाण्डेय, १९७६: पृष्ठ ४५२)। चारों युगों के विद्यावतारक गुरुओं खगेन्द्र, कूर्म, मेष और मत्स्येन्द्र में से कलियुग के विद्यावतारक के रूप में मत्स्येन्द्र को माना जाता है (गौड्रियन, १९७९: पृष्ठ १४)। मत्स्येन्द्र का मत योगिनीकौलमत, कौलज्ञाननिर्णय, कौलावलीनिर्णय,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अकुलवीरतन्त्र आदि में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। मत्स्येन्द्रसंहिता समेत इन सभी ग्रन्थों की कम से कम एक हजार साल पुरानी पाण्डुलिपियाँ नेपाल में पाई जाती हैं, इसलिए यह देखना आसान है कि मत्स्येन्द्रनाथ का सम्प्रदाय यहाँ प्रसिद्ध है। गोरक्षनाथ मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य माने जाते हैं जिनका प्रभाव नेपाल में व्यापक है। नेपाल में गोरक्षसंहिता के नाम से श्रीमतोत्तरतन्त्र (कुब्जिका परम्परा) की पाण्डुलिपि के अस्तित्व के अलावा, इस परम्परा के कुलरत्नोद्योत, कुलमूलरत्नपञ्चकावतार आदि ग्रन्थों का भी नेपाल में विस्तार देखा जाता है। त्रिक, कुल और क्रम परम्परा में कुलेश्वर कुलदेवता के नाम से प्रसिद्ध है, जिसके लिए अंशुवर्मा ने दाय भाग रखा है (रेग्मी, १९८३: पृष्ठ ७२)।

ईशानशिव देवीयामलतन्त्र के अनुयायी प्रतीत होते हैं (कौल, १९९८: २२।३०)। विमलशिव (वही परम्परा के आचार्य) की विमलावतीमत और सोमशम्भु की कर्मकाण्डक्रमावली एक ही परम्परा से सम्बन्धित प्रतीत होती हैं (द्विवेद, १९८३: पृष्ठ २१)। वैरोचन का प्रतिष्ठातन्त्र नेपाल की मूर्तिकला और वास्तुकला का शास्त्रीय आधार रहा है (शर्मा, २०२५: भूमिका)। वैरोचन ईशानशिव को अपना गुरु मानते हैं (शर्मा, २०२५: पृष्ठ २१२)। इस प्रकार देवीयामलतन्त्र नेपाल की ८वीं शताब्दी का आधारग्रन्थ प्रतीत होता है। तन्त्रालोक के २९वें आह्निक में किये गये उद्धरण से यह देखा जाता है कि त्रिकदर्शन की परा, परापरा तथा अपरादेवी का वर्णन देवीयामल में है तथा इसमें उद्धृत दो मन्त्र नेपाली कर्मकाण्ड परम्परा की नींव, महाकालसंहिता के मन्त्रों के समान हैं (सैण्डर्सन, १९९०: पृ. ५१)। महाकालसंहिता में वर्णित कालसंकर्षिणी देवी की शूलेश्वरी, महापरा, परा-उत्तरकाली और त्रिशीर्षा (भैरवानना) की पूजाउपासना का ग्रन्थ जयद्रथयामल भी यहाँ संरक्षित है। इसके अलावा यहाँ पञ्चशतिका, क्रमसद्भाव आदि भी संरक्षित हैं, जिससे स्पष्ट है कि यहाँ क्रमदर्शन का विशेष प्रभाव है। इससे स्वतः सिद्ध होता है कि यामलाद्वैत, जिसे कश्मीर शैवधारा के नाम से जाना जाता है, नेपाल की परम्परा में आदिकाल से ही रही है।

चूँकि तन्त्रराजतन्त्र और वामकेश्वरतन्त्र दोनों में त्रिपुरा के "सिद्धमातृका" के रूप में स्तोत्र हैं, इसलिए ये दोनों ग्रन्थ एक ही परम्परा से सम्बन्धित प्रतीत होते हैं। परशुरामकल्पसूत्र पर आधारित परम्परा महाराष्ट्र में फैली, लेकिन ऐसा लगता है कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विशुद्ध रूप से आगमिक धारा नौवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कश्मीर में प्रवेश कर उत्तरी क्षेत्र में फैल गई।

पशुपति में होने वाली श्रीविद्या की पूजा भी इसी आगमिक धारा से सम्बन्धित है। जयस्थिति मल्ल के शासनकाल के दौरान सन् १३८८ में लिखा गया वामकेश्वरतन्त्र और शैवाचार्य मन्मथपति के लिए सन् १३५८ में लिखा गया वामकेश्वरतन्त्र से भी यह साबित होता है कि यह नेपाल के राजाओं और शैवाचार्यों द्वारा श्रीविद्या की पूजा करने का आधारग्रन्थ है (शर्मा, २०२५: पृष्ठ १३६, १३८)। इससे स्पष्ट है कि मल्ल काल में श्रीविद्या की पूजा व्यापक हो रही थी।

द्रव्यशाह ने कालिका को जागृत किया, डम्बरशाह के लिए कालिकापूजाविधि लिखा गया आदि साक्ष्य से यह ज्ञात होता है कि शाह राजा कालिकाक्रम के अनुसार ही पूजा करते थे (पन्त, २०४३: पृ. ५०५)। नेपाल में शिव और शक्ति से सम्बन्धित सभी आम्नाय परम्पराओं, सभी महाविद्या, सिद्धविद्या, मातृकाओं के तन्त्रग्रन्थों और मन्दिरों आदि से नेपाली संस्कृति को एक विशुद्ध तान्त्रिक संस्कृति के रूप में लिया जा सकता है।

■■■

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पूजा रहस्य

पूजा नाम न पुष्पाद्यैर्या मतिः क्रियते दृढा ।
निर्विकल्पे महाव्योम्नि सा पूजा ह्यादराल्लयः ।।

-विज्ञानभैरव

पूजा फूल चढ़ाने से नहीं होती, फूल आदि से की गई पूजा भक्ति की दृढ़ता का ही साधन है। वस्तुत: निर्विकल्प महाव्योम में श्रद्धापूर्वक जप करना ही पूजा है। विज्ञानभैरव के इस महावाक्य से उपासना की सम्पूर्ण अनाख्य परमार्थ का संकेत मिलता है। लोक में उपासना का अर्थ केवल बाहरी आचरण है जो भक्ति की दृढता के लिए किया जाता है। वास्तव में पूजा एक गहन रहस्य का विषय है इसलिए वास्तविक पूजा तभी सम्भव है जब सच्चिद्रूपा परमेश्वरी भैरवी चिन्मात्र हृदयभट्टारक भैरव की या भगवान् भैरव पूर्णाहन्ता की एकरसता में सारे प्रपञ्च को बोधमय जानकर संविद्रूपिणी भगवती का अमर्शन करें। इस नित्योदित धाम में चैतन्य को समग्र प्रपञ्च के रूप में या समग्र प्रपञ्च को चैतन्य के रूप में परामर्श किया जाता है। यह भेद के उत्थापन का सबसे सूक्ष्म स्तर है और इससे परे अभेद में भेद की कल्पना सम्भव नहीं है और वास्तव में उपासना रहित तुर्यातीत धाम में अवस्थान ही पूजा है, यही पूजा का उच्चतम स्तर है, और परम अद्वय अवस्था ही पूजा का सार है।

विज्ञानभैरव के उपर्युक्त वाक्य में अधिष्ठान को लक्ष्य करने वाले दो शब्द हैं- निर्विकल्प और महाव्योम। व्योम में 'निर्विकल्प' और 'महा' इन दो विशेषणों का अन्वय किया गया है। इसी प्रकार 'आदरात्' और 'लय' दो शब्द हैं जो अनुष्ठान को लक्ष्य करते हैं। पञ्चम्यन्त 'आदरात्' शब्द का अर्थ होता है 'आदरपूर्वक'। 'व्योम' शब्द उपनिषदों में ब्रह्म या शिवशास्त्रों में परम शिव पद से लक्षित परमार्थ को संकेत करता है। जिस प्रकार आकाश संसार में सबसे सूक्ष्म, सर्वव्यापी, शाश्वत है, उसी प्रकार परम सत्ता की वास्तविक सर्वव्यापकता, नित्यता और सूक्ष्मता को इंगित करने के लिए 'व्योम'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शब्द का भी प्रयोग होता है। ब्रह्मसूत्र में **आकाशस्तल्लिङ्गात्** सूत्र ने स्पष्ट किया है कि 'आकाश' शब्द का अर्थ ब्रह्म है। वास्तव में तन्त्रशास्त्रों में भी आकाश के पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग नाम और रूप रहित निर्गुण परमार्थ तत्त्व को दर्शाने के लिए किया जाता है। यहाँ व्योम को 'महा' विशेषण दिया गया है जो बाद में आने वाली लय के प्रकार को दर्शाता है। व्योमरूप परमार्थ का उद्बोधन महअ इन तीन वर्णों से सङ्केतित नर, शक्ति और शिव सभी में अनुगत नित्य एकरूप तुरीय का बोध है। इसमें शिव, जीव और जगत् का स्फुरण व्योमरूप परम शून्य के रूप में होता हैं और इसी पारमार्थिक स्फुरण को तन्त्र में महाजागरण भी कहा जाता है। इस जागृति की तीन विधियाँ हैं - आणव, शाक्त और शाम्भव। आणव उपाय- जीव दशा में भेद प्रधान बोध होने से समग्र प्रपञ्च में शिवात्मकता का अन्वेषण, शाक्त उपाय- सांसारिक स्थिति से जागने के बाद शान्तोदित अवस्था में समग्र प्रपञ्च का स्फुरण विकल्प के रूप में होने से विकल्प का शोधनरूप बोधमय आमर्शन और शाम्भव उपाय- निर्विकल्प धाम में अपनी आत्मा का स्फुरण या अपने आपको परमार्थ रूप में उद्बोधन।

उपासक वास्तव में उपासक से भिन्न नहीं है, परन्तु इस वास्तविकता को समझे विना उपासक और उपासक के बीच अन्तर आरोपित किया जाता है। तन्त्रशास्त्र में कहा गया है कि यह अबोध अपनी इच्छा से कल्पित है या अपने वास्तविक स्वरूप में बने विना भेदमय द्वैत प्रपञ्च में रहने के आत्मनिर्णय के कारण होता है। जब तक जीव भेद में रहने का निश्चय करता है, तब तक वह अपने वास्तविक स्वरूप को स्वयं से अलग कर लेता है और इस लीला या क्रीड़ा में आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने की इच्छा से किये जाने वाले अनुष्ठानों को आणव उपाय के अन्तर्गत रखा जाता है। फूल, अक्षता आदि द्वारा किये जाने वाले अनुष्ठान भी इसी श्रेणी के हैं। कुछ लोग भगवान् को फूलों से तृप्त करते हैं तो कुछ लोग मद्यमांस से, लेकिन इन सभी पूजाओं का रहस्य हृदय में अनायास प्रज्वलित होने वाला भगवान् का प्रीणन ही है। अत: जिन साधनों से हृदय का संकोच दूर हो और भेद का आमर्शन मिट जाय वही साधन उपासना के लिए उपयुक्त हैं।

पूजा रूप लय में आदरपूर्वक लय की अभिलाषा होती है। भस्त्रिका आदि प्राणायाम द्वारा हठयोग की प्रक्रिया से, उन्मनी मुद्रा, महामुद्रा आदि मुद्रा का प्रयोग से, पातञ्जल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

योग या अन्य योगों के माध्यम से भी लय प्राप्त की जा सकती है, लेकिन उन माध्यमों में 'मन' ही मुख्य साधन है और मन को एकाग्र करके विकल्पों को क्षीण करके लय किया जाता है। इस माध्यम से हृदय में देवता का स्फुरण सम्भव नहीं है क्योंकि उसके लिए आदर जरुरी है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मन के क्षय से निर्विकल्प धाम तक पहुँचा जा सकता है, लेकिन वह एक विवेकजन्य मार्ग है, योगज मार्ग नहीं। योगज मार्ग में सम्पूर्ण पहलू को एक आराध्य देवता के रूप में जागृत किया जाता है और साधक को ईश्वर की सर्वव्यापकता का एहसास होता है और उसके लिए आदर की आवश्यकता होती है।

शास्त्रों में समावेश को कहीं हृदय के स्फाररूप में तो कहीं उन्मनी भाव के रूप में समझाया गया है। हृदयपक्ष को मुख्य मानकर पूजा, भक्ति, स्तुति आदि के माध्यम से स्वयं को ईश्वर के प्रति समर्पित करने की उपासना विधि हृदयपक्ष को लेती है और इसमें परमार्थ का स्फुरण प्रिय रूप में, उपास्य रूप में होता है जबकि मस्तिष्कप्रधान साधना जिसमें बोध को प्राथमिकता दी जाती है, उसके अलग-अलग तरीके हैं- वेदान्त द्वारा प्रतिपादित विवेकमार्ग और योगशास्त्र द्वारा प्रतिपादित विवेकमार्ग। इससे मन के विभिन्न सूक्ष्मतत्त्वों को भिनकर परमार्थ में अवस्थान किया जाता है। पूजा हृदय की जागृति है और इसमें मानसिक नियन्त्रण से अधिक समरसता के अन्वेषण का महत्त्व है।

'लय' वस्तुतः तरङ्गहीनता ही है। मन राग, द्वेष और मोह से सङ्कुचित होने से उसमें रागतरङ्ग या द्वेषतरङ्ग का उद्भव होता रहता है। यद्यपि मोह अपने आप में एक तरङ्ग नहीं है, यह क्रोध और द्वेष की तरङ्गों के उद्भव का एक साधन या निदान दोनों है। अत: लौकिक अवस्था में मन कभी भी तरङ्ग से रहित होता ही नहीं है। यद्यपि मोह क्षणिक तरङ्गहीनता उत्पन्न करती है, परन्तु यह वास्तविक अभिलषित चिन्मय तरङ्गहीनता नहीं है, यह एक जड़ निस्तरङ्गता है, यदि चिद्धर्म जीव में क्षणिक मोहराज्य का उदय हो भी जाए तब भी वह अधिक समय तक टिक नहीं सकती। दरअसल, ये वासनाएँ 'मन' को एक चक्र में घुमा रही हैं और जिस प्रकार चक्र में 'नाभि' है, उसी प्रकार हृदय मनश्चक्र में आरूढ हुआ है या मन का चरखा हृदय को चलाता है। पूजा चक्र के प्रवाह को नाभिस्थान पर रोककर नियन्त्रित करने का एक उपाय है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पूजा के इस स्वरूप को लक्षित करने के लिए शास्त्रों में पूजा को इस प्रकार विभाजित किया गया है-

अपरा पूजा- भेद दशा में आणव उपाय द्वारा शिव समावेश के उद्देश्य से बाह्य उपचार द्वारा की जाने वाली पूजा अपरा पूजा कहलाती है।

परापरा पूजा- परापरा पूजा भेदाभेदरूप सूक्ष्म विकल्पों के उदयदशा में मनोमय प्रपञ्च को मन से ही समाहित करने के लिए आन्तरिक पूजा के अनुष्ठान का प्रतीक है।

परापूजा- अपरा और परापरा पूजा दोनों ही परापूजा तक पहुँचने के साधन हैं। वास्तव में, 'पूजा' परापूजा ही है लेकिन क्योंकि 'परा' महाजागरणदशा की एक निरन्तर स्थिति है, यह स्वत: जागृत नहीं होती है, इसलिए परापरा और अपरा पूजा को इसके जागरण में साधन के रूप में परिकल्पित किया जाता है।

परापरा और अपरा दक्षिण और वाम शक्ति के रूप में त्रिक मण्डल में अवस्थित हैं। पूजा के सन्दर्भ में परापरा पूजा शरीर में आधारित है तो अपरा पूजा बाह्य वस्तुओं में आधारित है। प्रचलित शब्दावलि को लें तो दक्षिणाचार पशुभाव को बाह्याचार से जोड़ सकते हैं तो शरीरके स्थान चक्र आदि में केन्द्रित होने के कारण परापरा को कौल विधि मान सकते हैं लेकिन कौल आचार दोनों बाह्य और आन्तर प्रक्रियाओं को संकेत करता है जो बाद में समयाचार के रूप में प्रचलित रहा, वो वास्तवमें कौल प्रक्रिया की ही सूक्ष्मतम प्रक्रिया है। वस्तुतः पूजा के परस्वभाव को समझने के लिए उसके स्थूल स्वरूप और सूक्ष्म स्वरूप को जानना होगा।

पूजा का आन्तरिक स्वरूप परापूजा की गहराई को शिवानन्द मुनि ने 'सुभगोदयवासना' में और अमृतानन्दनाथ ने 'चिद्विलासस्तव' में प्रकट किया है। बाह्य पूजा की तरह इस में भी सन्ध्या अनुष्ठान से लेकर हवन और विसर्जन तक अनुष्ठान किये जाते हैं लेकिन समग्र उपकरण चिन्मय ही होते हैं।

वैखरी में पचास वर्णों को अक्षमालास्वरूप धारण करने वाली मातृका देवी की मूल परावाक् ही पश्यन्तीस्वरूप लता में मध्यमास्वरूप में विकसित होती है, और मालिका रूप में पहुँचती है। वाणी का यह सूक्ष्म विश्लेषण ही परापूजा का प्रारम्भ है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भोग और मोक्ष दोनों प्रदान करने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है। चूँकि चिन्मात्र शिव ही निग्रह और अनुग्रह प्रवीण हैं, इसलिए शिवात्मकता का विमर्शन ही गुरुपादुका का स्मरण है। इसमें स्वयंप्रकाश संविद्रूप शिवमूर्ति शुक्लपादुका और उसके विमर्शन के रूप में शक्तिस्फार रक्तपादुका तथा इन दोनों के समन्वय के रूप में गुरुपादुका का मिश्रपादुका अथवा परपादुका का चिन्तन होता है।

शिव का बाह्य स्फार पञ्चवक्त्र के रूप में है। चूँकि ईशान आदि पञ्चवक्त्र में ३८ पद हैं, इसलिए इसमें ३८ कलाओं का समावेश होता है, जिनमें १६ चन्द्रकला, १२ सौरकला और १० वह्निकला शामिल हैं। सम्पूर्ण चराचर जगत् शिव की ३८ कलाओं में समाहित है और सामग्री की सावधानीपूर्वक खोज और परम शिव पर इसका पूर्ण प्रतिबिम्ब गुरुपादुकाजप है। जब सभी भय दूर हो जाते हैं, तो आत्मा भी उसी प्रकार चमकती है, जैसे शरद् ऋतु में बादल छँटने के बाद सूर्य चमकता है। चिन्मात्रता के इस प्रकाशन को विद्वानों की जाँच की आवश्यकता है। मन्त्रविद्या के रूप में आत्मविमर्श ही विद्यात्मतान्वेषण है। चैतन्य के इस प्रस्फुटन के बाद ही पूजा के अन्य अंग सम्पादित हो सकते हैं।

चेतना चराचर सारे जगत् का मूल है, इसलिए समग्र पदार्थ में चैतन्य है। सूक्ष्म पदार्थ स्थूल पदार्थ में होता है, जैसे आकाश पृथ्वी आदि पदार्थ के भीतर स्थित हैं। चेतना आकाश से भी सूक्ष्म है, अतः चेतना आकाश सहित समस्त स्थूल ब्रह्माण्ड में अनुगत है। चूँकि शरीर ३६ तत्त्वों का एक समूह है, इसलिए इसमें समग्र तत्त्व हैं। शरीर के सूक्ष्म तत्त्व से लेकर स्थूल, स्थूलतर और स्थूलतम तत्त्व तक को चिन्मय तत्त्व के रूप में बोध करना ही वास्तविक स्नान है। जब सभी अंगों को चैतन्यरूपी रस द्वारा सिक्त किया जाता है तब स्वात्मविमर्शन होता है और इससे मल हट जाता है। मल तीन प्रकार के होते हैं– आणव मल, मायीय मल और कार्म मल। आणव मल ने इच्छा को सङ्कुचित कर दिया है और शिव को जीवभाव में बाँध दिया है। मायीय मल ने माया प्रपञ्च खडा करके काल, अविद्या, राग, काल और नियति इन पाँच कञ्चुकों के सहयोग से जीव को अनन्त जन्म और मृत्यु के चक्र में डाल दिया है। कार्म मल ने कर्म और भोग प्रदान करके और क्रियाशक्ति को संकुचित करके जीव को स्थूल प्रपञ्च के उपभोग में सीमित कर दिया है। सारे पदार्थ में चिन्मयता के आमर्शन द्वारा क्रियाशक्ति

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पिघलकर ज्ञानामृत में परिवर्तित हो जाती है और ज्ञानशक्ति इच्छा के रूप में स्फुरित होती है, इसलिए समग्र पदार्थ इच्छा के स्फुरण के रूप में प्रकट होता है और इच्छा भी जब शुद्ध चेतना के रूप में प्रकाशित होती है तब आत्मा का वास्तविक रूप प्रकट होता है, यही असली स्नान है।

समस्त कर्म का निवर्तन सन्ध्यानुष्ठान के बाद ही हो सकता है। शिव और शक्ति के बीच सामरस्य प्रदान करने वाली सन्ध्या में एक तरफ शिव हैं और दूसरी तरफ शक्ति हैं, शिव दिन के रूप में तथा शक्ति रात्रि के रूप में स्फुरित हैं। जीव में शक्ति का आमर्शन के माध्यम से शैवी मुख की जागृति के कारण शिव और शक्ति के बीच सामरस्य की अनुभूति सम्भव है और यही वास्तविक सन्ध्या है। सम्पूर्ण लोक को मोह प्रदान करने वाली माया को निशा भी कहते हैं। विद्या की अशुद्ध या संकीर्ण प्रकृति इसी मायाशक्ति के रूप में प्रकट होती है। वासर अर्थात दिन प्रकाश का स्वरूप है और यही शुद्धविद्या का उदय स्वरूप है। सन्ध्या को मायाराज्य से शुद्धविद्या में प्रवेश करने की सन्धि के रूप में लिया जाता है। प्रत्येक यज्ञ में उषा से लेकर पूर्ण प्रकाश स्वरूप ब्रह्म तक का प्रकाशन होता है। जैसे कि अश्वमेध यज्ञ में मेध्य घोड़े का सिर 'उषा' है, उसकी पूँछ के रूप में 'ब्रह्म' प्रतिष्ठित हैं। 'उषा' का अर्थ है सन्ध्या। प्रकाश और विमर्श का अन्वेषणस्वरूप सन्ध्या यज्ञ की शुरुआत है, और इसके सम्पादन के बाद ही ब्रह्मस्वरूप समग्र यज्ञ का सम्पादन होता है।

समग्र प्रपञ्च का आभासन कालचक्र में आरूढ होकर होता है। काल द्वारा पूर्व और पर क्षण के रूप में क्रम को प्रकाशित करने के बाद क्रियाओं का उद्भव होता है और क्रियाओं का अन्त कालधारा में आरूढ होकर ही सम्भव है। इस भावप्रकाशन के भीतर काल-सापेक्षता का आमर्शन करना ही सूर्य को अर्घ्य प्रदान करना है। स्वयंप्रकाश शिव ही साक्षात् प्रकाश हैं और सूर्यादि ग्रह-नक्षत्र चूँकि स्वात्मज्योति से प्रकट होते हैं, इसलिए शिव ही सूर्य हैं। सूर्य स्वरूप शिव की व्योमवामेश्वरी, खेचरी, गोचरी, दिक्चरी और भूचरी शक्तियाँ ही किरणें हैं और इन किरणरूपी करणेश्वरी की सहायता से शिव स्वधाम में ही वेद्यमण्डल की रचना करते हैं। उन किरणों में आत्मवृत्ति करने से शिवात्मकता का उद्घाटन होता है और सूर्यार्घ्य का सम्पादन होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यागस्थान में यज्ञ सम्पादन करने के बाद विधि और निषेधरूप द्वैत की वासना विलीन हो जाती है, इसलिए विकल्परूप वासना को ग्रास करने के लिए शाक्तवीर्य या अलौकिक विमर्श की आवश्यकता होती है। चूँकि यागक्षेत्र शाक्तवीर्यस्फार का क्षेत्र है, इसलिए इसे सिद्धिरत्नाकर के रूप में लिया जाता है। आत्मतत्त्व उस याग का क्षेत्र है और चिद्विलास उसकी दीवार है। यागक्षेत्र में प्रदीप्त दीपशिखा तमोगुण का हरण कर लेती है। इसी शाक्तस्फार को यागक्षेत्र में प्रवेश कहा जाता है।

संवित् का स्फुरण षडध्वा के रूप में वर्ण, पद और मन्त्ररूप वाचक तथा कला, तत्त्व और भुवनरूप वाच्य के रूप में हुआ है। अध्वषट्क ही संवित् का पीठ भाग है जहाँ संवित् स्थित है। संवित्तत्त्व इससे बहुत भिन्न (भिन्न) नहीं है। इस संवित् पीठ का अन्वेषण शरीर के अन्दर किया जाता है। शरीर को भूषण, अलंकार आदि से अलंकृत करना संविद्रूप पीठ का आमर्शन है।

जीव के रूप में स्फुरित आत्मा को द्वैतरूपी सागर से तारण करके उसे अद्वैत स्वधाम में लाना ही रक्षा है। चूँकि समग्र पदार्थ में चिन्मयता के आमर्शन द्वारा द्वैत भाव से मुक्ति मिलती है, इसलिए चित् का आमर्शन ही दिग्बन्धन स्वरूप आत्मरक्षण है। करणेश्वरीवर्ग के पिण्ड में ज्ञान के साधन के रूप में गन्ध आदि को ग्रहण करने के लिए घ्राण आदि इन्द्रियों का प्रसार होता है और उनमें करणेश्वरियों का आमर्शन करने से उन दिशाओं का बन्धन होता है जिनमें समग्र विकल्प उत्पन्न होता है।

हृदयरूपी कमल की कर्णिका ही पूजा की वेदी है और सदैव हृदय में अहम् रूप में स्फुरण होने वाली चिन्मयी देवी को यजन के रूप में परामर्श करने से भैरवरूप उद्यम द्वारा पाशों का छेदन होता है। सकल विघ्नों को दूर किये विना यज्ञ पूर्ण नहीं हो सकता। विश्वात्मक प्रपञ्च और उसमें करणवर्ग आरूढ होकर निरन्तर विकल्पों का उदय होना ही विघ्न है। निर्विकल्परूप आत्मधाम में विश्राम करने से निर्विकल्पता का परामर्शन ही सभी विघ्नों का निराकरण है।

शिव स्वयं त्रिवृत्करण या पञ्चीकरण के रूप में विश्वाकार विकल्प के रूप में अवतरित हैं। परमशिव का यह स्फुरण शिव से लेकर पृथ्वी तक ३६ पदार्थों के रूप में हुआ है। शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर और शुद्धविद्यारूप शुद्ध अध्व में शिव का चित्, आनन्द,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इच्छा, ज्ञान और क्रिया का उद्रेक हुआ है। माया से लेकर पुरुष तक के शुद्धाशुद्ध अध्व में और प्रकृति से लेकर पृथिवी तक के अशुद्ध अध्व में भी शिव प्रकट हुए हैं। शिव के षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मकता का इसी आमर्शन को 'आसन' माना जाता है। कर्म और करणरूप आत्मगत अशुद्ध तत्त्व को शुद्ध तत्त्व में लय करना अर्थात कर्म को चिन्मय रूप में आमर्शन करना और करण को चक्रेश्वरी के रूप में आमर्शन करना ही आत्मशुद्धि और करशुद्धि है।

समग्र प्रपञ्च चेतना के ही रूप में आभासित हुआ है। प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय में अहं, अहमिदम् और इदम् तीन प्रकारों से चेतना प्रकाशित हुआ है। इस चैतन्य के स्फुरण में प्राण मध्यदशा में 'अहमदिम्' के रूप में विद्यमान है। इसे सन्धि के नाम से जाना जाता है। प्रमाता में वेद्यसंविद्रूप जगत् का विलाप करने के लिए प्राणपथ का आश्रय लिया जाता है और इस प्रक्रिया को 'प्राणायाम' कहा जाता है।

संवित् की उत्पत्ति, स्थिति और लय प्रत्येक दशा को तीन गुना करने पर नवचक्र, देवीचक्र या देहचक्र के रूप में स्फुरण होता है और चूँकि इन सभी में आसनकल्पना होती है, इसलिए शरीर में आसनकल्पना नवधा चिदाभासरूप के रूप में होती है और विग्रह में नवयोनिचक्र आदि के रूप में होती है। षडंगन्यास को हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्रत्रय और अस्त्र के रूप में अध्वषट्क को शरीर में स्फुरण करने के लिए किया जाता है। इससे आत्मसंवित् की अंशांशी भाव कल्पना द्वारा वास्तविक रूप में पहुँचा जा सकता है। यद्यपि चिन्मात्र में अंशांशीभाव सम्भव नहीं है, तथापि शाक्तवीर्य से समग्र सम्भव होने के कारण उपासना में उसकी भावना की जाती है। सर्वज्ञता, नित्यतृप्तता, अनादिबोध, अविलुप्तशक्ति, सर्वव्यापकता और स्वतन्त्रता शिव के धर्मरूप हैं और आत्मस्वभाव प्रकट होने पर ये धर्म प्रकट होते हुए पूर्णता को प्राप्त करते हैं। इस शक्ति का बोध ही शाक्तोन्मज्जनरूप विमर्शषडंग-भावना का रहस्य है।

कामकला की भावना तीन बिन्दुरूप ईश्वर के रूप में किया जाता है जिसमें ऊर्ध्व बिन्दु को मुँह के रूप में और अन्य दो बिन्दुओं को दो स्तनों के रूप में भावना की जाती है। इस ऊर्ध्वबिन्दु त्रिकोण को अधः अवस्था से कुण्डलीप्रबोध का सङ्केत माना जाता है। समग्र तत्त्व के समवाय के रूप में चतुष्कलामय आत्मा में वैखरी प्रभृति वाणी का परामर्शन करना ही न्यास है। 'पुरुष' शब्द के पुर मे अवस्थित और पूर्ण ये दो अर्थ हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मायीय दशा में 'पुर में अवस्थित' यह अर्थ उपयुक्त है और अमायीय दशा में दूसरा अर्थ। ये दोनों पुरुष के स्वभाव होने के कारण माया से आवृत होने और मुक्त होने का साधन के रूप में पुर्यष्टक रहा है। चिन्मात्र परम धाम में वाग्देवतान्यास द्वारा पुर्यष्टक का विलापन अष्टदेवतान्यास माना गया है। ऐसा माना जाता है कि आन्तरिक करणवर्ग मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार में स्वात्मस्फार क्रम से होता है इसलिए अन्त:करण का अवस्थान संवित्पीठ में माना जाता है और इन चार पीठों को कामरूप, पूर्णगिरि, जालन्धर और ओड्याण के रूप में भावना करके चिन्मयता का आमर्शन करना ही पीठन्यास है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भैरवविमर्श

भैरव के दार्शनिक शिखर पर चढ़ने से पहले व्युत्पत्ति के क्षेत्र में कदम रखना आवश्यक और संगत भी लगता है। इसमें कुछ यौगिक व्युत्पत्तियाँ हमारे लिए चिन्तन का मार्ग बनेंगी और हमें परमात्मा को समझने में मदद करेंगी। आगम का मुख्य उद्देश्य भी यही है कि शब्द का अर्थ जानने और उसका प्रयोग करने से भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। आगम का अभिप्राय भी **एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति** अर्थात् एक भी शब्द अच्छी तरह से जानने और उसका प्रयोग करने से स्वर्ग और मर्त्यलोक में भोग और मोक्ष की प्राप्ति होती है इस सिद्धान्त के अनुरूप होने के कारण तीन चरण में भैरव शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ प्रस्तुत किया जाता है।

१. आगम की व्युत्पत्ति

२. अभिनवगुप्त की व्युत्पत्तियाँ और

३. क्षेमराज एवं परवर्ती आचार्यों की व्युत्पत्तियाँ

१. आगम की व्युत्पत्ति

विज्ञानभैरव जिसे रुद्रयामलतन्त्र का उत्तरांश के रूप में जाना जाता है, उसमें भैरव की व्युत्पत्ति इस प्रकार है-

भया सर्वं रवयति सर्वदो व्यापकोऽखिले।
इति भैरवशब्दस्य सन्ततोच्चारणाच्छिवः ॥[1]

अन्तः स्वानुभवानन्दा विकल्पोन्मुक्तगोचरा।
याऽवस्था भरिताकारा भैरवी भैरवात्मनः ॥

१ विज्ञानभैरव, १२७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तद्वपुस्तत्त्वतो ज्ञेयं विमलं विश्वपूरणम् ।[२] कहकर यह शास्त्र भैरवस्वरूप को सर्वविमर्शशाली मानता है। पहली व्युत्पत्ति में, 'भ' भया संवित्प्रकाशरूपया (ज्ञानरूपी प्रकाश से) 'ऐ' - ऐकार: क्रियावान् महेश्वर: (क्रियाशक्ति से युक्त महेश्वर अर्थात् क्रियाशक्ति के साथ कहने का तात्पर्य है कि इस क्रियाशक्ति के पूर्ववर्ती चित्, आनन्द, इच्छा और ज्ञान को भी ग्रहण करके), रव = रवयति-विमृशति (विमर्श करता है) वही परमेश्वर भैरव हैं। एक अन्य व्युत्पत्ति में यह समझा जाता है कि भैरव वह हैं जो भरणात्मिका शक्ति और ऐ=क्रियाशक्ति से सम्पूर्ण का विमर्श करनेवाला ही भैरव है। पहला पक्ष प्रकाशप्रधान भैरवबोधक है जबकि दूसरा पक्ष शाक्तोपाय का अनुसरण करता है। एक अन्य व्युत्पत्ति में **भयेन नीलासुखादिभिन्नप्रथात्मकज्ञानेन, अवति रक्षति** अर्थात् भेदात्मक द्वैतप्रधान अज्ञान से रक्षा करने वाले प्रभु सकल पाशबद्ध जीव के रक्षक माने जाते हैं। अन्य व्याख्याओं के अनुसार, **भया सर्व शुभाशुभं राति ददाति** कहने से सब कुछ देने वाले भैरव का और वाति= अनुगच्छति (सभी में व्यापक रूप से रहते हैं) कहने से भैरव की सर्वव्यापकता का बोध होता है। यह भैरव भरिताकार है अर्थात् इसमें कोई रिक्तता नहीं है। चूँकि भैरव आनन्द से परिपूर्ण होने के साथ-साथ सर्वशक्तिमान् भी है, इसलिए सम्पूर्ण भूमि में उल्लास और परम ऐश्वर्य इसमें है। भैरव ज्ञान का रूप है, वह ज्ञान जो सर्वोपरम होने पर स्वयं प्रकट होता है, और उसे प्रकट करने के लिए किसी अन्य साधन की आवश्यकता नहीं होती है। वास्तविक अर्थों में जिस प्रकार सूर्य घट से प्रकाशित नहीं होता, उसी प्रकार ईश्वर भी साधनों के वश में नहीं है। **सर्वज्ञत्वं परभैरवात्मकत्वम्**[३] इस कथन से यह समझा जाता है कि उसके स्वरूप की उपलब्धि ही सर्वज्ञता है। संवित् की स्वयंप्रकाशता अन्य दर्शनों में भी स्वीकार करके उसका अनुमान करने लिए **संवित् स्वयंप्रकाशावेद्यत्वे सत्यपरोक्षत्वाद् व्यतिरेके घटवत्**[४] कहकर केवलव्यतिरेकी तर्क का सहारा भी लिया जाता है। कैसे करें संविद्रूप भैरव की पूजा ? क्या निराकार चैतन्य पूजा का विषय बन सकता है ? यह कहकर भैरव में समावेश का उपाय केवल आणव ही होना चाहिए और बाह्य पदार्थों से ही पूजा होनी चाहिए, ऐसा कहना मूढता

---

२ विज्ञानभैरव, १५–१६कख।

३ परात्रीशिका, पृ १०२।

४ पञ्चदशी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है। **निर्विकल्पे महाव्योम्नि सा पूजा ह्यादराल्लयः**[५], **जपः सोऽत्र स्वयं नादो मन्त्रात्मा जप्य ईदृशः**[६], **महाशून्यालये वह्नौ भूताक्षविषयादिना। हूयते मनसा सार्द्धं स होमश्चेतना श्रुचा ॥**[७] आदि विज्ञानभैरव के कथन से चिदाकाश में डूब जाना ही पूजा है, नित्य सहज रूप में अहं स्वरूप का आमर्शन ही जप है तथा चेतना की सहायता से नील, पीत आदि वस्तुओं का आत्ममा विलय करना ही होम है। इसप्रकार परम अद्वय अवस्था का भी उपासना स्वीकार किया जाता है। भैरव और भैरवी में भी भेद स्वीकार नहीं किया जाता है। भैरवी का स्वरूप देश और काल से परे, मन और वाणी से परे, अहंस्वरूप बोधमय अवस्था है। दाहिकाशक्ति और अग्नि की तरह ही शक्ति और शक्तिमान् भैरवी और भैरव में भी अभेद है। जिस प्रकार दीपक की रोशनी से सूर्य की दिशा का ज्ञान होता है, उसी प्रकार शक्ति से शिव का ज्ञान होता है। अतः **शैवीमुखमिहोच्यते** अर्थात् इस शिवशासन में शक्ति को शिव तक ले जाने वाला द्वार कहा गया है।

पूर्ण सृष्टि अण्ड है जो चार भागों में विभाजित है - ब्रह्माण्ड, प्रकृत्यण्ड, मायाण्ड और शक्त्यण्ड। इसे भरण करने वाला भैरव है। **भरणात् प्रकृत्यण्डानां स भैरव इति स्मृतः**[८] कहकर भरण-पोषण को भी भैरव का मुख्य अंग माना जाता है। शाम्भव उपाय में भैरवतत्त्व की मुख्य व्याख्या का आधार **उद्यमो भैरवः**[९] इस सूत्र को लिया जाना चाहिए, जिसके अनुसार विमर्श के स्फुरण की अवस्था में चैतन्य में आकस्मिक रूप से स्पन्दित होकर प्रतिभा अर्थात् परावाक् के रूप में उदित होकर विश्व के रूप में फैलने वाला और संहार की अवस्था में सम्पूर्ण विश्व को अपने में समेटने वाली चेतना ही भैरव है। क्षेमराज ने अपनी व्याख्या में संवित् के प्रतिभोन्मज्जन को भैरव के रूप में लिया है।[१०] इसे वार्तिककार ने पूर्णहन्ता का बोधस्वरूप माना है। इस स्थिति में

---

५ विज्ञानभैरव, १४४गघ।
६ विज्ञानभैरव, १४२गघ।
७ विज्ञानभैरव, १४६।
८ नेत्रतन्त्र, १९।७४।
९ शिवसूत्र, १।५।
१० योऽयं प्रसरद्रूपाया विमर्शमय्याः संविदो झगिति उच्छलनात्मकपरप्रतिभोन्मज्जनरूपः उद्यमः स एव सर्वशक्तिसामरस्येन अशेषविश्वभरितत्वात् सकलकल्पनाकुलालंकवलनमयत्वाच्च भैरवः।
- शिवसूत्र, १।५ विमर्शिनीव्याख्या।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सकलशक्ति सामरस्य स्वरूप होने से पूर्णता एवं विकल्पकवलन अर्थात् सारे विकल्पों को ग्रास करने के कारण शाब्दिक व्युत्पत्ति से भैरव की व्याख्या इस प्रकार मिलती है–

उद्यमोऽन्तः परिस्पन्दः पूर्णाहम्भावनात्मकः ।
स एव सर्वशक्तीनां सामरस्यादशेषतः ।।
विश्वतो भरितत्वेन विकल्पानां विभेदिनाम् ।
अन्तः कवलनेनापीत्यन्वयोर्देवभैरवः ।।

इस अवस्था में, चैतन्यस्वरूप भैरव लगातार अपनी चैतन्य स्वरूप का बोध करते हैं और पूरे विश्व को भी देखते हैं, अर्थात् अन्तर्लक्ष्य बहिर्दृष्टि की भैरवीमुद्रा में रहकर जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्थाओं में अपनी भैरवात्मकता का बोध के साथ भेद करके अभिव्यक्त होता है। संसार के रचयिता ब्रह्मा से लेकर कीट-पतंगों तक सभी प्राणियों की रचना करने वाले भैरव को ही महाकाल, कालभैरव आदि नामों से जाना जाता है। भैरव मृत्यु, काल, कला समूह आदि को पूरी तरह निगल जाते हैं।

मृत्युं च कालं च कलाकलापं
विकारजालं प्रतिपत्तिसाम्यम् ।
ऐकात्म्यनानात्म्यविकल्पजातं
तदा स सर्वं कवलीकरोति ।[११]

प्रलयकालिक अग्नि के समान भैरव में सबकी लय हो जाती है, सारे तत्त्व दग्ध हो जाते हैं–

यत्र सर्वे लयं यान्ति दह्यन्ते तत्त्वसञ्चयाः ।
तां चितिं पश्य कायस्थां कालानलसमत्विषम् ।[१२]

विज्ञानभैरव में इसको जल और उर्मि, वह्नि और ज्वाला, प्रभा और रवि की उपमा दी गई है। यदि जल भैरव है तो ऊर्मि जगत् है। यदि वह्नि भैरव है, तो ज्वाला जगत् है,

११ श्रीभर्गशिखा, शिवसूत्र १।६ विमर्शिनी में उद्धृत।
१२ श्रीमद्वीरावली, शिवसूत्र १।६ विमर्शिनी में उद्धृत।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यदि सूर्य भैरव है तो प्रभा जगत् है।[१३] इस प्रकार, आगमों ने सकलाधिष्ठान भैरव को परम अद्वैत अवस्था के रूप में संकेत किया है जहाँ सर्वात्मकता होने के कारण कोई अतिरिक्त सत्ता की कल्पना नहीं बची है। भोक्ता वही भैरव है, परन्तु भोग्यरूपी स्थूल पदार्थ उस भोक्ता से कदापि भिन्न नहीं है।

३. अभिनवगुप्त की व्युत्पत्ति

श्रीमन्महामाहेश्वर अभिनवगुप्तपादाचार्य शिवाद्वयवाद के प्रमुख आचार्य हैं। भैरवागम पर आधारित इस अद्वैतवाद के लिए भैरवाद्वैत कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है। आचार्य अपने दर्शन को एक ओर सोमानन्द और लक्ष्मणगुप्त के प्रत्यभिज्ञा को साकार करने में सफल होते हैं, तो दूसरी ओर गुरु शम्भुनाथ और भूतिराज की परम्परा को कायम रखते हैं। सोमानन्द ने भैरव की ईश्वरता को **पञ्चविधकृत्यतत्परभगवद्भैरवभट्टारकः**[१४] कहकर सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह और अनुग्रह के रूप में पञ्चकृत्य की कर्तृता भैरव मे स्थापित किया है। चूँकि तन्त्रशास्त्र में शिवतत्त्व से बढ़कर कुछ नहीं है, इसलिए शिव को अनुत्तर माना जाता है और अ के पहले कोई अक्षर न होने के कारण 'अ' को अनुत्तर माना जाता है। 'अ' बीज को शिव का प्रतीक माना जाता है। सर्ववर्ण 'अ' प्रकाश है और अनन्तरूप 'ह' कलारूप विमर्श है, अतः सम्पूर्ण वाग्विलास को यहाँ बीज और योनि का संयोग माना गया है। 'अकार' भैरव का बोधक है और तन्त्रालोक में आचार्य अभिनव ने इस भैरवपद की व्याख्या इस प्रकार की है-

देवो ह्यन्वर्थशास्त्रोक्तैः शब्दैः समुपदिश्यते।
महाभैरवदेवोऽयं पतिर्यः परमः शिवः ॥

विश्वं बिभर्ति पूरणधारणयोगेन तेन च श्रियते।
सविमर्शतया स्वरूपतश्च संसारभीरुहितकृच्च ॥

संसारभीतिजनिताद्रवात्परामर्शतोऽपि हृदि जातः।
प्रकटीभूतं भवभयविमर्शनं शक्तिपाततो येन ॥

---

१३ जलस्येवोर्मयो वह्नेर्ज्वालाभङ्ग्यः प्रभा रवेः।
ममैव भैरवस्यैता विश्वभङ्ग्यो विभेदिताः ॥
- विज्ञानभैरव, १०८।

१४ सोमानन्द (विवृत्ति), परात्रीशिकाव्याख्या, पृ ६ में उद्धृत।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नक्षत्रप्रेरककालतत्त्वसंशोषकारिणो ये च।
कालग्रासमाधानरसिकमनःसु तेषु च प्रकटः ।।
संकोचिपशुजनभिये यासं रवणं स्वकरणदेवीनाम्।
अन्तर्बहिश्चतुर्विधखेचर्यादिगणस्यापि।
तस्य स्वामी संसारवृत्तिविघटनमहाभीमः।[१५]

इसके अनुसार जो संसार का धारण और पोषण करता है अथवा जो संसार का पोषण, भरण और रवण करता है उसे भैरव कहा जाता है। यद्यपि भैरव के भरण रूप कार्य का अन्तिम फल मोक्ष है तथापि उसका प्रत्यक्ष फल भोग है, जबकि रवण रूप कार्य प्रत्यक्ष मोक्ष के लिए है। सांसारिक प्रपञ्च से पीड़ित भक्त को अभयरूप मुद्रा प्रदान करने वाले गुरु भैरव ही हैं। भैरव वह तत्त्व है जो संसाररूपी त्रास से उत्पन्न होने वाला रव अर्थात् भगवत्परामर्श से उत्पन्न होता है। संसार से वैराग्य और आत्म-परामर्श का कारण हैं भैरव। भैरव नक्षत्र के प्रेरक हैं, कालतत्त्व हैं। **भेरं कालं वायन्ति इति भैरवा योगिनः, भैरवेषु प्रकट इति भैरवः** इस व्युत्पत्ति के अनुसार, जो परम देव योगियों में अर्थात् कुण्डलिनी जागरण के माध्यम से समाधिस्थ रसिक योगियों में प्रकट होता है वह महाभैरव है। संकोच से प्रभावित पाशबद्ध पशुजनों के भय के लिए खेचरी, गोचरी, दिक्चरी और भूचरी देवियाँ ही भीरवा हैं। उन भीरवा देवियों के स्वामी हैं भैरव। भीम का मतलब बहुत डरावना होता है और इसका मतलब भैरव भी होता है। भैरव शब्द की इन व्युत्पत्तियों से भैरव की परमैश्वर्य और सर्वसामर्थ्य का बोध होता है। वास्तव में, सर्वशक्तिमान् भैरव में ही देवत्व है। ज्ञातव्य है कि **दिवु क्रीड़ा-विजिगीषव्यवहार-द्युतिस्तुति-मदमोद-स्वप्नकान्ति-गतिषु**[१६] अर्थ के अनुसार दिव् धातु के दस अर्थ होते हैं। ये दस ही अर्थ भैरव में आते हैं अतः देवत्व उनमें ही है।[१७] भरण और रवण अर्थ की प्रधानता के साथ **भरणात्मको महामन्त्ररवात्मकश्च**[१८] कहकर अन्यत्र भैरव शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार परात्रीशिका में भैरव को व्युत्पति के साथ **भैरवो भरणात्मको महामन्त्रात्मकश्च, केवलमत्र शक्तिमत्प्राधान्यं, संहाररूपेण**

१५ तन्त्रालोक, १।९५-१००कख।
१६ धातुपाठ, दिवादि १।
१७ तन्त्रालोक, १।१०१-१०३।
१८ परात्रीशिकाव्याख्या, पृ २२।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

म-ह-अरूपम् कहकर भैरव की विशेषता शक्तिमत्प्राधान्य बताई गई है। भैरवी अ-ह-म या प्रसारप्रधान है जबकि भैरव लयप्रधान हैं। भैरवी निरन्तर विषय को स्फुरण करना चाहती है, जबकि भैरव स्वतःस्फुर्त पदार्थ को बोध करना चाहते हैं। भैरव अपने ही अन्दर अपनी भेद खडा करके क्रीडा करने में समर्थ हैं। इसीको प्रतिबिम्बवाद की शैली से जगत् को प्रतिबिम्ब और अपने को बिम्ब मानकर उपमा दिया गया है-

स एव भैरवो देवो जगद्रक्षणलक्षणः।

स्वात्मादर्शे समग्रं रूपं यच्छक्त्या प्रतिबिम्बितम् ।।[१९] प्रतिबिम्बित होने के लिए भी भैरव शक्ति का माध्यम लेते हैं, लेकिन माध्यम रूप वह शक्ति भैरव से भिन्न नहीं है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया ही शक्ति के वास्तविक रूप हैं। यद्यपि शक्ति इच्छा, ज्ञान और क्रिया के भेद पर निर्भर नहीं है तथापि अभिन्नतया आभासन करने की इच्छा, उसको जानना भैरवी का इष्ट व्यापार होने के कारण संवित् के स्वतन्त्र उल्लास, परिपूर्ण प्रथा, सर्वस्वातन्त्र्य आदि में केवल शब्दावली का अन्तर है, वास्तव में वही अवस्था या तत्त्व इङ्गित हुआ है। चराचर में व्याप्त भैरव को आत्मस्वरूप में जानना ही भैरवत्व प्राप्ति का द्वार है और मृत्यु के भय से पीड़ित प्राणियों के लिए मोक्ष का साधन भी है। संक्षेप में कहें तो अभिनव के चिन्तन में भैरवत्व ही पुरुषार्थ है, भैरव ही सत्य है। भैरव की क्रीड़ाभूमि जगत् भैरव से अलग नहीं है।

३. क्षेमराज और परवर्ती आचार्यों की व्युत्पत्तियाँ

आगम की व्युत्पत्ति करने के प्रसंग में क्षेमराज की शिवसूत्रविमर्शिनी का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। नेत्रतन्त्र की उद्योत व्याख्या में **प्रक्रियायां पुरतत्त्वादिपरिपाट्यामण्डानि ब्रह्म, प्रकृति, माया, शक्त्यण्डानि, तेषां भरणात् स्वात्मसात्काराद् भैरवः**[२०] वाक्य में थप दृष्टि का उन्मेष हुआ है। आचार्य अभिनवगुप्त ने भैरव के व्याख्याश्लोक में नेत्रतन्त्र की दृष्टि को नहीं लिया है। क्षेमराज की अन्य व्याख्या अभिनवगुप्त की ही अनुकृतिस्वरूप है। उपर की अभिनवगुप्त की व्युत्पत्ति को सुललित पद में व्याख्या करते हुए उसमें 'भरण' और 'रवण' के साथ 'वमन' भी लिया गया है। **भरणात्मको महामन्त्ररवात्मकश्च** कहकर परात्रीशिका

१९ बोधपञ्चदशिका, ४।

२० नेत्रतन्त्रोद्योत, १९।७४।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की व्याख्या में 'र' और 'व' की अलग अलग व्युत्पत्ति नहीं है, लेकिन क्षेमराज ने **भैरवो विश्वभरणरवणवमनरूपः**[२१] कहकर 'व' का 'वमन' कर्म लिया है। क्षेमराज की व्युत्पत्ति की विशेषता यह है कि उन्होंने भैरव की सभी व्याख्याओं को एक श्लोक में एकत्र किया है-

भीरुणामभयप्रदो भवभयाक्रन्दस्य हेतुस्ततो।
हृद्धाम्निप्रथितश्चभीरवरुचामिशोन्तकस्यान्तकः ।।
भेरं वायति यः स्वयोगिनिवहस्तस्य प्रभुर्भैरवो।
विश्वस्मिन् भरणादिकृद् विजयते विज्ञानरूपः परः।[२२]

उपरोक्त श्लोक में, उन्होंने संकेत दिया है कि सम्पूर्ण अर्थ विज्ञानभैरव में सिमट गया है और भैरव का विज्ञानरूप शरीर परभैरव है।

जयरथ ने अपने तन्त्रालोकविवेक में भैरव की विस्तार से चर्चा की है और अभिनवगुप्त की व्याख्या में इसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। इसी प्रकार, शिवानन्द की **भैरवो जगद्धरणलक्षणश्चिन्नाथः**[२३] जैसी संक्षिप्त और एकाक्षरीय व्याख्यात्मक व्युत्पत्तियाँ भी हैं। इन व्याख्याओं में किसी नये धारणा का उन्मीलन नहीं हुआ है। इस श्रेणी में अमृतानन्द का **विश्वस्य भरणाद्रमणाद् वामनात् सृष्टिस्थितिसंहारकारी भैरवः परमशिवः**[२४] शामिल है। यहाँ 'वमन' का प्रयोग क्षेमराज के अनुकरण को दर्शाता है। इस प्रकार ऊपर वर्णित व्याख्यान से अक्रम भी स्वेच्छा से क्रम के रूप में स्फुरित होने वाला चैतन्य की परम स्वतन्त्रता ही भैरव के रूप में जाना जाता है। सोमरूपी मेय, सूर्यरूपी प्रमाण और वह्निरूपी प्रमाता के क्रमिक स्फुरण में प्रकट होने वाली बारह भेद रूप की 'काली' भी भीरवा हैं और भैरव इसके स्वामी हैं। सोमानन्द के दृष्टिकोण से, शिव सम्बन्धी चिन्तन और भैरव सम्बन्धी चिन्तन में कोई अन्तर नहीं है, लेकिन शिव सम्बन्धी चिन्तन की धाराएँ द्वैत और अद्वैत भेद वाले हैं। शिव के भैरव रूप को अद्वैत धारा में स्वीकार किया गया है, जबकि भैरव का समग्र चिन्तन तान्त्रिक चिन्तन की अद्वैतवादी धारा में शामिल है, इसलिए शिव सम्बन्धी अद्वैत चिन्तन को

२१ पूर्ववत्।
२२ विज्ञानभैरव (उद्योतव्याख्या) मंगलश्लोक, विज्ञानभैरव भूमिका, पृ. ६ में उद्धृत।
२३ नित्याषोडशिकार्णव, ऋजुविमर्शिनीव्याख्या, १।७४।
२४ योगिनीहृदयदीपिका, १।१

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कश्मीरी शैवदर्शन की अपेक्षा भैरवदर्शन कहना अधिक उचित है। संक्षेप में, यद्यपि भैरवधारा में अभिनवगुप्त का विचार प्रचलित है, स्वरूपव्याख्या में क्षेमराज की अपनी विशेषताएँ हैं। महेश्वरानन्द ने श्लोक में भैरव के ही देवत्व साधक दशविध अर्थ अपने श्लोक में दर्शाया है।[२५]

भैरव का स्वरूप

क्षेमराज द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करके भैरव की व्याख्या करने के लिए पहले उनके स्वरूप का वर्णन करना उचित रहेगा। स्वच्छन्दतन्त्र में स्वच्छन्दभैरव का स्वरूप इस प्रकार व्यक्त किया गया है–

त्रिपञ्चनयनं देवं जटामुकुटमण्डितम्।
चन्द्रकोटिप्रतीकाशं चन्द्रार्धकृतशेखरम्॥
पञ्चवक्त्रं विशालाक्षं सर्पगोनासमण्डितम्।
वृश्चिकैरग्निवर्णाभैर्हारेण तु विराजितम्॥
कपालमालाभरणं खड्गखेटकधारिणम्।
पाशाङ्कुशधरं देवं शरहस्तं पिनाकिनम्॥
वरदाभयहस्तं च मुण्डखट्वाङ्गधारिणम्।
वीणाडमरुहस्तं च घण्टाहस्तं त्रिशूलिनम्॥
वज्रदण्डकृताटोपं परश्वायुधहस्तकम्।
मुद्गरेण विचित्रेण वर्तुलेन विराजितम्॥
सिंहचर्मपरीधानं गजचर्मोत्तरीयकम्।
अष्टादशभुजं देवं नीलकण्ठं सुतेजसम्॥[२६]

---

२५ नैश्चिन्त्योत्कटमुच्चलन्नभिलषन् सर्वोत्तरं वर्तितुं।
स्वस्मिन् भेदमभेदितेऽपि विमृशन् स्वात्माविशेषं स्फुरन्॥
अर्थानामुदयव्ययप्रकृतिभूरुच्छ्रायवानिच्छया।
देवो दृक्क्रिययोः प्रदीप्तमहिमा भावेषु वो दिव्यतु॥
- महार्थमञ्जरी, ६८ परिमलव्याख्या।

२६ स्वच्छन्दतन्त्र, २।८८–९४।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यहाँ चित्रित भैरव का स्वरूप पाँच मुख वाला, पन्द्रह नेत्र वाला, अठारह भुजाओं वाला, जटाधारी, मुकुट धारण करने वाला, अर्धचन्द्र धारण करने वाला, बड़ी आँखें वाला, साँप और बिच्छू का माला धारण करने वाला, कपाल का माला धारण करने वाला, खड्ग धारण करने वाला है। खेट, पाश, अंकुश, शर, पिनाक, वर, अभय, मुण्ड, खट्वांग, वीणा, डमरु, घण्टा, त्रिशूल, वज्र, दण्ड, परशु, मुद्गर धारण करने वाला, सिंह की खाल से लिपटे, हाथी की खाल से बने अन्तःवस्त्र धारण करने वाला ध्यान सुदीप्त नीलकण्ठ भैरव का है। परम अद्वैत संवित् तत्त्व ही अपनी सभी विशेषताओं और शक्तियों के साथ समग्र रूप से अवतरित हुआ है। इन सभी विचित्र आकृतियों का प्रयोग कलाशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार किया गया है, जहाँ जिस संकेत द्वारा जो अर्थ समझाया जा सकता है उन सबका प्रयोग हुआ है। इन सभी आकृतियों का गुप्त अर्थ स्वच्छन्दोद्योत के आधार पर इस प्रकार देखा जाता है- जब प्रत्येक में शक्ति प्रमातां, प्रमाण और प्रमेय में गुणित हो जाता है, तो भैरव एकात्मक, नवात्मक आदि अनन्तता में व्याप्त हो जाते हैं। पाँच मुख चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया हैं। ये सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह और अनुग्रह स्वरूप पाँच कृत्यों के सूचक हैं। क्रमविद् इसका वर्णन सृष्टि, स्थिति, संहार, अनाख्या और भासारूपी पाँच अवस्थाओं में करते हैं। पन्द्रह आँखें स्थूल, सूक्ष्म एवं पररूप अपरा, परापरा एवं परा सृष्टि आदि में संलग्नता का बोधक है। जटा से वामेशी, खेचरी, गोचरी, दिक्चरी और भूचरी का बोध होता है। मुकुट का अर्थ है स्वातन्त्र्य और चन्द्रकोटिप्रतीकाशम् का अर्थ है प्रकाश = आनन्द। लोक में भी चाँद की रोशनी आह्लादजनक होता है। अर्धचन्द्र विश्व को भरण करने वाली अमृतात्मिका अमाकला की अनुभूति कराता है। विशालाक्ष होने का अर्थ है परभैरव का स्फुरण। इससे भैरव का लक्ष्य अन्दर और दृष्टि बाहर होकर **अन्तर्लक्ष्यो बहिर्दृष्टिर्निमेषोन्मेषवर्जितः** परिभाषा के मुताबिक भैरवी मुद्रा धारण करने का संकेत मिलता है। साँप, गोमन और बिच्छू की माला पहनने का अर्थ है आणव, मायीय और कार्म मल को छोड़कर उसका संयोग-वियोग रूप में क्रीडा करना। कला हमें यह एहसास कराती है कि पूरा संसार एक शरीर है। जब इच्छा, ज्ञान और क्रिया तीनों एक आपस में मिलते हैं तो नौ भाग बनते हैं: इच्छा + इच्छा, इच्छा + ज्ञान, इच्छा + क्रिया, ज्ञान + इच्छा, ज्ञान + ज्ञान, ज्ञान

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

+ क्रिया, क्रिया + इच्छा, क्रिया + ज्ञान, क्रिया + क्रिया और ये पर और अपर के भाग के कारण अठारह भाग बनते हैं। ये हैं भैरव की अठारह भुजाएँ। महालक्ष्मी के अठारह हाथ की व्याख्या का भी यही अर्थ है। खड्ग से पाश को काटने की ज्ञानशक्ति, खेटक से संसार का भय दूर करने की क्रियाशक्ति, पाश से संसार को बाँधने की स्वातन्त्र्यशक्ति, अंकुश से संसार को अपनी ओर आकर्षित करने के आकर्षणशक्ति, शर और पिनाक कारणग्रन्थि को तोड़ने की शक्ति, वर और अभय मुद्रा भोग और मोक्ष के प्रतीक, मुण्ड को धारण करने से अख्यातिरूप माया को अपहरण करने की शक्ति, खट्वांग धारण करने से सदाशिव तक के संसाररूपी कलंक को अपने में लीन कराने की शक्ति, वीणा, डमरु और घण्टा मन्द्र, मध्य और तारस्वरूप नाद, त्रिशूल इच्छा, ज्ञान और क्रियास्वरूप तीन पाशों को नष्ट करने की शक्ति, वज्र धारण करने का अर्थ है ऊर्ध्वस्थित इच्छा, ज्ञान और क्रियाशक्ति और अधःस्थित तीन प्रकार की एषणा मिलकर पूरा विश्व ही अपनी शक्ति होने का एहसास होना। दण्ड नियति का स्वरूप है, इसलिए दण्ड विश्व का नियामक शक्ति का द्योतक है, परशु नाद का द्योतक है, मुद्गर बिन्दु का सूचक है, और चूँकि बिन्दु एकात्मक है, इसलिए इससे सभी भेदों को नष्ट करने वाला ध्वनित होता है। सिंह पञ्चानन है जो विद्या, ईश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव का प्रतिनिधित्व करता है। गजचर्म ओढने से यह समझ में आता है कि व्यापक माया को ही इसने अपना अम्बर बनाया है। देव शब्द भैरव की क्रीडाधर्मिता को दर्शाता है और नीलकण्ठ पद अख्यातिस्वरूप मायारूपी विष को हरण करने का सूचक है। सुतेजस पद का अर्थ है चिदानन्दघन। स्वच्छन्दभैरव के पाँच वक्त्रों में से ऊर्ध्ववक्त्र स्फटिक के समान है, पूर्ववक्त्र पीला है, दक्षिणवक्त्र नीलकमल जैसा है, उत्तरवक्त्र दाडिम के फूल जैसा लाल है और पश्चिमवक्त्र करोड़ों चन्द्रमाओं के समान धवल और स्वच्छ है। आगम में भैरव के काले स्वरूप के विषय में यह स्वीकार किया गया है कि भेद उपस्थित कराने वाली माया के स्वरूप या लौकिक प्रकाश को निगलकर अद्वैत की प्रतिष्ठा के लिए भैरव ने काला रूप धारण कर लिया है। इसी प्रकार त्रिशूल की त्रिकात्मक व्याख्या **मातृमानप्रमेयांशशूलाम्बुजकृतास्पदाम्** में भी देखी जा सकती है। भैरवीमुद्रा की व्याख्या भी आगम की ही है और तदनुसार भैरव की आँखों की व्याख्या को स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं है। इस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रकार आगम के मूल रहस्यव्याख्या में क्षेमराज की प्रधानता दिखाई देती है। क्षेमराज द्वारा रचित 'भैरवस्तोत्र' सम्पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं है, लेकिन उनके ही उल्लेख भैरवस्वरूप की रहस्यव्याख्या में सहयोगी लगता है –

निःशेषाहृतसारा मय्येव जगत्स्थितिस्तदेकमये।
इति खट्वाङ्गकरङ्कदवहनच्छलतो ददास्याज्ञाम्॥
..।
..॥[२७]

आदि भैरवस्तोत्र के श्लोक भैरवस्वरूप की वास्तविकता को समझने के लिए बहुत उपयोगी हैं। भैरव की व्याख्या के सन्दर्भ में क्षेमराज ने यहाँ देवी की अठारह भुजाओं का तात्पर्यबोधक शास्त्र का उल्लेख किया है। अतः यह मान लेना चाहिए कि रूप या मुद्रा की व्याख्या भैरव या भैरवी में भिन्न नहीं है। **यादृशं भैरवं रूपं भैरव्यास्तादृश्येव हि** श्लोक के अनुसार यह स्मरण रखना चाहिए कि भैरव और भैरवी का स्वरूप समान है। वहीं **ईषत्करालवदनां गम्भीरविपुलस्वनाम्। प्रसन्नास्यां सदा ध्यायेद् भैरवीं विस्मृतेक्षणाम्॥**[२८] का व्याख्या करते हुए **करालत्वं भैरवानुकारतः पाशभक्षणात्, गम्भीरविपुलस्वनत्वं विमर्शप्रधान्यात्, प्रसन्नास्यत्वं परभैरवानुरूप्येण अनुग्रहप्रवणत्वात्**[२९] कहकर पाशभक्षण करने के कारण करालस्वरूप, विमर्श के प्राधान्य होने के कारण विपुलस्वनत्व, अनुग्रह स्वभाव के कारण प्रसन्नता है, ऐसा दर्शाया है। भैरव की परा, परपरा और अपरा शक्ति भी भैरवी ही हैं। **नौमि चित्प्रतिभां देवीं परां भैरवयोगिनीम्**[३०] कहकर अभिनवगुप्त ने चित्प्रतिभा को पराभैरवी के रूप में जो सम्बोधन किया है वह ऊपर क्षेमराज द्वारा **परप्रतिभोन्मज्जनरूप उद्यमः** के रूप में दी गई भैरव की व्याख्या समान है या भैरव सम्बन्धी चिन्तन और भैरवी सम्बन्धी चिन्तन के बीच कोई अन्तर नहीं है। इस परा आदि के भैरवीत्व बोध के बाद **तस्य शक्तयश्चैतास्तिस्रो**

---

२७ भैरवस्तोत्र, स्वच्छन्दतन्त्र में उद्धृत।

२८ स्वच्छन्दतन्त्र, २।११६।

२९ स्वच्छन्दतन्त्र, २।११६ उद्योतव्याख्या।

३० तन्त्रालोक, १।२।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भान्ति परादिका। सृष्टौ स्थितौ लये तूर्ये तेनैता द्वादशोदिता।। कहकर भैरव के देवत्वसिद्धि के बाद की भैरवी की व्याख्या में जिस भैरव का उल्लेख है उनकी परा आदि शक्ति सृष्टि, स्थिति, लय और तूर्य स्वरूप में उल्लास ही द्वादशकाली है अतः ज्ञात होता है कि काली के स्वरूप सम्बन्धी व्याख्यान में भी इसी शास्त्र की प्रवृत्ति है। परा भगवती ही भैरवी हैं, यह **परा भगवती नित्यं भासते भैरवी स्वयम्** में भैरवी को परा भगवती का पर्यायवाची मानने से स्पष्ट हो जाता है।

भैरव-भैरवी गुरु-शिष्य

गुरु प्रकाश की भूमिका में है और शिष्य विमर्श की भूमिका में है इसलिए भैरवागम में भैरव को चिदात्मक प्रकाशस्वरूप गुरु के रूप में और शक्ति को विमर्शप्रधान शिष्य के रूप में लिया जाता है। गुरुपद और शिष्यपद सदाशिव की उपदेशभूमि के उल्लास का क्रमपारम्पर्य है। विना भैरवावेश के अपर गुरु में भी गुरुत्व नहीं मिलता। परगुरु तो **गुरुशिष्यपदेस्थित्वास्वयंदेवः सदाशिवः प्रश्नोत्तरपदैर्वाक्यैस्तन्त्रमाधारभेदतः**[३१] के अनुसार चिदात्मक भैरव ही सदाशिवमूर्ति धारण करके अपने आधार में प्रपञ्च को फैलाने की सत्ता में प्रवेश करके उमापति बन जाते हैं और परा अवस्था में अभेद दशा में स्थित बोध को पश्यन्ती की भूमि में गुरु–शिष्य के रूप में द्विधा विभक्त हो कर उपदेश देते हैं। इसे अमृतानन्द ने **प्रकाशात्मकः परमशिवोऽहमेव विश्वानुग्रहपरः परापश्यन्तीमध्यमावैखरीक्रमेण व्यापृत्य विमर्शांशेन प्रष्टा भूत्वा प्रकाशांशेन प्रतिवचनदातापि सन् तन्त्रं समवतारयामि**[३२] कहकर स्पष्ट किया है। विकल्प के स्पन्दात्मक स्वरूप पश्यन्ती की भूमि में ही जिज्ञासा उभरती है। पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वक्ता के विमर्शक्रम हैं। आत्मज्ञान देने की क्षमता और पाश को काटने की क्षमता ही सदाशिव का गुरुत्व है। इस शैवशास्त्र में गुरु और शिष्य के बीच छह प्रकार के सम्बन्धों की चर्चा की गई है।

१. पर सम्बन्ध

इसमें गुरु और शिष्य दोनों को शिव की अवस्था में माना जाता है। यह सम्बन्ध का उच्चतम स्तर है। इसमें गुरु और शिष्य लोक के कल्याण के लिए बने हैं।

३१ स्वच्छन्दतन्त्र, १।१।
३२ योगिनीहृदयदीपिका, १।१।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सम्प्रदाय की शुरुआत शिव से अभिन्न स्थिति में या भैरवसमापत्ति जैसी ही स्थिति में हुई है।

२. महान् सम्बन्ध

इस स्तर पर गुरु शिव की स्थिति में होते हैं और शिष्य सदाशिव की स्थिति में होता है। चूँकि सदाशिव की स्थिति में इच्छा शामिल है, इसलिए इस गुरुशिष्यपरम्परा में शाम्भव उपाय उन्मीलित होता है।

३. अन्तराल सम्बन्ध

इस भूमि में गुरु सदाशिव और शिष्य अनन्तभट्टारक होते हैं। इसमें विकल्प अधिक सघन होता है।

४. दिव्य सम्बन्ध

यहाँ गुरु अनन्तभट्टारक और शिष्य नन्दकुमार होते हैं।

५. दिव्यादिव्य सम्बन्ध

इसमें गुरु नन्दी और शिष्य सनतकुमार होते हैं। सिद्धौघ के शिष्यों की परम्परा सनत्कुमार तक मिलती है।

६. अदिव्य सम्बन्ध

यहाँ गुरु और शिष्य दोनों इन्सान हैं। इसके नीचे सकलभूमि में एक लौकिक परम्परा है। लौकिक परम्परा देशाध्व और कालध्व के स्थूल स्तर पर है, जबकि दिव्यादिव्यासम्बन्ध से लेकर महान् सम्बन्ध तक के सम्बन्ध सूक्ष्मतर सूक्ष्मतम स्तर पर पहुँच गए हैं। परसम्बन्ध परभैरव का नित्य स्फुरण है, यह भैरव की गुरुत्व है। शिव से लोक तक समापत्ति का क्रम है। त्रितत्त्वोपदेश सकलभूमि की दीक्षा है। चूँकि नर-शक्ति-शिवस्वरूप त्रिक के उपदेश विना अपने वास्तविक स्वरूप का बोध असम्भव है, इसलिए गुरु का लक्षण इसका परिचय देना है। **आदिमान्त्यविहीनास्तु मन्त्राः स्युः शरदभ्रवत्। गुरोर्लक्षणमेतावद् आदिमान्त्यं च वेदयेत्॥**[३३] के अनुसार जैसे आत्मा के विना जीव शव कहा जाता है ठीक वैसे ही 'अ'कार और

३३ श्रीसिद्धामृत, शिवसूत्र, २।७ विमर्शिनीव्याख्या में उद्धृत।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'ह'कार (समुच्चय में बिन्दु सहित) के विना मनन और त्राण धर्मिता नहीं आतें हैं अतः वे सभी व्यर्थ हैं। गुरु का वक्त्र ही शक्तिचक्र है जिसे उपाय के रूप में जाना जाता है। **शक्तिचक्रं तदेवोक्तं गुरुवक्त्रं तदुच्यते** इस वाक्य में प्रतिपादित वक्त्र वाक् में पर्यवसित होता है। भैरव के उद्यन्तृता स्वरूप ही अन्तर्लक्ष्य बहिर्दृष्टि रूप से पराशक्ति की पञ्चकृत्यात्मक प्रवृत्ति को पहचानता है। यदि हम इसके क्रम का विमर्शन करें तो **शक्तिचक्रसन्धाने विश्वसंहारः**[३४] में जो प्रतिपादन हुआ है ठीक वैसे ही कालाग्निरुद्र से लेकर अनाश्रित तक के भुवन का भैरवस्वरूप अग्नि में लय होता है। इस मूल कालाग्नि का अंश लेकर कालाग्निरुद्र अपर भूमि में विद्यमान है, अतः यहाँ लय का अर्थ समावेश है। यह सब भैरव के प्रवर्तन की स्वतन्त्रता मात्र है। **वस्तुतः तस्य देवाधिदेवस्य परबोधस्वरूपणः। विमर्शा परमा शक्तिः सर्वज्ञा ज्ञानशालिनी**[३५] के अनुसार भैरव परबोधस्वरूप हैं। क्रम में कभी विमर्श की प्रधानता मानी जाती है इसलिए शास्त्रोपदेश के क्रम में कहीं भैरवी गुरु और भैरव शिष्य भी होते हैं। **निजपरसत्तासततोदिता मायीयबाह्यान्तःकरणरश्मिदेवता-द्वादशचक्रेश्वर-परभैरव-भट्टारकात्मक-निर्णीततत्त्वाहंरूपानुग्रहः**[३६] के अनुसार रश्मिचक्रेश्वरता की प्राप्ति या यथार्थ में सोऽहम् बोध को ही भैरवदीक्षा के रूप में लिया जाता है।

भैरवीय दीक्षा में सप्तत्रिंशत्तत्त्वोपदेश किया जाता है। **षट्त्रिंशच्छोधनियानि शोधको भैरवः परः। परं त्रिकं तु करणं दीक्षेयं पारमार्थिकी।**[३७] कहकर भैरव को सैन्तीसवें तत्त्व के रूप में गिना जाता है। वस्तुतः विश्वोत्तीर्ण और विश्वमय नहीं हो सकता अतः केवल छत्तीस पदार्थ ही माने जाएं, यह कहना आगम का पूर्ण क्रम नहीं। परं त्रिकं कहकर परा, परापरा और अपरा शक्ति का ग्रहण किया गया है। यही शक्ति ही तत्त्वशुद्धि का असाधारण कारण है। अभिनवगुप्त की व्याख्या के अनुसार, शिवतत्त्व ही सर्वशक्तिमान् भैरव भाव से व्याप्त है- **शिवतत्त्वमेव अनन्तविचित्रस्वातन्त्र्यस्फारस्फुरणशक्तिचमत्कारभरितोपात्तभैरवभावं निर्णीतम्।** यद्यपि अभिनवगुप्त ने सैन्तीसवें तत्त्व की चर्चा **सप्तत्रिशं तु तत्प्राहुर्निसर्गामोदसुन्दरम्** कहकर की है और

---

३४ शिवसूत्र, १।६।

३५ श्रीकालिकाक्रम, शिवसूत्र, ३।४४ विमर्शिनीव्याख्या में उद्धृत।

३६ परात्रीशिका व्याख्या, पृ ९३।

३७ परात्रीशिका व्याख्या, पृ ८०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उन्होंने अनवस्था की आपत्ति मानकर छत्तीस पदार्थ निर्धारण किया है तथापि वह मुख्य पक्ष है, अन्यथा वे आगम का प्रमाण देकर दूसरा पक्ष क्यों दिखाते? हालाँकि, परमात्मा किसी बन्धन में नहीं बँधा है, वह पूर्णतः स्वतन्त्र है। जब यह स्वतन्त्रता प्रकट होती है तभी गुरु में उपदेश देने की क्षमता होती है। परम्परा के विना कोई समावेश लाभ नहीं होता है। जब गुरु योग का उपदेश देते हैं तो अभ्यास से तन्मय हो जाना चाहिए। इसे कालिकाक्रम में दर्शाया गया है-

तस्मान्नित्यमसन्दिग्धं बुद्ध्वा योगं गुरोर्मुखात्।
अविकल्पेन भावेन भावयेत्तन्मयत्वतः ॥
यावत्तत्समतां याति भगवान् भैरवोऽब्रवीत्।[३८]

इस प्रकार, उपदेश देने वालों में सबसे पहले भैरव ही आते हैं। सिद्धयोगीश्वरीमत मालिनीमत का स्रोत है। उस परम्परा को भी **भैरवाद्भैरवीं प्राप्तं सिद्धयोगीश्वरीमतम्**[३९] कहकर गुरुपरम्परा का क्रम भैरव में पहुँचाया गया है। तन्त्रालोक का समापन करते हुए श्रीमहामहेश्वराचार्य अभिनवगुप्तपाद **भैरवो भैरवी देवी स्वच्छन्दो लकुलोऽणुराट्**[४०] कहकर स्वीकार करते हैं कि भैरव ही गुरु परम्परा में आद्यगुरु हैं। वैदिक साहित्य में वेद को अपौरुषेय मानना तथा तान्त्रिक साहित्य में भैरव को प्रथम गुरु मानना और मन्त्रों के ऋषि, छन्द आदि समान होना, इन दोनों के साहित्यिक विकास में एक ही पहलू है, एक ही चिन्तन है।

भैरवागम का परिचय

प्रकाशस्वरूप भगवद्भैरवभट्टारक ने गुरुशिष्यपाद की स्थापना की तथा समग्र आगम का प्रकाशन किया। जब छह दिशाओं में प्रकाश का तारतम्य होता है तब **ईशः प्रकाशैकरूपत्वादूर्ध्वा दिगुच्यते, तत्पुरुषः प्रकाशौन्मुख्येन प्रसरणात् पूर्वा, अघोरः प्रसृतप्रकाशोद्रेकानुकूल्याद्दक्षिणा, वामदेवस्तत्प्रातिकूल्यात् मेयेन्दुसंस्पर्शप्रधाना वामा उत्तरा, सद्योजातः प्रकाशवैमुख्यात् पश्चिमा,**

---

३८ कालिकाक्रम, शिवसूत्र, ३।२५ विमर्शिनी व्याख्या में उद्धृत।

३९ तन्त्रालोक, ३६।१–६ विवेकव्याख्या।

४० तन्त्रालोक, ३६।१गघ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पिचुवक्त्रं प्रकाशसंस्पर्शायोग्यत्वादधरा चेति[४१] के अनुसार पूर्णता, तारतम्य और अभाव को लेकर छह आम्नाय बने हुए हैं। जिस आम्नाय में जिस कला के अनुसार का प्रकाश है वहाँ तदनुसार ही शास्त्रों का स्फुरण होता है। प्रकाश की किरण जिस दिशा में जाती है उस उद्गम बिन्दु के सापेक्ष प्रकाश की ऊपर की दिशा वही होती है। चूँकि वह्नि दश कला से युक्त होता है, इसलिए इसका केन्द्र नियमित रूप से ईशानवक्त्र है, लेकिन रवि और शशि की कला किसी भी दिशा में केन्द्रित हो सकती है। वह्नि कला में अघोरवक्त्र की प्रधानता है अर्थात् सामने मिलने वाला दर्शन अघोरवक्त्र का है। अजितागम के अनुसार आगम का आविर्भावक्रम इस प्रकार है-

१. ईशानवक्त्र से कामिक, योगज, चिन्त्य, कारण, अजित, दीप्त, सूक्ष्म, सहस्र, अंशुमान् और सुप्रभेद।
२. सद्योजातवक्त्र से विजय, पारमेश, निःश्वास, प्रोद्गीत और मुखबिम्ब।
३. तत्पुरुषवक्त्र से ललित, आग्नेय और वातुल।
४. अघोरवक्त्र से स्वायम्भुव, वीर, रौरव, मकुट और किरण।
५. वामदेववक्त्र से सिद्ध, सन्तान, गर्वोत्तम्, चन्द्रज्ञान और विमल।

कारणागम में **स्वच्छन्दादीनि तन्त्राणि दक्षिणं शैवमुच्यते। कामिकादीनि तन्त्राणि सिद्धान्ता इति ईरिताः**[४२] कहकर भैरव को परमतत्त्व प्रतिपादन करने वाले स्वच्छन्दतन्त्र आदि शास्त्रों को शैव के पर्याय के रूप में लिया है। भैरवागम को दक्षिणशास्त्र कहकर सिद्धान्त शिखामणि में शक्तिप्रधान शास्त्र को वामा, सप्तमातृका प्रतिपादक शास्त्र को मिश्र तथा सिद्धान्तशास्त्र को वेदसम्मत माना गया है।[४३] श्रीकण्ठीयसंहिता के अनुसार दक्षिणमार्ग के चौबीस भेद हैं। इन्हें सामूहिक रूप से भैरवागम के नाम से जाना जाता है। कामिकागम में **सिद्धान्तं गारुडं वामं भूततन्त्रं च भैरवम्। ऊर्ध्वपूर्वकुबेराप्ययाम्यवक्त्राद् यथाक्रमम्।** कहकर ऐसा माना गया है कि भैरवागम की उत्पत्ति दक्षिणवक्त्र से हुई है। मृगेन्द्रागम में भी **स्रोतांसि**

४१ तन्त्रालोक, १५।२०४गघ–२०६कख विवेकव्याख्या।
४२ नित्याषोडशिकार्णव की भूमिका, पृ. ५४ में उद्धृत।
४३ शक्तिप्रधानं वामाख्यं दक्षिण भैरवात्मकम्।
सप्तमातृपरं मिश्रं सिद्धान्तं वेदसम्मतम्॥
- सिद्धान्तशिखामणि, ५।११।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कामिकाद्यूर्ध्वमसितांगादिदक्षिणम्[४४] कहकर यह दिखाया गया है कि असितांगादि तन्त्र दक्षिणस्रोत से सम्बन्धित है। इसी प्रकार, **वामदक्षिणसिद्धान्तभेदत्रयविभेदतः**[४५] के अनुसार सदाशिव, भैरव और तुम्बुरु को त्रिस्रोत का प्रतिपादक माना जाता है और दक्षिणस्रोत में भैरव का गुरुत्व स्वीकार कयि जाने से मूलतः भैरवागम दक्षिणस्रोतपक्षपाती है। ब्रह्मयामल के अनुसार भैरवाष्टक, यामलाष्टक, योगिनीजाल, योगिनीहृदय, मन्त्रमालिनी, अघोरेशी, अघोरेश्वरी, क्रीड़ाघोरेश्वरी, लाकिनीकल्प, मारीचि, महामारी, उग्रविद्या आदि तन्त्र विद्यापीठ से सम्बद्ध हैं तथा वीरभैरव, चण्डभैरव, महाभैरव और महावीरेश मुद्रापीठ से सम्बद्ध हैं[४६] ऐसा कहकर भैरवाष्टक को विद्यापीठ से सम्बद्ध माना गया है। पीठविभाजन में विद्या, मन्त्र, मुद्रा और मण्डल नाम से चार पीठ होती हैं। **मुद्रामण्डलपीठं तु महापीठं तथैव च। विद्यापीठं तथैवेह चतुष्पीठा तु संहिता॥ स्वच्छन्दभैरवश्चण्डः क्रोध उन्मत्तभैरवः। ग्रन्थान्तराणि चत्वारि मन्त्रपीठं वरानने॥**[४७] के अनुसार मन्त्रपीठ में चार भैरवतन्त्रों की गणना की जाती है, जिनके नाम हैं स्वच्छन्द, चण्ड, क्रोध और उन्मत्त। यद्यपि मन्त्रपीठ और विद्यापीठ मानने पर मतैक्य नहीं है, फिर भी **भैरवपदेन च दक्षिणस्रोतः समुद्भूतत्वमस्य शास्त्रस्य सूचितम्**[४८] कहकर क्षेमराज यह असन्दिग्ध कर देते हैं कि भैरवागम की उत्पत्ति दक्षिणस्रोत से हुई है। आविर्भाव और तिरोभाव शक्ति के माध्यम होता है। शक्ति की गति वामावर्त है, इसलिए प्रथमतः शक्ति को वामेशी के रूप में ही जाना जाता है। वामा और दक्ष शक्ति और शिव के रूप हैं। इसे ही उत्तर और दक्षिण स्रोतों में विभाजित किया गया है। जयरथ का कहना है कि भैरव स्वयं दक्षिणस्रोत हैं और पञ्चस्रोत में शास्त्र के विभागकर्ता भी हैं। **कश्चिद्दक्षिणभूमिपीठवसतिः श्रीमान् विभुर्भैरवः। पञ्चस्रोतसि सातिमार्गविभवे शास्त्रे विधाता च यः॥**[४९] इस श्लोक से दक्षिणस्रोत का अर्थ दक्षिणभूमि का पीठ लिया गया है। इस प्रकार तान्त्रिक विचारधारा के विकासक्रम में यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि दक्षिणदेश में

---

४४ मृगेन्द्रागम, १।३५।

४५ नेत्रतन्त्र, १६।२।

४६ स्टडिज इन् दि तन्त्राज्, पृ १०४–१०५।

४७ श्रीसर्ववीर, स्वच्छन्दतन्त्र १।४–७ उद्योतव्याख्या में उद्धृत।

४८ स्वच्छन्दतन्त्र १।३ उद्योतव्याख्या।

४९ तन्त्रालोक, १।२१३ विवेकव्याख्या।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्थित पीठ ने भैरव की सर्वोच्चता स्वीकार कर ली परन्तु भैरवी और भैरव के चिन्तन को सुदूर उत्तर और सुदूर दक्षिण में स्वीकार करने के बजाय यह कहना अधिक उचित होगा कि उसी परम्परा के आचार्यों ने दक्षिण में भैरवपीठ और उत्तर में भैरवीपीठ की स्थापना की। नेत्रतन्त्रोद्योत में क्षेमराज **भैरवागमेषु दक्षिणस्त्रोत:समुत्थेषु स्वच्छन्दचण्डत्रिशिरोभैरवादिषु**[५०] कहकर स्वच्छन्द आदि को दक्षिणस्रोत से उत्पन्न शास्त्र मानते हैं। शिव+शक्ति+संघट्ट+योगिनी इन चार भेदों का दक्षिणस्रोत में प्रत्येक में उद्बुभूषु, उद्भूत, तिरोधित्सु और तिरोहित चार चार भेद होने पर १६ भेद होते हैं। इन १६ भेदों में ईशान, तत्पुरुष, वामदेव और सद्योजात मिलकर ६४ भेद होते हैं। अष्टाष्टक तन्त्र का उदय तब होता है जब अद्वयप्रधान दक्षिण की वैसर्गिक कला स्वतन्त्र शिव में उन्मेषित हो जाती है। श्रीकण्ठीय संहिता के अनुसार-

भैरवं यामलं चैव मताख्यं मङ्गलं तथा।
चक्राष्टकं शिखाष्टकं बहुरूपं च सप्तमम्॥
वागीशं चाष्टमं प्रोक्तमित्यष्टं वीरवन्दिते।
एतत्सादाशिवं चक्रं कथयामि समासतः॥
...।
एतत्सादाशिवं चक्रमष्टाष्टकविभेदतः॥[५१]

इसके अनुसार अष्टभैरव चौसठ तन्त्र के प्रतिपादक हैं। चूँकि तान्त्रिक साहित्य की सूची बहुत प्राचीन है, इसलिए अधिकांश तन्त्र या तो लुप्त हो गए हैं या भिन्न नाम से जाने जाते हैं। चौसठ तन्त्र को स्वीकार करने का मत बहुत प्रबल होने के कारण बाद में इसका काफी विस्तार हुआ। अभिनवगुप्त द्वारा वर्णित वामकेश्वरीमत में चौंसठ तन्त्रों की सूची मिलती है। इसी प्रकार सौन्दर्यलहरी की लक्ष्मीधरा टीका, सर्वोल्लासतन्त्र आदि में भी चौसठ तन्त्रों की सूची अलग-अलग रूपों में दी गई है। परवर्ती साहित्य में चौंसठ तन्त्रों को विष्णुक्रान्ता, अश्वक्रान्ता और रथक्रान्ता में विभाजित किया गया है। देशभेद से गौड़, कश्मीर और केरल के रूप में भी तन्त्रों का विभाजन किया है।

लुप्तागमसङ्ग्रह में आनन्दभैरव, आनन्दशासन, उच्छुष्मभैरव, त्रिशिरोमत, पञ्चामृत,

५० नेत्रतन्त्र, १०।१-१०कख उद्योतव्याख्या।
५१ श्रीकण्ठीयसंहिता, तन्त्रालोक, १।१८ विवेकव्याख्या में उद्धृत।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भैरवागम, मन्त्रराज, महास्वच्छन्द, महास्वच्छन्दसङ्ग्रह, सर्वज्ञभैरव, सर्वमंगलशास्त्र, स्वच्छन्द, स्वच्छन्दभैरव, स्वच्छन्दसङ्ग्रह आदि के उपलब्ध श्लोकों का सङ्ग्रह किया गया है। चूँकि बाद के सम्प्रदायों और परम्पराओं ने भैरवीपरक सिद्धान्त को अपनाया, इसलिए भैरव के बारे में विचार और साहित्य तुलनात्मक रूप से विकसित नहीं हुआ है।

मूल चिन्तन की दृष्टि से दस शैवागम भेदात्मक हैं तथा अष्टादश रुद्रागम भेदाभेदात्मक हैं, इसलिए भैरवागम के साथ इनका आधारभूत चिन्तन में भिन्नता है तथापि सद्योज्योतिप्रभृति आचार्यों ने भेदवाद का तिरस्कार किया है, अत: यह कहा जा सकता है कि तीनों प्रकार के विचार एक ही परम्परा के हैं। ज्ञान की भूमि या भैरव का साम्राज्य तीनों अवस्थाओं से उत्तीर्ण है। चूँकि अपरा और परापरा शक्ति को भैरव ने भेद और भेदाभेद दर्शन का उपदेश दिया है, इसलिए पराभिमान और अपराभिमान उत्पन्न हुआ है लेकिन अभेदशास्त्र का उपदेश करते समय भैरव के ही स्वरूप में करते हैं तो सदाशिव स्वरूप से भेदशास्त्र का और रुद्र स्वरूप से भेदाभेदशास्त्र का उपदेश करते हैं। संक्षेप में, प्रारम्भ से अन्त तक भैरव का चिन्तन आठ अंक पर आधारित है। पृथक् भैरव मानने वालों ने वही नाम के भैरवप्रतिपादक तन्त्र को भैरवागम में गिनाया है।

भैरवी भाव

कालक्रम सिद्ध का भैरवी भाव है। इसी प्रकार देशक्रम सिद्ध अथवा दोनों होने पर भी भैरवीभाव प्राप्त होता है। देश और काल आणव उपाय के साधन हैं, इसलिए आणव उपाय क्रमसापेक्ष है और भैरवीभाव की प्राप्ति में कारण है। इसीको अभिनवगुप्तपाद **अध्वानमिमं सकलं देहे प्राणेऽथ धियि मत्तनभसि। संविदि च परं पश्यन् पूर्णत्वाद् भैरवी भवति**[५२] ऐसा कहकर बताते हैं कि शरीर, प्राण, बुद्धि, मन आदि में अध्वशोधन करके भैरवी भाव प्राप्त किया जा सकता है।

भैरवजाति

भैरवजाति समानता की जाति या वर्णव्यवस्था का विरोधी परम्परा है। भैरवदीक्षा में अब्राह्मणों का अधिकार नहीं है, लेकिन यहाँ जन्म से जाति मानना दूषित माना

५२ तन्त्रसार, ७ उपसंहार श्लोक।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जाता है। ऋषि-मुनियों की परम्परा बहुत समय से लुप्त हो गई है, स्त्रियाँ बहुत चञ्चल होती हैं इसलिए जन्म से ब्राह्मणत्व की मान्यता स्वीकार्य नहीं है। ऐसा कहकर ये संस्कारविशेष से भैरवदीक्षा प्राप्त करने वाले सभी को भैरवजाति का मानते हैं।

भैरवीचक्र

वीरभाव के कौलों और योगिनियों की गुप्त साधना प्रक्रिया को भैरवीचक्र कहा जाता है। इसमें ज्ञात होता है कि साध्य देवता के अनुसार नायक-नायिका के रूप में पञ्चमकार का प्रयोग किया जाता है और पूजा की जाती है। महाभैरव की साधना में प्रमुख भैरवेश्वर मण्डल के नायक होते हैं और उनकी दूती उनके साथ होती हैं और आठों दिशाओं में भैरवेश्वर के अनुचर अपने अपने दूतियों के साथ स्वच्छन्द रूप से रमण करते हैं। इसे **प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः। निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक्** के अनुसार भैरवस्रोत वाले व्यक्तियों का गुप्तयोग समझा जाता है।

भैरवमुद्रा

ग्राह्यग्राहकाद्यात्मकबाह्यक्षोभमयत्वेऽपि तदासंगमपहाय स्वात्ममात्रनिष्ठः[५३] की परिभाषा के अनुसार बाह्य क्षोभ से उपरत न होते हुए भी उसके संग को छोड़कर आत्ममात्र में स्थित अवस्था को भैरवमुद्रा कहा जाता है। इसमें क्रमानुसार विकल्पों को लय करते हुए भैरवात्मकता का भरण किया जाता है।

भैरवयाग

इस परम्परा में भैरव के विभिन्न यागों का वर्णन किया गया है। पञ्चामृतयाग की तरह, भैरवामृतमहयाग भी भैरव सम्प्रदाय का एक कृत्य है। अन्य याग प्रारम्भ करते समय यह याग सबसे पहले किया जाता है। इसी प्रकार, भैरवीचक्रमहायाग, भैरवीचक्रयाग आदि भी याग से जुड़े शब्दों के रूप में प्रयोग किया जाता है।

---

५३ तन्त्रालोक, ५।१२७ विवेकव्याख्या।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भैरवाचार

भैरवाचार अद्वैतवाद से प्रेरित समानता के विचार से जुडा एक आचार है। जहाँ कोई आचार नहीं, वह भैरवाचार है। आचार न होने का मतलब अनाचार नहीं है। गीता के **कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः**[५४] के अनुसार अकर्म की परिभाषा ही भैरवाचार है। भैरवाचार 'सत्' और 'दुर्' से उत्पन्न भेदपूर्ण दृष्टि को सहन नहीं करता। गीता में बताया गया संन्यासी या ज्ञानी व्यक्ति के आचार को भैरवाचार के दृष्टान्त के रूप में लिया जा सकता है।

भैरवावेश

भैरवावेश वह सर्वथा पूर्णता का भाव है जिसे विश्वोत्तीर्ण और विश्वमयतत्त्व में अपनी संयोग से अनुभव किया जाता है। इस पूर्णता में कुछ भी भैरवावस्था से पृथक् नहीं रहता। समग्रता का अनुभव भैरवावेश से ही होता है। विश्वाहन्ता का अनुभव इससे निम्न स्तर का है। इस दर्शन में मुक्ति, कैवल्य, निर्वाण आदि शब्दों से जिस अनुत्तरता को समझाने का प्रयास किया गया है, उसे भैरवावेश शब्द से समझाया गया है। यह दर्शन कौलों के विश्वमय परमतत्त्व मानने वाले सिद्धान्त और तान्त्रिकों के विश्वोत्तीर्ण परमतत्त्व मानने वाले सिद्धान्त का समुच्चय स्वरूप है।

भैरवबिल

ब्रह्मस्थान या सहस्रार के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र शब्द द्वारा जिस उत्तरी मार्ग का बोध होता है, उसे भैरवबिल कहा जाता है। भैरवबिल ही ऊर्ध्वतरण के क्रम में सबसे उपर का स्थान है। जब तक ऊर्ध्वतरण का क्रम चलता है तब तक मुक्ति नहीं है। अनुत्तर की व्याख्या में नाभि से लेकर भैऱवबिल तक का मार्ग को उत्तरमार्ग के रूप में लिया गया है।

भैरवशास्त्र

दक्षिणस्रोत से उत्पन्न तन्त्र जहाँ भैरव की सर्वोच्चता को स्वीकार किया जाता है, भैरवशास्त्र कहलाते हैं। इसे वाम मार्ग से ऊँचा माना जाता है।

---

५४ भगवद्गीता, ४।१८कख।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भैरवैकात्म्य

ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, मन तथा बुद्धि की अधिष्ठात्री द्वादश देवियों के परस्वरूप संविन्मयता का लाभ होने पर जब पूर्णता की अभिव्यक्ति होती है तब भैरव के साथ अभेद बोध होने के कारण इसे भैरवैकात्म्य कहा जाता है।

भैरवीभाव

गुरुकृपा द्वारा मन्त्र समूह के प्रकाशन और रश्मि की शुद्धता का लाभ अर्थात शुद्ध चिन्मयता बोध के बाद संसार सागर से पार होना ही भैरवीभाव है। आचार्य अभिनवगुप्त का कथन **षट्त्रिंशत्तत्त्वकलापस्य लौकिकतत्त्वोत्तीर्णस्य भैरवभट्टारकाभेदवृत्ते न्यासे पूर्णत्वाद् भैरवीभाव:**[५५] के अनुसार यदि समग्रतत्त्वमय भैरव के साथ अपनी अभिन्नता स्थापित हो जाता है, तो परिपूर्णता का वह भाव ही भैरवीभाव है।

भैरवीय संस्कार

भले ही कोई किसी गुरु से मन्त्र न लेता हो, फिर भी उसे स्वतः मन्त्रवीर्य के ज्ञान के साथ सांसिद्धिक रूप में दीक्षित या सुसंस्कृत होना भैरवीय संस्कार है।

भैरववपु

भैरव को अपने शरीर के रूप में महसूस करना ही भैरवपु की अवस्था कहलाती है। इस स्थिति में परिपूर्ण भैरव दृष्टि से सम्पूर्ण तत्त्व भासित होते हैं। इस स्थिति में अपने में ही सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय का बोध होता है।

भैरवक्रम

शाक्त परम्परा की दस महाविद्याओं में से भैरवी महाविद्या की साधना को भैरवक्रम कहा जाता है। इसमें स्वपुष्पक्रम के अनुसार भैरवी भाव से अथवा गवाक्षयोग से अविकारी रहकर नग्न स्त्री को देखकर साधना करनी चाहिए। बाएँ हाथ पर यन्त्र लिखकर अवशेष से तिलक लगाना, बालों में कंघी करना आदि इसकी विधियाँ हैं।

---

५५ तन्त्रसार, १३ आह्निक, पृ १२९।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अष्टभैरव

अष्टभैरव का चिन्तन पूर्वमालिनी वर्णमाला के वर्गों से जुड़ा है । 'अ-क-च-ट-त-प-य-श' आठ वर्गों में से अष्टभैरव एक एक वर्ग के स्वामी हैं । इस प्रकार प्रत्येक मातृका शिवशक्तिसामरस्यस्वरूप है । जिस तरह सम्प्रदाय अलग अलग हैं उसी तरह अष्टभैरव के नाम भी अलग अलग हैं । स्वच्छन्दभैरव के आवरण में रहने वाले अष्टभैरव कपालेश, शिखिवाहन, क्रोधराज, विकराल, मन्मथ, मेघनादेश्वर, सोमेश्वर और विद्याराज हैं ।[५६] अष्टभैरव के सब से प्रचलित मत अनुसार-

असितांगो रुरुश्चण्डः क्रोध उन्मत्त एव च ।
कपाली भीषणश्चेति संहरश्चाष्टभैरवाः ।।

के अष्टभैरव के साथ श्रीकण्ठीय संहिता में सुने गए असितांग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त और कपालीश नाम मिलते जुलते हैं । स्वच्छन्दतन्त्र के कपालेश नाम को यदि कपाली माना जाए तो एक भैरव समान हुए । मतशास्त्र में स्वच्छन्दभैरव को सृष्टिवज्रकुब्जिका (पश्चिमाम्नाय) का भैरव माना गया है ।

भैरव सम्प्रदाय भैरव को विश्वातीत और विश्वमय मानता है । समना ही क्रम की अन्तिम अवस्था है । आगमशास्त्र में उन्मना को क्रमातीत या अनुत्तरस्वरूप माना गया है । सभी आठों भैरव उन्मना से अतीत हैं । वे परबोधस्वरूप हैं । यहाँ मन्थान, षट्चक्र, फट्कार, विभक्ष, वीरेश, श्रीमन्तेश्वर, हंसगर्भ और चण्डिकेश्वर के नाम से आठ भैरव आते हैं । इस परम्परा और दक्षिणाम्नाय में गिने गए भैरव महामन्थान, खचक्र, फट्कार, एकात्मानन्द, रविभक्षण, चण्ड, नभोनिर्मल और डामरभैरव के बीच कई समानताएँ हैं । शक्तिसंगम के भैरव प्रकरण में भैरवमत में सोलह विद्याओं का उल्लेख मिलता है । शक्तिसंगमन्त्र के अनुसार उन्मत, असितांग आदि सम्प्रदाय वेदबाह्य हैं ।

---

५६ कपालीशं तु पूर्वायामाग्नेय्यां शिखिवाहनम् ॥
दक्षिणे क्रोधराजं तु विकरालं तु नैर्ऋते ।
मन्मथं पश्चिमे भागे मेघनादेश्वरं तथा ॥
वायव्ये देवि विन्यस्य सोमराजं तथोत्तरे ।
विद्याराजं तथैशान्यां विन्यसेत्तु सुभावितः ॥
- स्वच्छन्दतन्त्र, २।११७गघ—११९ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भैरवाष्टक के प्रतिपादन के सन्दर्भ में लक्ष्मीधर और गौरीकान्त आदि के मत भी स्मरणीय हैं। इसके अनुसार सिद्धभैरव, वटुकभैरव, कङ्कालभैरव, योगिनीभैरव, महाभैरव, शक्तिभैरव, मायिकभैरव और कङ्कालाग्निभैरव का प्रतिपादन करने वाले भैरवाष्टक तन्त्र हैं।[५७] यद्यपि वटुकभैरव की चर्चा बहुत होती है परन्तु इनकी पृथक् गणना करके ६४ तन्त्रों में गणना यहाँ की गई है।

यदि हम भैरवाष्टक की परम्परा को देखें, तो श्रीकण्ठीयसंहिता जो अपेक्षाकृत प्राचीन तन्त्र है, उसमें उल्लिखित यामलाष्टक में से ब्रह्मयामल में स्वच्छन्द, क्रोध, उन्मत्त, उग्र, कपाली, झंकार, शेखर और विजयभैरव का उल्लेख है। नेत्रतन्त्र में स्वच्छन्द, चण्ड और त्रिशिरोभैरव का उल्लेख है। उच्छुष्मभैरव का उल्लेख शिवसूत्रविमर्शिनी और बौद्धतन्त्र 'अद्वयवज्रसंग्रह' में भी मिलता है। ब्रह्मयामल के 'शेखरभैरव' का वही नाम है जो त्रिकपरम्परा के 'रतिशेखर' भैरव का है। भैरवाष्टक की योगिनी के रूप में ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा और महालक्ष्मी प्रसिद्ध हैं। नेत्रतन्त्र में एक बार सप्त मातृका का उल्लेख किया गया है, जबकि एक अन्य स्थान पर चामुण्डा बहुरूपिणी कहकर बहुरूपिणी को आठवीं मातृका के रूप में लिया गया है। त्रिशिरोभैरव के अनुसार अघोरा परमघोरा घोररूपा तथा परा। घोरवक्त्रा तथा भीमा भीषणा वमनी परा॥ ऐसा कहकर अष्टमातृका के रूप में अन्य नाम गिनाए गए हैं। ब्राह्म्यादि के सौम्य रूप की अपेक्षा अष्टभैरव के उग्र रूप के साथ 'अघोरा' आदि नामावली अधिक सुसंगत प्रतीत होता है। **यादृशं भैरवं रूपं भैरव्यास्तादृश्येव हि** के अनुसार ब्राह्मी पृथक् ध्यान की मातृका को अष्टभैरव के साथ मानना निश्चित रूप से सम्प्रदाय के अनुरूप नहीं माना जाता है। भैरव के अष्टनायिका मानने की एक परम्परा के अनुसार **मंगला विजया भद्रा जयन्ती चापराजिता। नन्दिनी नारसिंही च वैष्णवीत्यष्टनायिका॥**[५८] कहकर मंगला आदि को नायिका तथा असितांग आदि को वीर कहा गया है। अष्टभैरव के असितांग आदि नामों में भीषणभैरव के स्थान पर उग्रभैरव भी पढ़ा जाता है। इसी प्रकार उग्रचण्डा आदि को इनकी शक्ति माना गया है। वहीं ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं को देवशक्ति के रूप में गिना गया है।

---

५७ नित्याषोडशिकार्णव, उपोद्घात, पृ. २४।

५८ महानिर्वाणतन्त्र, ५।१३४।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अष्टभैरव और अष्टमातृका अक्षरों के वर्गाष्टक से सम्बन्धित हैं। शक्ति, सदाशिव और ईश्वरभूमि से बाहर के पर्दे में त्रिकात्मकता ही विस्तारित होकर अष्टकस्वरूप के रूप में प्रकट होती है। जब पराहन्ता की आच्छादक शक्ति समग्र तत्त्व में विभक्त होती है तब अष्टवर्ग की अष्टमातृका और उन्मेषक शक्ति या चैतन्य में विलापन करने के लिए अष्टभैरव के रूप में उत्पन्न होती हैं। इनका सार या बिन्दु भैरव+भैरवी का एकात्मक नौवाँ रूप है और यह आनन्द के माध्यम से व्यक्त होने वाले भैरव का रूप है। त्रिकदर्शन की भैरवत्रिकात्मकता तीन या चार पीठों की परम्परा में सन्निहित है और इसी प्रकार अष्टकस्वरूप आठ पीठों से जुड़ा है। इसीका एकावन्न पीठ के रूप में विस्तार मानना भी मातृका की गणना के अन्तर्गत का तात्त्विक विश्लेषण है। एकावन्न पीठ की परम्परा उनन्चास, पचास, बावन्न, चौवन्न, साठ आदि पीठ मानने की परम्परा से अधिक व्यापक एवं सर्वमान्य प्रतीत होती है। प्रत्येक पीठ में शक्तिस्वरूपा भैरवी तथा शिवस्वरूप भैरव रहते हैं।

पीठ सम्बन्धी कहानी की खोज करते हुए, कोई ऋग्वेद तक पहुँच सकता है।[५९] इसका विस्तार ब्राह्मण ग्रन्थों में देखा जा सकता है। दक्षयज्ञ के विध्वंस की चर्चा महाभारत एवं पुराण ग्रन्थों में व्यापक रूप से बिखरी हुई है। पीठनिर्णय (महापीठनिरूपणम्) के अनुसार पीठ पर भैरव और देवी इस प्रकार हैं-

१. हिंगुला = भीमलोचन + कोट्टरी,
२. करवीर = क्रोधीश + महिषमर्दिनी,
३. सुगन्धा=त्र्यम्बक+सुनन्दा,
४. कश्मीर = त्रिसन्ध्येश्वर + महामाया,
५. ज्वालामुखी = उन्मत्तभैरव + अम्बिका,
६. जालन्धर=भीषण+त्रिपुरमालिनी,
७. वैद्यनाथ+जयदुर्गा,
८. नेपाल = कपाली + महामाया,
९. मानस = अमर + दाक्षायणी,
१०. उत्कल=जगन्नाथ+विमला,
११. गण्डकी = चक्रपाणि + गण्डकी,
१२. बहुला = भीरुक + बहुला,
१३. उज्जयिनी = कपिलाम्बर + मंगलचण्डिका,
१४. चण्डल=चन्द्रशेखर+भवानी,
१५. त्रिपुरा = त्रिपुरेश + त्रिपुरसुन्दरी,
१६. त्रिस्रोत=भैरवेश्वर+भ्रामरी,
१७. कामगिरि = उमानन्द + कामाख्या,
१८. भूतधात्री = क्षीरखण्डक + महामाया,

५९ ऋग्वेद, १०।६१।५-७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१९. कालीपीठ = नकुलीश + कालिका, २०. प्रयाग = भव + ललिता,
२१. जयन्ती = क्रमदीश्वर + जयन्ती, २२. किरीट=संवर्त+भुवनेश्वरी,
२३. वाराणसी=कालभैरव+विशालाक्षी, २४. कन्याश्रम = निमिष + सर्वाणी,
२५. कुरुक्षेत्र=स्थाणु+सावित्री, २६. मणिवेदक=सर्वानन्द+गायत्री,
२७. श्रीशैल = सम्बरानन्द + महालक्ष्मी, २८. कांची = रुरु + देवगर्भा,
२९. कालमाधव = असितांग + काली, ३०. नर्मदा=भद्रसेन+शोणा,
३१. रामगिरि = चण्डभैरव + शिवानी, ३२. वृन्दावन = भूतेश + उमा,
३३. अनल = संहार + नारायणी, ३४. पञ्चसागर = महारुद्र + वाराही,
३५. करतोयातट = वामन + अपर्णा, ३६. श्रीपर्वत = सुन्दरानन्द + श्रीसुन्दरी,
३७. विभीषक = कपाली + भीमरूपा, ३८. प्रभास = वक्रतुण्ड + चन्द्रभागा,
३९. भैरवपर्वत=लम्बकर्ण+अवन्ती, ४०. जलस्थान=विकृताक्ष+भ्रामरी,
४१. गोदावरीतट = विश्वेश + विश्वमातृका, ४२. रत्नावली=शिव+कुमारी,
४३. मिथिला=महोदर+उमा, ४४. कालीघाट = क्रोधीश + जयदुर्गा,
४५. नलाहटी = योगीश + कालिका, ४६. वक्रेश्वर = वक्रनाथ + महिषमर्दिनी,
४७. यशोर = चन्द्रमा + यशोरेश्वरी, ४८. अट्टहास = विश्वेश + फुल्लरा,
४९. नन्दिपुर = नन्दिकेश्वर + नन्दिनी, ५०. लंका=राक्षसेश्वर+इन्द्राक्षी,
५१. विराट = अमृत + अम्बिका।[६०]

इस प्रकार शिव और उमा की शक्ति का विस्तार पीठ, उपपीठ, क्षेत्र, उपक्षेत्र, सन्दोह आदि के रूप में दिखाई देता है। पीठ, भैरव, भैरवी आदि में साम्प्रदायिकता के कारण नाम में अन्तर है, परन्तु विचार के धरातल पर कोई अन्तर नहीं है।

भैरव के सम्प्रदाय

ऊपर दिखाया गया कि भैरव दक्षिणस्रोत में पड़ता है। यह आचार्यों द्वारा मान्यता प्राप्त एक प्रमुख सम्प्रदाय है। वस्तुतः प्रत्येक आम्नाय में किसी न किसी रूप में भैरव

६० डिसी सरकार, दि शाक्त पीठाज़, पृ ४३–५७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को स्वीकार किया गया है। स्वच्छन्दतन्त्र भैरव परम्परा का सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है और स्वच्छन्द एक प्रमुख सम्प्रदाय भी है। क्षेमराज ने दक्षिणस्रोत के अनुसार मृत्युजिद्भट्टारक की व्याख्या की है। क्षेमराज **पाशराशिकवलीकृतिदक्षं दक्षिणं वपुरघोरममोघम् ।। भैरवं श्रयेदनुग्रहहेतोः शांकर जयति नेत्रमणुत्रम्**[६१] कहकर अघोवक्त्र के साथ मृत्युजिद्भट्टारक की अभिन्नता स्थापित करते हैं। इस प्रकार अमृतेश भैरव को दक्षिणस्रोत से सम्बद्ध माना जाता है। कापाल, कालामुख, अघोर आदि सम्प्रदायों में भैरव सम्बन्धी जो चिन्तन है त्रिकपरम्परा को वह स्वीकार्य नहीं है। षडर्धपरम्परा (त्रिक) के भैरव और भैरवस्रोत में लिए गए भैरव मूलतः भैरव ही हैं लेकिन न केवल तान्त्रिक व्याख्या में बल्कि परम्परा में भी अन्तर है, ऐसा **भैरवस्रोतसि संहारप्रधानत्वाद् दक्षिणे महाकालयमुने वामे नन्दिगंगे। षडर्धे तु दिण्डिमहादरौ अधिकौ**[६२] से जाना जाता है। इससे यह भी पता चलता है कि गणेश और वटुक की पूजा की परम्परा भैरवस्रोत से नहीं है। त्रिकपरम्परा में महाप्रेत सदाशिव की नाभि में दबे त्रिशूल के तीन शूलों में जिस तरह परा, परापरा और अपरा भैरवी माने जाते हैं उसी तरह भैरवसद्भाव, रतिशेखर और नवात्मभैरव माना जाता है। चूँकि प्रधान भैरव का स्थान इन तीनों से ऊँचा है, इसलिए इनको आवरण के प्रमुख देवदेवियों रूप में लिया जाता है। अतः षडर्धशास्त्र में अद्वैत से भी उच्चस्तरीय चिन्तन आवश्यक हो गया है। **स्थण्डिलेऽग्नौ पटे लिंगे पात्रे पद्मेऽथ मण्डले। मूर्तौ घटेऽस्त्रसंघाते घटे सूत्रेऽथ पूजयेत् ।।**[६३] के अनुसार लिंग, मण्डल, घट, मूर्ति आदि भैरव पूजन के आधार हैं। ज्ञातव्य है कि निशाचार और सर्वाचार के आधार पर भैरवपरम्परा वाममार्ग, कुलपरम्परा, कौलपरम्परा और त्रिकपरम्परा से भिन्न है।[६४] इस दृष्टि से यद्यपि भैरवस्रोत वाममार्ग से श्रेष्ठ है, तथापि कुल आदि की दृष्टि से निम्न है। भैरव को संख्यात्मक दृष्टि से एक से अनन्त भेद तक देखा जाता है। तन्त्रालोक के **एकवीरो यामलोऽथ**

---

६१ नेत्रतन्त्रोद्योत, अधिकार १०, मंगलाचरण श्लोक।

६२ नेत्रतन्त्र, ३।९ उद्योतव्याख्या।

६३ तन्त्रालोक, २७।४५गघ–४६कख।

६४ निशाचारे– वाममार्गाभिषिक्तोऽपि दैशिकः परतत्त्ववित्।
संस्कार्ये भैरवे सोऽपि कुले कौले त्रिकेऽपि स ॥
सर्वाचारे– क्रमाद् भैरवतन्त्रेषु पुनः संस्कारमर्हति ॥
—परात्रीशिका व्याख्या, पृ. ३१।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्रिशक्तिश्चतुरात्मकः । पञ्चमूर्तिः षडात्मायं सप्तकोऽष्टकभूषितः ।। नवात्मा दशदिक्छक्तिरेकादशकलात्मकः । द्वादशारमहाचक्रनायको भैरवस्त्विति ।[६५] के अनुसार स्वरूपभेद के कारण विभिन्न सम्प्रदायों के भैरवचिन्तन में अन्तर होता है । मृत्युजित् या अमृतेश्वर भैरव की एकवीर और यामल के रूप में की जाती है । कुलप्रक्रिया में परा आदि भेद से तीन प्रकार की शक्ति वाली 'त्रिशक्ति' माना जाता है । त्रिशिरोभैरव त्रिकपरम्परा के नाम अनुकूल प्रतीत होता है । जया आदि भेद वाले चतुरात्मा को ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात रूप में पञ्चमूर्ति के रूप में स्वीकार किया जाता है । **सिद्धान्ते पञ्चकं सारं चतुष्कं वामदक्षिणे । त्रिकं तु भैरवे तन्त्रे...।।**[६६] अनुसार मूलतः वीरशैव सिद्धान्तमत को मानते हैं, इसलिए वीरशैव मत में पञ्चमुख और वाममार्ग तथा दक्षिणमार्ग में चतुरात्मा हैं । यहाँ त्रिकपरम्परा को भैरवतन्त्र के रूप में सन्दर्भित किया गया है जो पहले वर्णित भैरव आदि अद्वैत तन्त्र को सन्दर्भित करता है । **विश्वा तदीशिका रौद्री वीरका त्र्यम्बिका तथा । गुर्वीति षडरे देव्यः ....।।**[६७] के अनुसार छह देवियों विश्वा, विश्वेशी, रौद्री, वीरका, त्र्यम्बिका और गुर्वी को षड्दल में मानने की षडात्मभैरव की परम्परा ज्ञात होती है । सप्तमातृपरक मिश्रमत के अनुसार भैरवसप्तक माना जाता है, जबकि अघोर आदि के अनुसार अष्टक माना जाता है । अष्टदल में आठ भैरवों की स्थापना करके मध्य में नवात्मक भैरव की स्थापना की जाती है । प्रत्येक दिशा के शक्तिभेद के अनुरूप दशभैरवपरक सम्प्रदाय को दशक एवं खण्डचक्रोक्त[६८] प्रकार के अनुसार एकादशभेद माना जाता है । यह उचित प्रतीत होता है कि ये एकादश कला अकारोत्थ शिव+शक्ति+समुच्चयात्मक कलाएँ हैं । पञ्चज्ञानेन्द्रिय + पञ्चकर्मेन्द्रिय + मन + बुद्धि के अधिष्ठात्री देवी बारह संविद्देवी को गोचरी, दिक्चरी, भूचरी आदि के विस्तारस्वरूप क्रम की काली देवियों के रूप में लिया जाता है । इनके भैरव बारह प्रकार के माने गये हैं । इन बारह को अलग अलग और समष्टि को एक मानने से तेरह भेद होते हैं । सहस्रार में भैरव सहस्र स्वरूप या अनन्त स्वरूप होकर व्याप्त होते हैं । भैरव मातृका के स्वामी हैं । जहाँ शक्तिस्वरूप को स्वीकार किया जाता है वहाँ अवश्य ही शिव को भैरवस्वरूप माना जाता है । अष्टवर्ग

६५ तन्त्रालोक, १।११०–१११ ।

६६ तन्त्रालोक, १।१०९–१११ विवेकव्याख्या ।

६७ पूर्ववत् ।

६८ पूर्ववत् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

में विभाजित होने पर ब्राह्मी आदि हरेक में सब का समष्टि होकर चौसठ योगिनियाँ बन जाती हैं। इसमें व्यष्टि एवं समष्टि भेद से एक में ही एक करोड भेद होते हैं। इस प्रकार चौंसठ करोड़ योगिनियाँ बन जाती हैं। इन सभी का भैरव होने से भैरव के भी उतने ही भेद होते हैं। विज्ञानभैरव ने इसके मुख्य भेद को पूर्वपक्ष के रूप में आधार मानकर सिद्धान्त की स्थापना की है। एक ओर भैरवागम के महत्त्व को समझाने तथा दूसरी ओर ६४ तन्त्रों का वर्णन करने से पता चलता है कि वामकेश्वरीमत भैरवागम सम्मत है। वामकेश्वरीमत व्याख्या में त्रिपुराविद्या की चर्चा दक्षिणपक्षपाती के रूप में की गई है। त्रिपुरा की साम्प्रदायिक व्याख्या के साहित्यिक मूल आधार अभिनव, क्षेमराज आदि के साहित्य होने के कारण त्रिक सम्प्रदाय के साथ इसका सम्बन्ध जाना जा सकता है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव को भी भैरव का रूप माना जाता है, जो क्रमशः मूलाधार आदि चक्र में भावित होते हैं। सदाशिव के बाद कहीं इष्ट देवता, कहीं जीव, कहीं हिरण्यगर्भ मानने की परम्परा है। श्री के षट्चक्र चिन्तन के पक्ष में विशेषकर आज्ञाचक्र में सदाशिव के बाद इष्टदेवता का स्थान माना जाता है। इष्टदेवता के जो भैरव होते हैं उस स्रोत में उनको ही प्रधान माना जाता है।

बौद्ध तन्त्र में माने जाने वाले महाकाल, सम्बर और कालचक्र के भैरवों के चिन्तन के आधार पर कोई भिन्नता नहीं है। यह भी जानकारी में है कि कदाचित् दोनों परम्पराओं की महाकाल की पूजा एक ही मन्त्र से होती है। नवाक्षरी कूटाक्षर के समान विद्याराज भैरव का एक मन्त्र है और सप्ताक्षरी कूटाक्षर का उपयोग बौद्ध तन्त्र में किया जाता है। इस मन्त्र की बनावट में मालिनीक्रम का प्रभाव 'क्ष' के बाद 'म' की उपस्थिति से ज्ञात होता है। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि सप्ताक्षरी और नवाक्षरी कूटाक्षर का सप्तमातृपरक सप्तक और नवात्मस्वरूप भैरव मानने की परम्परा से कोई सम्बन्ध है। भैरव के सभी सम्प्रदायों में भैरवाष्टक स्वीकृत है।

कुछ अन्य भैरव

भैरवों की अनन्तता को स्वीकार करने के बाद यद्यपि सभी भैरवों का वर्णन करना सम्भव नहीं है, परन्तु परम्परा और धर्मशास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भैरवों के बारे में सामान्य दृष्टिकोण देना अप्रासंगिक नहीं है। माना जाता है कि 'कोटराक्ष' की उत्पत्ति भैरव के हृदय से हुई है। इसके वर्णन में दो शब्दों की स्वरूपव्याख्या अत्यन्त

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

महत्त्वपूर्ण है- **कोटरं कुहरं तदाकृतीन्यक्षीणि यस्य- अनेनान्तर्लक्ष्यतां बहिर्दृष्टित्वं च दर्शयति। स्फुरिताधरत्वं निःशेषविघ्नभक्षणपरत्वेन।**[६९] इसमें स्वच्छन्दभैरव अनुरूप की क्षेमराज की व्याख्या अन्य भैरवों का भी समान संकेत या समान अर्थ दर्शाती है। इसी प्रकार कोटराक्षी के वर्णन में **भेदसंहर्तृत्वेनातिकृष्णमहादीप्तरूपता।.........गर्जन्तमिति नादामर्शपरम्। कोटराक्षीति अन्तर्लक्ष्यां बहिर्दृष्टिम्**[७०] इस कथन से यह भी ज्ञात होता है कि भैरव और भैरवी की व्याख्या एक ही प्रकार से हो जाती है। पर अवस्था की सीमा बोध और आनन्दस्वरूप परभैरव हैं, जबकि भैरव से ग्रहण किया गया सङ्कोच के कारण अपर अवस्था की सीमा कालाग्निरुद्र हैं। अनाश्रितभुवन पर है तो कालाग्निभुवन अपर है। कालाग्नि की ज्वाला से चराचर जगत् दग्ध हो रहे हैं। इसीको भावना के रूप में **कालाग्निना कालपदादुत्थितं च स्वकं पुरम्**[७१] में लिया गया है। भैरव मे समाविष्ट होने के लिए अपनाई गई यह दग्धीकरण की प्रक्रिया आंशिक रूप से परम्परा में रं बीज से शरीर को जलाने की भावना का कारण है। कालाग्निरुद्र का वर्णन अन्यत्र भी मिलता है।[७२] शिव के पञ्चवक्त्र की चर्चा अन्य साहित्य में भी देखने को मिलती है।[७३]

आकाशभैरव

आकाशभैरव की पूजा गौड़ परम्परा में विशेष प्रकार से की जाती है। आकाशभैरव के मूल भेद में तीन रूप लिए गये हैं। **कदा लोकहितार्थाय लीलयाकाशभैरवम्। त्रिधा विभज्य चात्मानं रक्षते सर्वदाखिलम्। आकाशभैरवं पूर्व द्वितीयं चाशुगारुडम्। शरभं तु तृतीयं स्याद्रूपत्रयमिहोच्यते**[७४] के अनुसार आकाशभैरव, आशुगारुड़ और शरभ के बीच रूप में अन्तर है। पहला भेद नर रूप में, दूसरा भेद पक्षी रूप में और तीसरा भेद पक्षीप्रायः रूप में भी आकाशभैरव का ही भेद माना जाता है। इसमें भी तीसरा भेद शरभ का शरभ, शालुव और पक्षीराज के रूप में लिया जाता है।[७५]

---

६९ स्वच्छन्दतन्त्र, ९।९ उद्योतव्याख्या।
७० स्वच्छन्दतन्त्र, १०।१–९ उद्योतव्याख्या।
७१ विज्ञानभैरव, ५१कख।
७२ बृहज्जाबालोपनिषद्, २।१, ३।१, ४।१, ६।१।
७३ महानारायणोपनिषद्, १७।१–५।
७४ आकाशभैरवकल्प, ३।२–३।
७५ तस्य तार्तीयरूपस्य त्रिधा रम्यं विशेषतः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऋषि आनन्दभैरव को आकाशभैरव का द्रष्टा माना जाता है। वटुक भैरव की भाँति आकाशभैरव प्रायः द्वार पर शरभ के रूप में होते हैं। अधिकांशतः आकाशभैरव का मूल प्रथम भेद आकाशभैरव स्वरूप को विश्वरूप माना जाता है। हजारों भुजाओं वाले इन आकाशभैरव का साधक की इच्छा के अनुसार विभिन्न रूपों में ध्यान किया जाता है। इनका ध्यान मारण, मोहन आदि के लिए अलग अलग से स्पष्ट रूप से बताया गया है। **इक्षुकोदण्डपुष्पेषु पूर्णबाहुसहस्रकम्। कार्मुकोत्थशनैर्दिव्यैः पूरितासावकाशकम्। चिरं ध्यात्वा जपेदेवं जगद्वश्याय साधकः॥**[७६] इसके अनुसार वशीकरण के लिए हजारों भुजाओं वाले और इक्षुधनु तथा पुष्प बाण धारण करने वाले भैरव की साधना की जाती है। इससे यह भी स्पष्ट है कि विशेषकर आयुधों की फलभेद के कारण भिन्न-भिन्न धारणा होंगे। आकर्षण के लिए हजारों हाथों में पाश धारण किये हुए भैरव का ध्यान किया जाता है।[७७] आकर्षण और वशीकरण के लिए रत्नवर्ण के भैरव का, सम्मोहन के लिए पीतवर्ण के भैरव का और विद्वेषण के लिए कृष्णवर्ण के महाकाल के रूप में आकाशभैरव का ध्यान किया जाता है। उच्चाटन और मारण के लिए भयानक दाँत वाले, अत्यन्त काले रंग वाले, करोड़ों ब्रह्माओं के मुकुट धारण करने वाले, चर्माम्बर धारण करने वाले, हजारों सिर वाले, हजारों हाथ वाले, सर्पों के आभूषण पहनने वाले और वेतालगण से घिरे हुए भैरव का ध्यान किया जाता है।[७८] इसी प्रकार भोग और मोक्ष के लिए निम्नलिखित ध्यान मिलता है –

स्फटिकाभं महादेवं प्रसन्नवदनाम्बुजम्।
अमृतांशुकलाचूडमग्निसूर्येन्दुलोचनम्॥
व्याघ्रचर्माम्बरं शान्तं व्यालयज्ञोपवीतिनम्।
वैडूर्यहारशोभाढ्यं मन्दस्मितमनोहरम्॥
मुक्तविद्रुमरत्नानुसाङ्गदं सुविभूषितम्।
स्वर्णनूपुरपादाब्जं श्वेतकुण्डलमण्डितम्॥

शरभः शालुवं चैव पक्षिराजं तृतीयकम्॥
– आकाशभैरवकल्प, ३।४।

७६ आकाशभैरवकल्प, ७।५–६।

७७ आकर्षे तु तथा ध्यानं पाशबाहुसहस्रकम्।
–आकाशभैरवकल्प, ७।७।

७८ आकाशभैरवकल्प, १०।२–४।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वीणाव्याख्यानमुद्रां च पुस्तकं स्फटिकस्रजम् ।
भस्मभस्त्रं(?) गदापद्मं सुधाकुम्भकराम्बुजैः ॥

बिभ्राणममलं ब्रह्मज्ञानमुद्रास्वरूपिणम् ।
चन्द्रमण्डलमध्यस्थं सच्चिदानन्दमव्ययम् ॥[७९]

इस ध्यान में आकाश भैरव शान्तस्वरूप आनन्दभैरव र आनन्दभैरवी के समान हात में सुधाकुम्भ ग्रहण किये हुए परमानन्द के द्योतक हैं। चूँकि आनन्द ही भोग और मोक्ष है, इसलिए इसकी प्राप्ति के लिए आकाश भैरव का आह्लादक स्वरूप को लिया गया। भैरव का फलदायक पक्ष आकाशभैरव के विभिन्न रूपों से स्पष्ट हो जाता है और लौकिक प्रयोग में इनका उपयोग अधिक किया जाता है। आकाशभैरव के एक अन्य भेद आशुगारुड का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है जिसका ध्यान इस प्रकार है-

आजानोरुत्तप्तहेमप्रभममलमयं प्रख्यमानमिवास्य–
माकर्णं कुङ्कुमाभं भ्रमरकुलमिव श्यामलमूर्ध्वकेशम् ॥

ब्रह्माण्डं व्याप्तदेहे द्विभुजमभिचरैर्भूषणैर्भूषिताङ्गम् ।
पिङ्गाक्षं तीक्ष्णदंष्ट्र वरदमभयदं तार्क्ष्यमुग्रं नमामि ॥

आकाशभैरव का तीसरा भेद जो पौराणिक साहित्य से ही प्रचलित है, शरभ है। उनका ध्यान इस प्रकार है-

चन्द्रादित्याग्निदृष्टिः कुलिशवरनरश्चञ्चुरत्युग्रजिह्वः ।
काली दुर्गा च पक्षौ हृदयजठरगौ भैरवीवाडवाग्निः ॥

ऊरुस्थो व्याधिमृत्यू शरभवरखगश्चण्डवातातिवेगः ।
संहर्ता सर्वशत्रून् विजयतु शरभः शालुवः पक्षिराजः ॥[८०]

इसी प्रकार इसी तन्त्र में शालुव आदि का ध्यान का भी वर्णन है। भैरव, जिन्हें वडवानलभैरव कहा जाता है, आकाशभैरव से सम्बन्धित हैं। इस प्रकार आकाशभैरव को विश्वोत्तीर्ण एवं विश्वमय परमेश्वर के रूप में देखा जाता है जो भोग एवं मोक्ष दोनों प्रदान करते हैं।

---

७९ आकाशभैरवकल्प, १२।५।

८० आकाशभैरवकल्प, १६।१४।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मार्तण्डभैरव

मार्तण्डभैरव सूर्य के बारह कला के समष्टि स्वरूप में भावित भैरव हैं। मार्तण्डभैरव की पूजा रश्मपूिजा और वीरक्रम में भी की जाती है। उनका ध्यान इस प्रकार है-

स्वर्णापीतजपानिभं त्रिनयनं मुक्तालसद्धारणिम्।
खट्वांगारिगुणांस्तथा जपवटीं पद्मं च शक्त्यङ्कुशौ।
हस्ताब्जैर्दधतं कपालममलं सद्वल्लमालिंगितम्।
मार्तण्डं मणिबद्धरम्यमुकुटं ध्यायेच्च वेदाननम्।[८१]

यद्यपि क्रम के अन्य वीरों का स्वतन्त्र भैरवरूप में परम्परा प्रसिद्ध नहीं है, फिर भी वे प्रसिद्ध हैं। मार्तण्डभैरव के आवरण में रहने वाले अष्टभैरव हैं चण्ड, प्रचण्ड, विश्वेश, महादेव, महाकाल, गभस्ति, चण्डीश और तेजेश। यहाँ ज्वाला, मित्रा, चण्डमालिनी, भीषणी, नारसिंही, कामदेवी, मार्तण्डा, कापालिनी और कौलिनी नवशक्ति की पूजा की जाती है। क्रमपरम्परा में भैरव को वीर के रूप में लिया जाता है। क्रमपरम्परा मे द्वादशकाली की अवधारणा की तरह द्वादशवीर मानने की परम्परा के अनुसार **व्यापी भैरवदेवशे ह्यमृतामृतभैरवः। पीयूषभैरवो वीरे सुसूक्ष्मः सूक्ष्म एव च। अजगावि जिनानन्दो सुषुम्ना मन्दरोदयः। गान्धारभैरवो घोरस्तथा भैरवभैरवः। द्वादशो वै महावीरा युग्मं युग्मं समाश्रिताः। द्वादशारेऽम्बुजे शुभ्रे वह्न्यादित्येन्दुकर्णिके॥**[८२] इसके अन्तर्गत महावीर को भैरव का पर्याय बताकर बारह वीरों का वर्णन किया गया है। श्रीपरम्परा में वीरान् द्व्यष्टः कहकर दस वीरों की पूजा की जाती है। ये भी भैरव के स्वरूपभेद हैं। वे दस वीर हैं– १. सृष्टिवीरभैरव, २. स्थितिवीरभैरव, ३. संहारवीरभैरव, ४. रक्तवीरभैरव, ५. यमवीरभैरव, ६. मृत्यवीरभैरव, ७. भद्रवीरभैरव, ८. परमार्कवीरभैरव, ९. मार्तण्डवीरभैरव और १०. कालाग्निरुद्रभैरव। इनको शिव के रूप में पाशवकल्प के अनुसार और भैरव के रूप में वीरकल्प के अनुसार पूजा की जाती है। क्रमशास्त्र में पाशवकल्प के गुरु से दीक्षा लेना वर्जित है। जैसे 'वीर' भैरव का रूप है, वीराचार भैरवाचार है। **अहमि प्रलयं कुर्वन्निदमप्रतियोगिनः। पराक्रमपरो भुङ्क्ते स्वभावमशिवापहम्** के आधार पर अमृतानन्द **इति परापञ्चशिकोक्तरीत्या**

---

८१ श्रीविद्यार्णव, १९ श्वास पृ ४६५।

८२ जयद्रथयामल, कालसंकर्षिणीकल्प, पत्र २५क।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भेदप्रतीतिसाधनस्य इदन्तारिपोरहमि समराङ्गणे प्रलयप्रतिपादनपरा वीराः कहकर इदन्तारूपी शत्रु को अहन्ता के रणक्षेत्र में लीन कराने को वीरत्व के रूप में व्याख्या करते हैं।[८३]

ग) वटुकभैरव

वटुकभैरव की शास्त्रीय चर्चा से कहीं अधिक साधना और परम्परा का उल्लेख मिलता है। वटुकभैरव की वास्तविकता अन्य भैरवों के समान नहीं है। अधिकांश सम्प्रदायों में वटुकभैरव को गणदेवता माना जाता है। शक्तिसंगमन्त्र में वटुकभैरव की उत्पत्ति की कथा दी गयी है। इन्हें शक्तिजन्मा या शक्तिपुत्र कहा जाता है क्योंकि इनका निर्माण असुरों की बाधाओं को दूर करने के लिए सभी शक्तियों की संयुक्त शक्ति से हुआ था। मतशास्त्र में इन्हें 'कुलपुत्र' के रूप में भी लिया गया है। आवरण पूजा के द्वार पर या मन्दिर के द्वार पर, कतिपय स्थानों में एक तरफ गणेश और दूसरी तरफ वटुक को रखा जाता है। आचार्य अभिनवगुप्त गणेश और वटुक को प्राण और अपान के प्रतीक मानते हैं। अभिनवगुप्त देहस्थदेवताचक्रस्तोत्र में लिखते हैं-

करवीरयोगिनीगणसिद्धावलिपूजिताङ्घ्रियुगलम्।
अपहृतविनयिजनार्तिं वटुकमपानाभिधं वन्दे॥[८४]

वटुक, गणेश और आनन्दभैरव क्रमशः अपान, प्राण और व्यानस्वरूप हैं जो सत्, चित् और आनन्द का संकेत हैं। आनन्दभैरव+आनन्दभैरवी के पुत्र के रूप में **वटुको मम पुत्रश्च** ऐसा उल्लेख मिलता है।[८५] उसके अनुसार व्यान का ही विस्तार प्राण और अपान है।

यो व्यानः स वाक् सिद्धान्त के अनुसार व्यान परावाक् का रूप है, संवित् का यथार्थ रूप है। भट्ट कल्लट के इस कथन के अनुसार कि **प्राक् संवित् प्राणे परिणता**, व्यान या संवित् का प्रथम विस्तार प्राण या गणेश के रूप में होता है। उसके बाद ही अपानस्वरूप वटुक उत्पन्न होते हैं। इसीको **ऊर्ध्वे प्राणो ह्यधो**

---

८३ योगिनीहृदयदीपिका, ३।१९१।

८४ देहस्थदेवताचक्रस्तोत्र, २।

८५ रुद्रयामलतन्त्र, ११।३।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जीवो विसर्गात्मा परोच्चरेत्। उत्पत्तिद्वितयस्थाने भरणाद् भरिता स्थितिः[८६] में वटुक और गणेश का मध्यधाम जहाँ से इन दोनों की उत्पत्ति हुई, उसी अवस्था को भैरवावेश का कारण माना गया है। इसीके अनुसार वटुक को जीव के रूप में भी लिया जाता है।

सामान्यतः गणेश और वटुक की गिनती आमतौर पर दरवाजे के दोनों किनारों पर की जाती है तथापि उस स्थान पर जो लोग गणेश और कुमार की स्थापना देखते हैं उन्हे भ्रम हो सकता है लेकिन श्रीपरम्परा में **श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं, पीठत्रयं भैरवम्। सिद्धौघं वटुकत्रयं पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम्। वीरान् द्व्यष्टचतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीपञ्चकम्। श्रीमन्मालिनीमन्त्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम्** श्लोक में वटुकत्रय पद जो गुरुपरम्परा में आता है, उसमें स्कन्दवटुक, चित्रवटुक और विरिञ्चिवटुक शामिल हैं। स्कन्द या कुमार ही स्कन्दवटुक हैं। हालाँकि वटुक और गणेश को मुख्य देवता के रूप में आमतौर पर सौम्य अवस्था में देखा जाता है, लेकिन उन्हें उग्र और उग्रतर रूप में भी देखा जाता है। यदि इष्टदेवता अत्यन्त उग्र स्वभाव के हैं तो वहाँ गणपति और वटुक भी उसी अवस्था में रहते हैं। संहारप्रधान सभी रूप उग्र होते हैं। वटुक के कुछ प्रचलित ध्यान इस प्रकार हैं :

सर्वप्रचलित ध्यान

करकलितकपालः कुण्डली दण्डपाणिस्तरुणतिमिरनीलो व्यालयज्ञोपवीती।
क्रमसमयसपर्याविघ्नविच्छेदहेतुर्जयति वटुकनाथः सिद्धिदः कौलिकानाम्॥[८७]

सात्त्विक ध्यान

वन्दे बालं स्फटिकसदृशं कुण्डलोल्लासिवक्त्रम्।
दिव्याकल्पैर्नवमणिमयैः किंकिणीनूपुराद्यैः॥

दीप्ताकारं विशदवसनं सुप्रसन्नं त्रिनेत्रम्।
हस्ताब्जाभ्यां वटुकमनिशं शूलदण्डौ दधानम्॥[८८]

---

८६ विज्ञानभैरव, २४।

८७ रुद्रयामलतन्त्र, ७१।३६।

८८ रुद्रयामलतन्त्र, ७१।३७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजसध्यान

उद्यद्भास्करसन्निभं त्रिनयनं रक्ताङ्गरागस्रजम् ।
स्मेरास्यं वरदं कपालमभयं शूलं दधानं करैः ।।
नीलग्रीवमुदारभूषणधरं शीतांशुचूडोज्ज्वलम् ।
बन्धूकारुणवाससं भयहरं देवं सदा भावये ।।[८९]

तामसध्यान

ध्यायेन्नीलाद्रिकान्तं शशिशकलधरं मुण्डमालं महेशम् ।
दिग्वस्त्रं पिङ्गकेशं डमरुमथसृणिं खड्गपाशाभयानि ।।
नागं घण्टां कपालं करसरसिरुहैर्बिभ्रतं भीमदंष्ट्रम् ।
सर्पाकल्पं त्रिनेत्रं मणिमयविलसत्किंकिणीनूपुराढ्यम् ।।

तुरीयध्यान

देवेशं वटुकं सदाशिवगुरुं त्रैलोक्यरक्षाकरम् ।
नानालङ्कृतभूषणं शशधरं बन्धूकपुष्पोज्ज्वलम् ।।
श्वेताश्वेतविभूषणं मणिमयं कृष्णं सनीलं शिवम् ।
देवानामधिदैवतं सुखकरं नाथं सदा भावये ।।[९०]

वटुक को भैरवाष्टक में और वटुकभैरवतन्त्र को चौंसठ तन्त्रों में गिनने का मत लक्ष्मीधर और गौरीकान्त का देखा गया। वटुक की सात्त्विक जिज्ञासा करते हुए वटुक के शुक्ल तथा वैद्युत् रूप तथा वटुक पद की व्याख्या इस प्रकार किया जाता है-

अथ कस्मादुच्यते शुक्लं यस्मादुच्चार्यमाण एव क्लन्दते क्लमयति च तस्मादुच्यते शुक्लम् । यस्मादुच्चार्यमाण एवाव्यक्ते महति तमसि द्योतयति तस्मादुच्यते वैद्युतम् ।.... यस्मादन्तर्जलौषधिवीरुधान् आविश्येमं विश्वं भुवनानि वा अवते तस्मादुच्यते भगवान् वटुकेश्वरः ।[९१] इस प्रकार भगवान् वटुकेश्वर पाशराशि को पिघलाने वाले और भवप्रपञ्च से पार करा कर कैवल्य प्रदान

८९ रुद्रयामलतन्त्र, ७१।३८।
९० रुद्रयामलतन्त्र, ७१।३९।
९१ वटुकोपनिषद्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कराने वाले हैं तथा वृक्ष आदि का रूप लेकर जगत् का पालन करने वाले विश्वात्म स्वरूप हैं।

भैरवों में अष्टभेद की परम्परा वटुकभैरव में भी देखी जाती है। इसके अनुसार कालवटुक, शंखवटुक, मातृवटुक, देवीवटुक, स्थानवटुक, मेघवटुक, चन्द्राग्निवटुक तथा वैनायकवटुक नामक आठ वटुक होते हैं। शक्तिसंगमतन्त्र में दस वटुकों के नाम हैं हेतु, त्रिपुरान्तक, वह्निवेताल, अग्निजिह्व, काल, कराल, एकपाद, भीम, त्रैलोक्य और सिद्धवटुक। दशविध भेद करने की परम्परा में दशगणेश, दशयक्षिणी, दशमण्डल आदि दशक का वर्णन मिलता है। वटुकों की आवरण पूजा में अन्य प्रकार के अष्टवटुक भी शामिल हैं- हेरुक, त्रिपुरान्तक, वेताल, अग्निजिह्व, कालान्तक, कराल, एकपाद और भीमरूप। वटुक को द्वारेश के रूप में लेना श्रीपरम्परा और त्रिकपरम्परा में देखी जाने वाली कई समानताओं में से एक है। विद्यानन्दनाथ **वटुकं योगिनीवृन्दं भैरवानमितौजसः। प्रणमामीष्टसम्पत्तिं सम्पादनसमुत्सुकान्**[९२] कहकर वटुक को प्रणाम करके भैरववृन्द को प्रणाम करते हैं। इस परम्परा में भैरव के परमैश्वर्य को स्वीकार किया गया है, ऐसा विद्यानन्दनाथ द्वारा वन्दित श्रीपरम्परा के प्राचीन आचार्य महावनमुनि की **गुरुचरणपरोऽहम् भैरवोऽहम् शिवोऽहम्** की उक्ति से ज्ञात होता है। वटुक द्वारपाल हैं और उनकी प्रसन्नता से ही भीतर प्रवेश सम्भव है। वटुक की प्रसन्नता से अन्य देवताओं की उपासना भी शीघ्र ही पूर्ण हो जाती है। कुलार्णवतन्त्र में उल्लेख है कि वटुक को बलि दिए विना अन्य देवता पूजन, यजन आदि से प्रसन्न नहीं होते।[९३] चारों दिशाओं या द्वार के द्वारपालों को गिनने के क्रम में वटुक को पश्चिम में गिना जाता है। अन्य द्वारों में पूर्व में भूत, दक्षिण में क्षेत्रपाल और उत्तर में योगिनी का उल्लेख मिलता है।[९४] जैसा कि ऊपर चर्चा की

---

९२ नित्याषोडशिकार्णव, अर्थरत्नावलीव्याख्या, पृ ३।

९३ यावन्नो वटुके दद्यात्तावन्नैव कुलेश्वरि।
तृप्यन्ति देवताः सर्वाः स्मरणाद्यजनादपि॥
—कुलार्णवतन्त्र, ७।३।

९४ पश्चिमे वटुकं देवमुत्तरे योगिनीबलम्।
पूर्वे भूतबलिं दद्यात् क्षेत्रपालञ्च दक्षिणे॥
राजराजेश्वरं मध्ये पूजयेत् कुलनायिके॥
—कुलार्णवतन्त्र, ७।३०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गई है, सामान्यत: भैरव शब्द का अर्थ वटुक नहीं है और पृथक् गणना को विशेष मानने के लिए इसे ब्राह्मणवसिष्ठन्याय के अनुसार पृथक् से ग्रहण किया गया है, यह कहना उचित नहीं लगता। चूँकि वटुक और भैरव को स्पष्ट रूप से अलग-अलग लिया जाता है, इसलिए वटुक को भैरव और भैरवी का कुमार या पुत्र मानने का विचार उचित प्रतीत होता है।

आनन्दभैरव

आनन्दभैरव के ध्यानों ने इस तथ्य का उल्लंघन किया है कि भैरवों के ध्यान अत्यन्त भयानक होते हैं। जैसा कि नाम से पता चलता है, आनन्दभैरव अत्यन्त आनन्दमय हैं। आनन्द की अभिव्यक्ति आनन्दभैरव की ही विजृम्भणा है। इन्द्रियदेवियाँ विषयभोग का आनन्द लेकर हृदय के मध्य में आनन्द का जो परामर्श करती हैं या विषय के सम्पूर्ण सुख का अनुभव करती हैं उसी को **आत्मीयविषयभोगैरिन्द्रियदेव्यः सदा हृदयभोजे। अभिपूजयन्ती यं तं चिन्मयानन्दभैरवं वन्दे**[९५] कहकर अभिनवगुप्त वन्दना करते हैं। आनन्दभैरव निर्विशेष आनन्दस्वरूप, व्यानस्वरूप, वाक् या परा स्वरूप हैं। 'चिन्मयमानन्दभैरवम्' से यह भी संकेत मिलता है कि यहाँ चिति को आनन्द का स्वरूप माना गया है। आनन्दभैरव परम्परा में आनन्द व्यक्त करने वाले मद्य को भी भैरव का पर्याय माना जाता है।[९६] आनन्दभैरव के स्वतन्त्र साहित्य के रूप में क्षेमराज आदि आचार्य द्वारा आनन्दभैरव और आनन्दशासन के उद्धृत श्लोक मिलते हैं, जिन्हें लुप्तागमसंग्रह में भी संगृहीत किया गया है। कौल शास्त्र में अशुद्ध मद्य पातक का कारण होता है और शोधित मद्य आनन्द का स्वरूप माना गया है। मद्यशोधन के दौरान नवाक्षरी कूटाक्षर के साथ आनन्दभैरव और सुधादेवी के मन्त्रों का जाप किया जाता है और वहीं तर्पण किया जाता है। चक्रार्पण शुरू होने से बहुत पहले उक्त तर्पण किया जाता है, इसलिए सबसे पहले आनन्दभैरव को तर्पण करने की परम्परा है। सुधादेवी आनन्दभैरवी का नामान्तर है और आनन्दभैरव को सुधानायक माना जाता है। इस प्रकार वीरों की साधना के दौरान सांसारिक मद्य का शोधन आनन्दभैरव के मन्त्र द्वारा कयिा जाता है। इस पर आनन्दभैरव का ध्यान इस प्रकार है-

९५ देहस्थदेवताचक्रस्तोत्र, ३।

९६ मार्द्वीकः सहजस्त्वेकस्तत्तेजो भैरवात्मकम्।

—तन्त्रालोक, २९।११—१३ विवेकव्याख्या।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कर्पूरपूरधवलं कमलयताक्षम्
दिव्याम्बराभरणभूषितदेहकान्तिम्।
वामेन पणिकमलेन सुधाढ्यपात्रम्
दक्षेन शुद्धगुटिकां दधतं नमामि॥[१७]

आनन्दभैरव के ध्यानों में श्रीपरम्परा में आई अष्टादशभुजा वाली सुधादेवी के साथ वाले आनन्दभैरव तात्त्विक विश्लेषण की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है। उनका स्वरूप इस प्रकार है-

सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम्।
अष्टादशभुजं देवं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्॥
अमृतार्णवमध्यस्थं ब्रह्मपद्मोपरिस्थितम्।
वृषारूढं नीलकण्ठं सर्वाभरणभूषितम्॥
कपालखट्वाङ्गधरं घण्टाडमरुवादिनम्।
पाशाङ्कुशधरं देवं गदामुसलधारिणम्॥
खड्गखेटकचक्रर्ष्टिपर्शुमुद्गरशूलिनम्।
भुशुण्डीधारिणं देवं वरदाभयधारिणम्॥
धवलं देवदेवेशं भावयेद् भैरवीयुतम्।
ततो ध्यायेत् सुधादेवीं चन्द्रकोट्ययुतप्रभाम्॥
हिमकुन्देन्दुधवलां सर्वानन्दकरोद्यताम्।
प्रहसन्तीं विशालाक्षीं देवदेवस्य सन्मुखीम्॥
सर्वरत्नविचित्राङ्गीं त्र्यम्बकां भूतविग्रहाम्।
अष्टादशभुजाकीर्णां नीरजायतलोचनाम्॥
आयुधानेकसंयुक्तैर्भुजैरष्टादशैर्वृतम्।
ज्ञानमुद्रा परा भद्रे अभया च द्वितीयका॥
दक्षिणे मांसखण्डानि वामे पाशं तु भीषणम्।
मुद्गरं दक्षिणे हस्ते वामे शूलं सुवर्चसम्॥

१७ महानिर्वाणतन्त्र, ८।१६७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दक्षिणे निर्घृणं शुभ्रं वामे खेटं सुवर्तुलम् ।
दक्षिणे च शिलावृक्षं वामे घण्टा च सुस्वनाम् ।।
दक्षिणे वाममुष्टिं च वामे चापं सुवंशजम् ।।
दक्षिणे डमरुं श्रेष्ठं वामे श्रृङ्गरवाकुलम् ।।
दक्षिणे नृकपालं च वामे दण्डं महाबलम् ।
दक्षिणे वज्रदीप्यन्तं वामे कट्टारिका शुभा ।।
निर्घृणां चैव निर्लज्जां त्यागां सूरां च मानिनीम् ।
त्रासयन्त्यसुरान् सर्वान् देवानामभयङ्करीम् ।।[९८]

इस ध्यान में आये पञ्चशीर्ष, अष्टादशभुज और शस्त्रास्त्र का रहस्य स्वच्छन्दभैरव के स्वरूप वर्णन में बताया गया अनुरूप ही है।

आनन्दभैरव की उपासना के क्रम में अष्टक चिन्तन देखा जाता है। उसके अनुसार अष्ट आनन्दभैरव से परे कालभैरव माने जाते हैं। अष्ट आनन्दभैरवों में आनन्दभैरव, सुरानन्द, अमृतानन्द, तरुणानन्द, उन्मनानन्द, ज्ञानानन्द, मुक्त्यानन्द और परमानन्दभैरव गिने जाते हैं। यदि हम आनन्दभैरव की तान्त्रिक व्याख्या को मद्य के घट से हटकर थोड़ी सूक्ष्म दृष्टि से देखें, तो हम निश्चित रूप से अद्वयावस्था के बोधक विज्ञानस्वरूप परभैरव देख सकते हैं। यद्यपि सम्प्रदायवादियों की दृष्टि संकीर्ण होती है परन्तु आनन्दभैरव का सम्प्रदाय शुद्ध दार्शनिक चिन्तन का सम्प्रदाय है। **आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दादेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दे प्रयन्त्यभिसंविशन्ति** की श्रौतधारा को आनन्द को ही परम तत्त्व मानने वाले प्राचीन भैरव परम्परा के साथ तुलना करके अनुशीलन करने की आवश्यकता है। भैरवशास्त्र स्वभावतः अद्वैतवाद का प्रतिपादक है और आनन्दभैरवसम्प्रदाय आनन्दात्मक अद्वैतवाद को प्रतिपादन करने वाला सहजोपाय का अवलम्बन करता है। चूँकि वेदान्त में सत्ता और चिद्रूपता देश और काल की सापेक्षता से दूर नहीं जा सकती, इसलिए अद्वैत तत्त्व को सत् या चित् के रूप में परिभाषित करना गलत माना जाता है। आनन्द में भी अनुभव करने और उस जैसी चीज़ों के बीच कोई अन्तर नहीं है, यह

९८ मन्त्रविद्यारहस्यम् मे उद्धृत।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दिखाने के लिए सुरत को भी संकेत के रूप में उपयोग किया जाता है। वास्तव में, आनन्द का उद्भव त्रिपुटी के अन्दर सम्भव नहीं है, भेद का बोध आनन्द का अवच्छेदक माना जाता है इसलिए अभेदस्वरूप केवल आनन्द को उद्बोधन करने की यह परम्परा दार्शनिक दृष्टिकोण से बहुत महत्त्वपूर्ण है।

सौन्दर्यलहरी का **शरीरं त्वं शम्भो शशिमिहिरवक्षोरुहयुगं । तवात्मानं मन्ये भगवति नवात्मानमनघम् । अत:शेष: शेषीत्ययमुभयसाधारणतया । स्थित: सम्बन्धो वां समरसपरानन्दपरयो: ।**[९९] श्लोक की व्याख्या करते हुए लक्ष्मीधर ने पूर्वकौल मत प्रस्तुत किया है। इसके अनुसार नवात्मिका आनन्दभैरवी को शम्भु का शरीर आनन्दभैरवस्वरूप माना गया है। चन्द्रकलाविद्या नवात्मक होने से चन्द्रकलात्मिका भगवती को भी नवात्मिका माना जाता है। इस मत में, नवात्मक आनन्दभैरव और नवात्मिका आनन्दभैरवी के बीच शेषशेषीभावसम्बन्ध रहता है। आनन्दभैरव को कालव्यूह अन्तर्गत ग्रहण करके काल या महाकाल आदि द्वारा भी सम्बोधन करने का प्रयास किया जाता है। **आनन्दभैरवस्य कालव्यूहान्त:पातित्वात् सूर्यचन्द्रयोर्वक्षोरुहयुगत्वारोपणं युक्तम्**[१००] कहकर भगवती को भी कालस्वरूपिणी ही दर्शाया गया है। नवव्यूह के रूप में **कालव्यूह: कुलव्यूहो नामव्यूहस्तथैव च। ज्ञानव्यूहस्तथा चित्तव्यूह: स्यात्तदनन्तरम्। नादव्यूहस्तथा बिन्दुव्यूहस्स्यात्तदनन्तरम् । कलाव्यूहस्तथा जीवव्यूहस्स्यादिति ते नव**[१०१] के अनुसार (१) कालव्यूह- निमेष से कल्प तक के क्षणसमुदाय, (२) कुलव्यूह- नील, पीत आदि रूपसमूह, (३) नामव्यूह- संज्ञास्कन्ध (४) ज्ञानव्यूह- विज्ञानस्कन्ध। इसे सभाग या सम्भोगव्यूह के रूप में वकिल्पज्ञान को और विभाग या विसंभोगव्यूह के रूप में निर्विकल्पज्ञान को लिया जाता है। (५) चित्तव्यूह- इसमें मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त और महत्तत्त्व का समावेश है।

(६) नादव्यूह - राग, इच्छा, कृति और प्रयत्नरूपी चार स्कन्ध ही परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वाणीरूप माने जाते हैं। "अ, क, च, ट, त, प, य, श, क्ष" नववर्गरूपी मध्यमा चिच्छक्ति नवात्मिका मानी जाती है। इस प्रकार नवव्यूह के अन्तर्गत नादव्यूह

९९ सौन्दर्यलहरी, ३४।

१०० सौन्दर्यलहरी, लक्ष्मीधराव्याख्या, पृ १०१।

१०१ सौन्दर्यलहरी, लक्ष्मीधराव्याख्या, पृ १०१ में उद्धृत।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्वयं नवात्मक या नवव्यूहात्मक है। राग, इच्छा, कृति और प्रयत्न के कारण क्रमशः माया, शुद्धविद्या, ईश्वर और सदाशिव हैं और ये कारणचतुष्टय के अधिष्ठानभूमि परा आदि वाक् हैं। परावाक् सदाशिव की भूमि है, पश्यन्ती ईश्वर की भूमि है, मध्यमा शुद्धविद्या की भूमि है और वैखरी माया की भूमि है। (७) बिन्दुव्यूह - इसमें मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञारूपी षट्चक्र शामिल हैं। इन चक्रों के नाम लक्ष्मीमत के अनुसार है। कौलमत में नाड़ी, माया, योगी, भेदन, दीप्ति और शान्त नामक छह चक्रों का वर्णन है। इस मत में नाड़ी चक्र को कहीं कहीं मूल या आधार माना गया है, इसलिए यह माना जा सकता है कि चिन्तन की भित्ति एक ही है और परम्परा के कारण नाम भिन्न भिन्न हैं। (८) कलाव्यूह - इसमें पचास अक्षरों को पञ्चाशत्कलात्मिका मातृका के रूप में लिया गया है। (९) जीवव्यूह- इसमें भोक्तृस्कन्ध सम्मिलित है। इसमें न्यायवैशेषिक के जीवात्मा के समान ही जीवात्मतत्त्व को स्वीकार कर जीवव्यूह के अन्तर्गत रखा गया है। इन नवव्यूहों में भोक्ता, भोग्य और भोग भेद से तीन अवस्थाएँ आती हैं। क्योंकि प्रत्येक में त्रिकात्मकता है, इसलिए उसमें भी सूक्ष्म रूप से नवात्मकता की अवस्था है देखी जाती है। ये नवात्मकता भैरव और भैरवी के नवात्मकता के समान हैं और सृष्टि, स्थिति और संहार में भैरवी की प्रधानता है और भैरव गौण हैं। जब वामाचक्र प्रवर्तन होता है, तो दक्षावर्तरूप भैरव के शेषत्व की कल्पना की जाती है। जब सभी चीजें समाप्त हो जाती हैं, तब केवल भैरव की अवस्थिति रहती है। मुक्त अवस्था या प्रपञ्च की लय अवस्था में भैरव की प्रधानता को स्वीकार करना पूर्वकौल का मत है। पूर्वकौल भैरव और भैरवी के स्वरूप में सामरस्यरूप आनन्द को प्राधान्य देते हैं, जबकि उत्तरकौल मत केवल शक्ति को मानने वाले शक्तिपारम्यवादी मत है। इससे यह सिद्ध होता है कि भैरव का मत अथवा भैरवसिद्धान्त पूर्वकौल मत है।

भैरव का वास्तविक स्वरूप आनन्दमय, आनन्दसार है। इस आनन्द की अभिव्यक्ति लौकिक रूप में मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन इन पाँच रूपों के माध्यम से सम्भव है। पारलौकिक आनन्द का संकेत केवल लौकिक पाँच भोगों से हुआ है। ये सभी सांसारिक सुख जगदानन्द में निहित हैं। **सेविते च कुलद्रव्ये कुलतत्त्वार्थदर्शनः। जायते भैरवावेशः सर्वत्र समदर्शनः**[१०२] के अनुसार समदर्शन का उदय कुलद्रव्य के

१०२ कुलार्णवतन्त्र, ५।७४।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सेवन में निहित प्रतीत होता है। उसमें भी मद्य को भैरव और शक्ति का रूप माना जाता है।[१०३] सुरा को शक्ति, मांस को शिव और दोनों के भोक्ता को भैरव मानकर शक्ति और शिव के तादात्म्यभाव के चिन्तन से अभिव्यक्त होने वाला आनन्द को ही मोक्ष कहा गया है।[१०४] **आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च देहे व्यवस्थितम्। तस्याभिव्यञ्जकं मद्यं योगिभिस्तेन पीयते।**[१०५] कहकर पञ्चमकार और विशेषकर मद्य की महिमा तो बताई गई है, लेकिन खाने-पीने की कुछ सीमाएँ जरूर तय की गई हैं। **अयष्ट्वा भैरवं देवमकृत्वा मन्त्रतर्पणम्। पशुपानविधौ पीत्वा वीरोऽपि नरकं व्रजेत्।**[१०६] कहते हुए अपनी इच्छा से किया मद्यपान को पशुपान मान कर उससे नरक में जाने का भय भी दर्शाया गया है। शास्त्रों ने गैर-ब्राह्मणों को और उन पूर्णाभिषिक्तों को जिनकी जातीय भावनाएँ समाप्त हो चुके हैं, मद्य पीने की स्वतन्त्रता दी है। पान और भोग पर बनाए गए कुछ नियमों के अनुसार यह कहा जा सकता है कि वे पान न केवल प्रतीकात्मक या यौगिक लक्ष्य के अनुरूप हैं, बल्कि वास्तविक उपभोग के भी अनुरूप हैं, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि वे प्रतीकात्मक अर्थ में परिलक्षित नहीं होते हैं। पञ्चमकार का प्रतीकात्मक अर्थ मूलाधार से सहस्रार तक कुण्डलिनी के जागरण की प्रक्रिया को इंगित करता है। कुलार्णवतन्त्र में पञ्चमकार का रहस्य इस प्रकार व्यक्त किया गया है-

लिङ्गत्रयविशेषज्ञः षडाधारविभेदकः।
पीठस्थानानि चागत्य महापद्मवनं व्रजेत्॥

आमूलाधारमाब्रह्मरन्ध्रं गत्वा पुनः पुनः।
चिच्चन्द्रकुण्डलीशक्तिसामरस्यसुखोदयः॥

व्योमपङ्कजनिस्यन्दसुधापानरतो नरः।
सुधापानमिदं प्रोक्तमितरे मद्यपायिनः॥

---

१०३ मद्यं तु भैरवो देवो मद्यं शक्तिः समीरिता।
— कुलार्णवतन्त्र, ५।७७ कख।

१०४ सुरा शक्तिः शिवो मांसं तद्भोक्ता भैरवः स्वयम्।
तयोरैक्यसमुत्पन्न आनन्दो मोक्ष उच्यते॥
— कुलार्णवतन्त्र, ५।७९।

१०५ कुलार्णवतन्त्र, ५।८०।

१०६ कुलार्णवतन्त्र, ५।९३।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पुण्यापुण्यपशुं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित्।
परे लयं नयेच्चित्तं पलाशी स निगद्यते ।।

मनसा चेन्द्रियगणं संयम्यात्मनि योजयेत्।
मत्स्याशी स भवेद्देवि शेषाः स्युः प्राणिहिंसकाः ।।

अप्रबुद्धाः पशोः शक्तिः प्रबुद्धाः कौलिकस्य च।
शक्तिं तां सेवयेद् यस्तु स भवेच्छक्तिसेवकः ।।

पराशक्त्यात्ममिथुनसंयोगानन्दनिर्भरः ।
य आस्ते मैथुनं तत् स्यादपरे स्त्रीनिषेवकाः ।।

इत्यादि पञ्चमुद्राणां वासनां कुलनायिके।
ज्ञात्वा गुरुमुखाद्देवि यः सेवेत स मुच्यते ।।[१०७]

इसने परमाद्वैत के उदय और इसके लिए आवश्यक विकल्प त्याग को मकार के रूप में और द्वैत प्रपञ्च से अद्वैत सत्ता की ओर जाने को पञ्चमकार के उपभोग के रूप में लिया है। साधना की द्वैत, द्वैताद्वैत और अद्वैत भूमि के सिद्धान्त और स्रोत में काफी भिन्नता होती है, इसलिए एक ही शब्द के कई अर्थ होते हैं। परम अद्वैत भूमि के कृत्य को लौकिक दृष्टि से परिभाषित नहीं किया जा सकता। विधि और निषेध का नियम तो केवल लोक के लिए है। सत्य का निर्धारण आचार संहिता के अनुसार नहीं होता। देश और काल की सीमाओं के कारण आचार संहिता में अन्तर होता है, लेकिन सत्य कालजयी है। 'आनन्द' शब्द परमार्थ की पहचान के लिए दिया गया है और आनन्दभैरव परमार्थसत्ता है जो इस आनन्द का बोध कराता है।

रुद्र

रुद्र का चिन्तन शैवधारा का चिन्तन है और भैरव का चिन्तन भी शैवधारा का चिन्तन है। वैदिक परम्परा में रुद्र की व्यापक चर्चा है। रुद्र को गण, गणपति आदि शब्दों से भी सम्बोधित किया गया है। रुद्र को उग्र, अघोर आदि शब्दों से सम्बोधित किया गया है जो कि भैरवनामावली में मिलता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में रुद्र को उषा का पुत्र माना

१०७ कुलार्णवतन्त्र, ५।१०६–११३।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गया है।[१०८] भैरव की मातृका के रूप में ब्राह्मी आदि देवियों की तरह इन्द्राणी, रुद्राणी, सर्वाणी, भवानी को रुद्रपत्नी के रूप में लिया गया है।[१०९] हिरण्यकेशीगृह्यसूत्र में आठ रुद्रों के नाम बताए गए हैं। यहाँ असनी को हटा कर भीम को लिया गया है।[११०] भैरव भी मुख्य रूप में वज्रधारी देखा जाता है और उनके नाम में भीषण, भीम आदि का भी उल्लेख मिलता है। यहाँ आठ रुद्रपत्नियों की भी चर्चा की गई है। भैरवों में वटुकभैरव को गणपति माना जाता है और उन्हें शक्तिपुत्र माना जाता है। जैसे रुद्र को उषा के पुत्र माना जाता है वैसे ही वटुकभैरव को शक्तिपुत्र माना जाता है।

देव शब्द को रुद्र के पर्यायवाची के रूप में भी लिया जाता है और चूँकि भैरव के दस प्रकार के अर्थ मिलते हैं, इसलिए गुप्तपाद पद से इसे देव के रूप में जाना जाता है। रुद्र के पर्याय के रूप में अर्थववेद (६।२८।१) में भव और शर्व, वहीं (११।२।९) पशुपति और वहीं (११।२।१०) उग्र को लिया गया है। दिशाओं में देवताओं ने रक्षा के लिए पूर्व में भव को, दक्षिण में सर्व को, पश्चिम में पशुपति को, उत्तर में उग्र को, नीचे रुद्र को, ऊपर महादेव को और सभी दिशाओं में ईशान को सभी उपदिशाओं मे रखने का वर्णन वेद में मिलता है।[१११] यह बात दिशाओं में भैरव की स्थापना करने की जीवित और तन्त्रशास्त्रसम्मत परम्परा का स्मारक है। भव, शर्व, पशुपति, उग्र, रुद्र, महादेव और ईशान इन सभी के साथ असनि को जोडने पर अष्टरुद्र का वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थ में मिलता है। यहाँ रुद्र के चार रूप भव, पशुपति, महादेव और ईशान को रक्षक के रूप में लिया गया है जबकि रुद्र, शर्व, उग्र और असनि को संहारक के रूप में माना गया है। भैरव को भी निग्रह और अनुग्रह दोनों का कर्ता माना जाता है।

रुद्रों को बलि देने का विधान गृह्यसूत्रों में आता है। पशुबलि का विधान 'शूलगवयाग' के अन्तर्गत देखा जा सकता है। इसी प्रकार वपाहवन के रूप में छाग की चर्बी उतारकर हवन करने का भी प्रसङ्ग मिलता है।[११२] ऐसा माना जाता है कि बलि लेने के लिए शिव ने उग्र रूप में भैरव का रूप धारण किया था। इसी प्रकार भैरव का रुद्रस्वरूप भी रुद्र

---

१०८ शतपथब्राह्मण, ६।१।३।७, कौषीतकीब्राह्मण, ६।१।९।

१०९ पारस्करगृह्यसूत्र, ३।८।

११० हिरण्यकेशीगृह्यसूत्र, २।३।८।

१११ अथर्ववेद, १५।५।१–७।

११२ शतपथब्राह्मण, ६।१।३।७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के अनुकूल माना जा सकता है। वीरभैरव में कालाग्निरुद्र का समावेश और 'रुद्र' पद मिलना समान आधार का द्योतक है। वैदिक साहित्य में भैरव का कोई उल्लेख नहीं है। यह सम्भव है कि रुद्र और भैरव एक ही सम्प्रदाय हैं या परम्परा में भैरव के प्रयोग से पहले 'रुद्र' का प्रयोग होता था। रुद्र का अद्वैतवाद विकसित नहीं हुआ है। वेदों में रुद्र को प्रायः गणपति के रूप में लिया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि अद्वयवादी विचार को जोडकर भैरव के नाम से उपासना करने की परम्परा ने इस परम्परा को बदल दिया है। अतः 'रुद्र' एवं 'भैरव' का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करना आवश्यक प्रतीत होता है।

कनफटा सम्प्रदाय में भैरों (भैरव)

वाममार्ग और कौलमार्ग दोनों की प्रधानता कनफटा कापालिकों के भैरवस्रोत सम्बन्धी विचार और परम्परा में देखी जा सकती है। नाथ मठों में भैरों (भैरव) और काली बहुत प्रसिद्ध हैं और उन मठों में मुख्य देवता के रूप में स्थापित हैं। नाथ परम्परा से जुड़े हुए भैरव के मन्दिर यत्र-तत्र मिलते हैं। नाथ सम्प्रदाय में दक्षिणमार्गी पूजा को मान्यता नहीं है। वीरों की वर्तमान स्थिति नाथ जैसी मानी जा सकती है। नाथ संन्यासी और गृहस्थ दोनों होते हैं। कौलयाग तथा अन्य भैरवीचक्र आदि की मान्यता भी भैरवस्रोत के अनुकूल इसमें देखी जाती है। निजाम डोमिनियन के दो प्रकार के नाथ दब्रे और रावल में दब्रे दबरा (ढोल) बजाने के कारण दिया गया नाम है। भैरव का स्तव, प्रार्थना करते समय बजाए जाने वाले वाद्ययन्त्र से यह नाम आया है इसलिए यह भैरव की प्रधानता को दर्शाता है।[११३] रावल परम्परा में भी भैरव पूजा समान रूप से मान्य है लेकिन वे ढोल नहीं बजाते। बारह वर्ष तक की आयु के कुमार लड़के जिन्हें 'कुमार मरदी' कहा जाता है, भी पूजा में भाग लेते हैं। मत्स्येन्द्रनाथ को कुलपरम्परा का संस्थापक और गोरक्षनाथ को उनका शिष्य माना जाता है। इस प्रकार नाथ परम्परा में मत्स्येन्द्रनाथ की परम्परा मान्य है। भैरवागम के प्रसिद्ध आचार्य अभिनवगुप्त गुरुप्रणाम करते समय मत्स्येन्द्रनाथ को प्रार्थना करते हैं।[११४] मत्स्येन्द्रनाथ के रथ के चारों पहियों पर आभूषण

---

११३ गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगिज्, पृ ५३।

११४ रागारुणं ग्रन्थिबिलावकीर्णं यो जालमातानवितानवृत्तिः।
कलोम्भितं बाह्यपथे चकारस्तान्मे स मच्छन्दविभुः प्रसन्नः॥
- तन्त्रालोक, १।७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के रूप में भैरव की आँखें बनाई जाती है और रथ के सामने की जुरा में भैरव की चित्र अङ्कित किया जाता है और भैरव को भी स्थापित किया जाता है। मत्स्येन्द्रनाथ का सीधा सम्बन्ध भैरव परम्परा से रहा है।

कनफटा योगी अपने माथे पर एक काला निशान बनाते हैं जो कि भैरव का सूचक है।[११५] वे दिन-रात भैरव की धुनीरूप मूढ़ा जलाते हैं। नाथों के शिष्यक्रम में 'कान गुरु' के कान चिर्ने का कार्य भी भैरव के समक्ष मन्त्रोच्चारण करके किया जाता है।[११६] नाथपरम्परा में योगिनियों के रूप में महिलाओं का प्रवेश पहले से देखा जाता है। ये योगिनियाँ भैरव की पूजा करती हैं और कभी-कभी इन्हें मुख्य पुजारी भी माना जाता है। खासतौर पर नाथ परम्परा में भैरव इष्टदेव के रूप में पूजित होते हैं। नाथों की समाधि में शुद्धि के लिए तीसरे दिन से बारहवें दिन तक भैरव की पूजा की जाती है। नाथों के विभिन्न मठों के उदाहरणों से भी भैरव की प्रसिद्धि ली जा सकती है। भारत के कुमाऊँ गढ़वाल के अधिकांश भैरवस्थान में कनफटा पुजारी हैं। कभी-कभी नैनीताल के भैरव मन्दिर में भी नाथों का दर्शन होता है। बनारस में भैरों (भैरव) के लाठ पर भी कनफटा रहते हैं। बनारस का प्रसिद्ध भैरवस्थान कालभैरव नाथों के प्रमुख तीर्थ स्थलों में से एक है। यहीं गोरखनाथ टीले पर बाएँ श्वेतभैरव और दाएँ कालभैरव स्थापित हैं। कहीं-कहीं काले कुत्ते को भैरव के साथ वाहन के रूप में भी देखा जाता है। अमृतसर के दुर्गियान में स्थित भैरव मन्दिर और आइपन्थ समाधि और लाहौर में शिव मन्दिर के सामने की मूर्ति भी नाथ परम्परा के अनुसार स्थापित है। बलूचिस्तान में स्थित प्रसिद्ध शक्तिपीठ हिंगलाज देवी में बालभैरों, विष्णुभैरों और कालभैरों के मन्दिर हैं। नासिक से १८ मील दूर त्र्यम्बक में एक बड़े पत्थर पर तीन आँखों वाले भैरव की मूर्ति बनाई गई है। यह हर तरफ लाल रंग से ढका हुआ है।[११७] पायधुनी (मुम्बई) में कनफटा के द्वादशपन्थ के सभी मठों में भैरव मन्दिर हैं। पठानकोट में वामाचार पद्धति से भी भैरव और दुर्गा की पूजा देखी जाती है।[११८] वामाचार पद्धति अल्मोडा में भी देखी जाती है जहाँ अष्टनायक और अष्टनायिका मिलकर भैरवीचक्र की पूजा करने की परम्परा सुनी

---

११५ गोरखनाथ एण्ड दि कनफटा योगिज्, पृ १७।

११६ पूर्ववत्, पृ ३२।

११७ पूर्ववत्, पृ १२१।

११८ पूर्ववत्, पृ १२९।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जाती है। गढ़वाल कुमाऊँ में मिले अवशेषों में गोरखनाथ और भैरों का मन्दिर एक साथ मिलता है।[११९] भैरव मन्दिर की पूजा जिसकी पूजा खस नहीं करते हैं, नाथों द्वारा की जाती है। जो नाथ मांस नहीं खाते उनके लिए भैरव की पूजा के दौरान अपनी छोटी या बड़ी उंगली की रक्त चढ़ाने की भी प्रथा है। ऐसा प्रचलन है कि यदि कालरात्रि पर बलि नहीं मिली तो पुजारी को अपनी रक्त अर्पित करना पड़ता है।[१२०]

कार्तिकृष्ण अष्टमी में कालभैरव का उत्सव पडता है। सोनारी में चैत्र शुक्ल अष्टमी से पूर्णिमा तक भैरवनाथ के मन्दिर में मेला लगता है, और काठमाण्डू में इस समय रथयात्रा निकलती है। वैशाखशुक्ल प्रतिपदा को पाटन शहर के पूर्वी हिस्से से एक बड़ा रथ निकाला जाता है और मत्स्येन्द्रनाथ मन्दिर के सामने से एक छोटा रथ निकाला जाता है। इसी प्रकार इन्द्र जात्रा में कुमारी और भैरव के रथ निकाले जाते हैं। इस प्रकार मत्स्येन्द्रनाथ और नाथपरम्परा कहीं भी भैरव से अलग नहीं हैं।

अष्टाष्टक के रूप में किए गए भैरवागम के विभाजन में आठ तन्त्रों को कालामुखों या कापालिकों के तन्त्र के रूप में देखा जाता है। कापालिकों में वामाचार के अनुसार भैरव पूजा करने की परम्परा है। कापालिक की चर्चा प्राचीन साहित्य में भी मिलती है। दशकुमारचरित (६-७ सर्ग) तथा ह्वेनसांग के यात्रा वृतान्त में कापालिक की चर्चा है। भवभूति के मालतीमाधव नाटक (८ सर्ग) में अघोरघण्ट कापालिक का वर्णन है, जिन्हें चामुण्डा का उपासक कहा जाता है। कपाल धारण करने वाले महादेव के कपाली रूप की स्तुति शिवमहिम्नस्तव तथा अन्यत्र भी मिलती है। परशाम्भव और षडन्वयशाम्भविद्या में वर्णित शिव के रूप में कपाल धारण किया हुआ देखा जाता है। कापालिक शिव के इसी भैरव रूप की पूजा करते हैं। प्रबोधचन्द्रोदय में कापालिक का वर्णन भैरव के रूप से मेल खाता है, इसलिए कापालिक परम्परा में भैरव का सम्बन्ध स्पष्ट है।

नेपाल में भैरव परम्परा

शिव के कपाली रूप को भैरव के नाम से जाना जाता है। पञ्चतत्त्ववादी शिव को

---

११९ पूर्ववत्, पृ १३८।

१२० पूर्ववत्, पृ १४१।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पशुपति मानते हैं। इसके नाम से पता चलता है कि नेपाल में पाशुपत सम्प्रदाय के मुण्डश्रृङ्खलिक पाशुपत भैरवस्वरूप की एक परम्परा है जिसका उल्लेख अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है। वीराचार में मुण्ड धारण करने का विधान है और 'वीर' दरअसल वे लोग हैं जो शिव के भैरव रूप को मानते हैं। कीर्तिमुख भैरव की पूजा करने की बहुत प्राचीन परम्परा है, जो पशुपति को मुखभैरव स्वरूप मानते हैं। पशुपति के दक्षिण की ओर जयस्थिति मल्ल द्वारा स्थापित उन्मत्तभैरव नाग और प्रेतवाहन हैं और उनका स्वरूप असिताङ्ग आदि अष्टभैरव की सूची के उन्मत्तभैरव के ध्यान सें मेल नहीं खाता है। पशुपति के द्वार पर स्थित अष्टभैरव, मन्दिर में स्थित आकाशभैरव भी पाशुपत परम्परा और भैरव के बीच सम्बन्ध को दर्शाते हैं। भैरव सम्प्रदाय के इतिहास में यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि पशुपति, जो गोपालवंश या उससे भी अधिक प्राचीन इतिहास से जुड़े हैं, को भैरव उपासना के रूप में देखा जाता है। वज्रभैरव बौद्धयान और हिन्दूयान की एकता को दर्शाता है। लिच्छवि काल के भैरव से जुड़ी परम्परा का उदाहरण मल्ल काल के दौरान नागार्जुन में उत्खनन करके हनूमान्ढोका में स्थापित कालभैरव से मिलता है। गुणकामदेव ने भैरव की पूजा और इन्द्रजात्रा की परम्परा शुरू की। इन्द्रजात्रा काठमाण्डू उपत्यका के भैरवों की विशेष पूजा का दिन है और भैरव मूर्तियों की प्रदर्शनी का भी दिन है। इस दिन चौक चौक में स्थापित प्रत्येक भैरव की पूजा की जाती है। वंशावली के अनुसार कीर्तिपुर के बाघभैरव शिवदेव तृतीय (ई.११२३) के काल में स्थापना हुई थी। प्राचीन इतिहास की खोज करने पर नेपाल में भैरव की परम्परा इतनी प्राचीन मिलती है जितनी बंगाल, असम, कश्मीर और अन्य स्थानों की परम्पराओं में कहीं नहीं दिखती। ऐसा प्रतीत होता है कि अद्वैतवादी भैरवागम की प्रतिष्ठा नेपाल में प्राचीन काल से ही रही है। मल्ल काल में भैरव की मान्यता और अधिक विस्तारित हुई। हनूमान्ढोका में स्थित हनूभैरव, श्वेतभैरव, इन्द्रचौक में स्थित आकाशभैरव, महाकाल में स्थित महाकाल से पता चलता है कि यहाँ की परम्परा भैरव के विभिन्न रूपों से जुड़ी हुई है। इन्द्रजात्रा के अवसर पर हनूमान्ढोका में रखे जाने वाले अठारह भुजाओं वाले आनन्दभैरव, आनन्दभैरवी और हनूमान्ढोका के द्वार पर स्थित विश्वरूप भैरव भी मल्ल काल की सर्वश्रेष्ठ कला के उदाहरण हैं। भूपतीन्द्र मल्ल ने सिद्धिलक्ष्मी के साथ-साथ भैरव की भी स्थापना की। उन्होंने खोमाटोल (भक्तपुर दरबार के पास) में उग्रचण्डा और भैरव की स्थापना

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की। लेले के टीकाभैरव, गुह्येश्वरीपीठ के भैरव, लगनखेल के वटुकभैरव, ज्ञानेश्वर के आनन्दभैरव, टेकू के पचलीभैरव सभी नेपाल में भैरव परम्परा के इतिहास को दर्शाते हैं। भक्तपुर में भैरव की परम्परा शास्त्रीय दृष्टि से व्यापक एवं विश्लेषणीय प्रतीत होती है। काठमाण्डू उपत्यका के बाहर भी, दार्चुला और बैतड़ी के बीच शैपाल मन्दिर के कोने में मौजूद भैरव, सोलहवीं शताब्दी के पाल्पा के चाँदी के भैरव उल्लेखनीय हैं। दोलखा के भीमसेन को भीमभैरव भी माना जाता है।

शास्त्रों के दृष्टि से कालभैरव, आनन्दभैरव, वटुकभैरव और आकाशभैरव को यहाँ के प्रमुख भैरव माना जा सकता है। आकाशभैरव की परम्परा बंगाल तक व्यापक है। कालभैरव की कला यहाँ जयवागीश्वरी के भित्तिचित्रों, गोकर्णेश्वर में बलभञ्जन पाण्डे द्वारा स्थापित महाकालभैरव आदि मूर्तियों और चित्रों में दिखाई देती है। यहाँ आकाशभैरव और श्वेतभैरव के सिर पर भी कालभैरव की तरह चार कपाल और बीच में मुण्ड धारण किया हुआ देखा जाता है। यहाँ भैरव को सुअर की बलि देने की प्रथा महाकाल संहिता के **शूकरो भैरवस्यापि**[१२१] इस कथन के अनुरूप प्रतीत होती है।

यहाँ के भैरवों की एक अन्य प्रमुख विशेषता है– मुण्डमात्र के भैरव। स्पष्ट है कि भैरव के पूर्ण स्वरूप के चित्रण में कालभैरव का प्रभाव सबसे अधिकांश भैरवों में पडा है। घट में भैरव की पूजा करना, घट के मुँह से मद्यधारा निकालना आदि भी यहाँ की विशेषता है। हनूमान्ढोका के भैरवविश्वरूप में भैरव के पेट पर उनका मुख अंकित है। इसी प्रकार, दूसरों के विपरीत, कीर्तिमुख भैरव के पाँच कपाल हैं जो उनके सूक्ष्म रूप को दर्शाते हैं। कुल मिलाकर, ऐसा लगता है कि नेपाल लम्बे समय से भैरवागम और भैरव और कौल परम्परा के प्रभाव का केन्द्र रहा है। संग्रहालय में नौवीं शताब्दी की पाषाण कला का एक नमूना पाँच मुख वाला भैरव प्राचीन भैरव परम्परा से जुड़ा हुआ है। बाद की कलाकृतियों में चौदहवीं शताब्दी के धातु निर्मित ड्रम बजाते हुए भैरव और सिंहमुख कामभैरव, सोलहवीं शताब्दी के महाकाल, सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के पाषाण निर्मित भैरव, अठारहवीं शताब्दी के काष्ठ निर्मित भैरव, चामुण्डायुक्त भैरव, कौमारीयुक्त चक्रभैरव, दो हाथ से भूमि में टेकते हुए भैरव भी भैरवस्रोत में नेपाल के विकास और परम्परा को समझाने की कड़ियाँ हैं।

---

१२१ महाकालसंहिता (गुह्यकालीखण्ड), १२।१७४२ ग, पृ ५२४।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नेपाल में भैरव परम्परा की स्पष्ट व्याख्या करने में अभिलेखों का माध्यम भी सहायक है। गोरखा में गोरखनाथ गुफा के प्रवेश द्वार पर शिवदेव द्वितीय के अभिलेख में **वज्रभैरवभट्टा (रक)**[१२२] का उल्लेख होने के साथ उनकी कारणपूजा के लिए सम्पत्ति का प्रबन्धन करने की बात कही गई है। काठमाण्डू से दूर स्थित उस स्थान पर पूजा के लिए सरकारी स्तर पर प्रबन्धन होना निश्चित ही इसकी प्रसिद्धि कारण रहा होगा। यहाँ उल्लिखित **पञ्चरंगचित्रकर्मणः** से पञ्चरंग चढ़ाने या पञ्चरंग से चित्रित करने की व्यवस्था ज्ञात होता है। गोरखा के उपल्लोकोट में बची हुई शिलाओं की गोरखनाथ के पुजारी वज्रभैरव के रूप में पूजा करते आ रहे हैं। इस प्रश्न में कि क्या यहाँ उल्लिखित वज्रभैरव वज्रयानियों द्वारा माने गए 'महाकाल' नाम का रूपान्तर है या क्या वज्रधारी भैरव हिन्दूपरम्परा का ही भैरव है? धनवज्र वज्राचार्य के अनुसार ऐसा लगता है कि यह वज्रयानियों का भैरव है। इस बात का कोई पुख्ता सबूत नहीं है कि वज्रयानियों के भैरव मन्दिर में नाथों द्वारा पूजा की परम्परा कैसे जारी रही। क्या नामसंगति के कारण जयद्रथयामल में आए 'जिनानन्दभैरव'[१२३] को बौद्धों या जैनियों द्वारा पूजित भैरव मानना उचित रहेगा? इसी तरह की समस्याएँ अन्यत्र भी होती हैं। अभिलेख में उल्लिखित दूसरा नाम है महाभैरव। इसे पशुपतिनाथ मन्दिर के अभिलेख की प्रतिलिपि के रूप में संगृहीत किया गया है।[१२४] धनवज्र ने तिलगंगा में वामनमूर्ति में आकाश की ओर मुख वाली छोटी मूर्ति को आकाशभैरव सा मानकर उसका नामकरण आकाशभैरव रखने की भी सम्भावना व्यक्त की है। प्राचीन काल से ही नेपाल की परम्परा में आदिनाथ, मीनानाथ, गोरखनाथ आदि की महत्ता देखने को मिलती है। ऊपर बताया जा चुका है कि नाथों का कुलपरम्परा में भैरव को परम तत्त्व के रूप में माना जाता है। मत्स्येन्द्रनाथ की परम्परा की व्यापकता निश्चित रूप से भैरव परम्परा के विस्तार में सहायक है और यह तथ्य भी इसमें सहायक है कि मत्स्येन्द्रनाथ को भैरवागम का गुरु माना जाता है।

■■■

१२२ लिच्छविकालका अभिलेख, पृ ५२३।

१२३ कालसङ्कर्षिणीकल्प, पृ. २५क।

१२४ लिच्छविकालका अभिलेख, पृ. ५९७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भैरव समावेश का उपाय

शैवागम की मुख्य विशेषता यह है कि यहाँ तत्त्वप्रतिपादन और पूर्वपक्ष के खण्डन पर इतना जोर नहीं दिया गया है। हाँ, यह समझा जाता है कि वसुगुप्त और सोमानन्द के प्रयास अनस्तित्ववादी बौद्ध दर्शन के खिलाफ थे, लेकिन बौद्ध दर्शन तर्क के स्तर तक क्यों पहुँच गया? और प्रत्यभिज्ञादर्शन शिवाद्वयवादी साधना के प्रवाह में क्यों रहस्य का पर्दा डाल रहा था? यह विश्लेषणीय लगता है। आख़िरकार, किसी के व्यर्थ प्रयास न करने के स्वभाव को देखते हुए, क्या एक विवेकशील प्राणी के लिए यह बेहतर नहीं होगा कि वह क़िसी के सिद्धान्त का पालन करके अपने अस्तित्व को शून्य बनाने कि बजाय सर्वथा स्वतन्त्र बने ? लेकिन इतना ही नहीं, नागार्जुन आदि का माध्यमिकशास्त्र और अन्य ब्राह्मणों का बौद्ध दर्शन में प्रवेश धीरे-धीरे बौद्ध दर्शन के ढाँचे को अस्तित्ववादी व्याख्या की ओर धकेल रहा था और तर्क को सबसे पहले बौद्ध दर्शन की शरण लेनी पड़ी थी क्योंकि अन्य के तार्किक विकास के लिए नव्यन्याय की धारा का उद्भव नहीं हुआ था। इसके अलावा तर्क आसान भी नहीं है और **तर्काप्रतिष्ठानात्** के विचारधारा में पले-बढ़े अद्वैतवादी लोग आसानी से कच्चे और निरर्थक तर्क में जीवन गुमाने के लिए तैयार नहीं थे। इन कारणों ने भैरवागम की परम्परा में दिखाई देने वाले नए आचार्यों को उपाय पक्ष का अधिक विश्लेषण करने के लिए प्रेरित किया।

यहाँ शाम्भवोपाय, शाक्तोपाय और आणवोपाय तीन प्रकार के उपाय समावेश किया गया है। **चैतन्यमात्मा**[१] में वर्णित चैतन्य या आत्मा के रूप में इच्छा सभी ज्ञान और क्रिया की पूर्ण स्वतन्त्रता को पहचानने में सहायक है। शाम्भवोपाय इसी इच्छा के सहारे ऊपर चढ़ने का मार्ग है। इसीको **अकिञ्चिच्चिन्तकस्यैव गुरुणा प्रतिबोधतः। जायते यः समावेशः शाम्भवोऽसावुदाहृतः ॥**[२] कहकर इसे गुरु द्वारा प्रवेश कराने

१ शिवसूत्र, १।१।

२ मालिनीविजयोत्तरतन्त्र, २।२३

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का उपाय माना गया है। मन, आत्मा, बुद्धि आदि की सहायता लेते ही विकल्प का प्रवेश हो जाता है। इस उपाय का समावेश उन लोगों के लिए नहीं जो प्रयत्नपूर्वक शिव मे समाविष्ट होना चाहते हैं। चूँकि प्रलयकेवली, विज्ञानकेवली की भूमिका भी तमस से रहित नहीं है और गुरु के विना मोक्ष असम्भव है, इसलिए शिव स्वयं उन भूमिकाओं के गुरु बन जाते हैं, या दिव्यौघ के ज्ञानोपदेश होता है। शाक्तोपाय 'ध्यान' का उपाय है- चाहे वह भैरवीमुद्रा में हो या शाम्भवीमुद्रा में। **उच्चाररहितं वस्तु चेतसैव विचिन्तयन्। जायते यः समावेशः शाक्तः सोऽत्राभिधीयते ॥**[३] इस परिभाषा के अनुसार यहाँ चित्त की प्रधानता प्रतीत होती है। इस उपाय में **चित्तं मन्त्रः**[४] के अनुसार मननत्राणधर्मी मन्त्रों को चित्स्वरूप मानकर उनका अन्वेषण किया जाता है। क्रमदर्शन दर्शन की एक धारा है जो शाक्तोपाय को प्रदर्शित करती है। आणवोपाय में दिक्चरी एवं भूचरीशक्ति की भूमिका सहायक होती है। लौकिक दृष्टि में यह दिखाया जा सकता है कि यह ही एक वास्तविक उपाय है। शाम्भवोपाय और शाक्तोपाय में अनधिकृत लोगों से भी यहाँ अपनी मण्डली एकत्रित करने के कारण आणवोपाय का प्रदर्शन करने वाला शास्त्र भी खचाखच भरा पड़ा है। **उच्चारकरणध्यानवर्णस्थानप्रकल्पनैः। जायते यः समावेशः सम्यगाणव उच्यते ॥**[५] कहने से ध्यानोपाय आणव उपाय में आता है तो उसे शाक्त कैसे कहा जाता है ? इस प्रश्न के उत्तर मे कहा जाता है कि चिन्तनपरक प्रयास शाक्तोपाय के अन्तर्गत आता है, जबकि मन के भीतर रूप आदि को स्थिर करने का प्रयास आणव उपाय के अन्तर्गत आता है। **चितिरेव चेतनपदादवरूढा चेत्यसंकोचनी चित्तम्**[६] सूत्र के अनुसार चितिशक्ति का संकुचन ही चित्त है, चित्त का विस्तार ही चितिशक्ति है। चेतन पद से गिर जाने पर भी चिति अचिति नहीं हो जाती, जैसे संसार में पद से हटा हुआ व्यक्ति मनुष्य ही रहता है। आणव उपाय में इसी चित्त को आत्मा मानकर **आत्मा चित्तम्**[७] कहा गया है। जिस व्यक्ति के विवेक का द्वार चित्तसंकोच से अवरुद्ध हो, वह विश्वाहन्ता का दूषित अर्थ ही ग्रहण कर सकता है, वह अपनी आत्मा के बारे में बहुत ही मोटे तरीके से सोचता है। प्राण की सूक्ष्मता

३ मालिनीविजयोत्तरतन्त्र, २।२२

४ शिवसूत्र, २।१

५ मालिनीविजयोत्तरतन्त्र, २।२१।

६ प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, ५

७ शिवसूत्र, ३।१

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का अन्वेषण करना उसके लिए पहला उपाय है। शाक्तोपाय में भट्ट कल्लट के **प्राक् संवित् प्राणे परिणता** के अनुसार चिति ने सङ्कुचित बनने के क्रम में सबसे पहले प्राण का रूप धारण किया। प्राण के अन्वेषण में **मध्यविकासाच्चिदानन्दलाभः**[८] कहकर निमेष और उन्मेष के बीच के अन्तराल का अन्वेषण बताया। **एकचिन्ताप्रशक्तस्य यतः स्यादपरोदयः। उन्मेषः स तु विज्ञेयः स्वयं तमुपलक्षयेत्॥**[९] इसके अनुसार पूर्व और परविकल्प की मध्य अवस्था उन्मेष कहलाती है। इसी प्रकार, क्षेमराज ने बताया कि **विकल्पक्षयशक्तिसङ्कोचविकासवाहच्छेदाद्यन्तकोटिनिभालनादय इहोपायाः**[१०] कहकर क्षेमराज ने वर्णन किया। शिवसूत्र में **जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तभेदे तुर्याभोगसम्भवः**[११] कहकर जाग्रत् अवस्था, स्वप्न अवस्था और सुषुप्ति अवस्था में अपनी जागरूकता बनाए रखते हुए तुरीय स्थिति का एहसास करने का उपाय माण्डूक्योपनिषद् की समग्र विचारधारा के अनुरूप दिखाया गया है। शिवसूत्र पूरी तरह से शाम्भव, शाक्त और आणवरूप त्रिविध उपाय की व्याख्या के लिए समर्पित है, जबकि स्पन्दकारिका निमीलनसमाधि और उन्मीलनसमाधि के प्रतिपादन में शामिल है। अभिनवगुप्त के फुटकर रचना के अलावा तन्त्रालोक और तन्त्रसार पूरी तरह त्रिविध उपाय के वर्णन में सीमित हैं। यह कहा जा सकता है कि उत्पल का ईश्वरप्रत्यभिज्ञा दार्शनिक विश्लेषण की शुद्ध भूमि का वर्णन करने में जितना सचेत है उपाय के विश्लेषण में भी उतना ही सचेत है। क्षेमराज का प्रत्यभिज्ञाहृदयम् इसीका अनुकरण करता है। अभिनवगुप्त **अतश्च भैरवीयं यत् तेजः संवित्स्वभावकम्। भूयो भूयो विमृशतां जायते तत्स्फुटात्मता॥**[१२] कहकर भैरवीय ज्ञान और क्रियास्वरूप तेज के विमर्श को ही भैरवात्मलाभ का उपाय बताते हैं। इन सभी उपायों के वर्णन का स्रोत विज्ञानभैरव ही है। कुल १६२ श्लोकों में इस ग्रन्थ में ११२ धारणा वर्णित हैं। अभिनवगुप्त का तन्त्रालोक मालिनीविजयोत्तर के आधार पर लिखा गया है। 'भैरव' शब्द की विभिन्न व्युत्पत्तियाँ, भैरव के विभिन्न समावेश का संकेत देती हैं। यद्यपि परा, परापरा और अपरा भेद से शाम्भव, शाक्त और आणव तीन उपाय हैं तथापि रुद्रशक्ति, भूत, तत्त्व,

---

८ प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, १७

९ स्पन्दकारिका, ३।४१

१० प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, १८

११ शिवसूत्रम्, १।७

१२ तन्त्रालोक, ४।७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आत्मा, शक्ति आदि के कारण मालिनीविजयोत्तर में पचास भेदों का वर्णन किया गया है। अनुपाय शाम्भव उपाय की एक सूक्ष्म अवस्था है। इसे एक अलग उपाय मानकर चार उपायों के रूप में शास्त्रों में बताया गया है। अभिनव भी तन्त्रालोक के दूसरे आह्निक में परोपाय का विस्तार करते हैं। तन्त्रसार में प्रथम आह्निक भी इसी में सम्मिलित है, जिसका सार है कि जिस प्रकार दीपक से सूर्य प्रकाशित नहीं होता, उसी प्रकार उपाय शिव को प्रकाशित नहीं करते। 'अनुपाय' वास्तव में उपाय का अभाव नहीं अपितु अल्प उपाय है। **स (शाम्भवोपायः) एव परां काष्ठां प्राप्तश्चानुपाय इत्युच्यते** के अनुसार भी परोपाय या अनुपाय को शम्भवोपाय की पराकाष्ठा के रूप में लिया जा सकता है।

चूँकि भैरव क्रमनिरपेक्ष शक्तिशाली हैं इसलिए वे अक्रम मोक्ष भी दिला सकते हैं। संवित् में जगत् की लय और संवित् से जगत् की उत्पत्ति को समझना ही भैरव से एकत्व है। संवित् वास्तव में भैरवीय तेज, अहमात्मक आमर्श है। **षट्त्रिंशत्तत्त्वकलापस्य लौकिकत्वोत्तीर्णस्य भैरवभट्टारकाभेदवृत्तेर्न्यासे पूर्णत्वाद् भैरवीभावः** के अनुसार आणवोपाय में किया जाने वाला न्यास भी छत्तीस तत्त्वों की भैरव में विलय करने जैसा है और यही भैरवीभाव को उपलब्ध कराती है। मन्त्रसिद्धि भी भैरव के साथ ऐकात्म्य के विना आसान नहीं है इसलिए तो **आत्मनो भैरवं रूपं भावयेद्यस्तु पुरुषः। तस्य मन्त्राः प्रसिध्यन्ति नित्ययुक्तस्य सुन्दरि**[१३] कहकर नित्य भैरवैकात्म्य को सिद्धि का कारण माना गया है। **मोहावरणात् सिद्धिः**[१४] के अनुसार सिद्धि का अर्थ है एक प्रकार के मोह या प्रेम के आवरण में ढका होना, लेकिन मन्त्रसिद्धि का उपयोग लौकिक उद्देश्यों के लिए किए विना, मुक्ति के लिए भी किया जा सकता है। भैरवसमापत्ति में विभिन्न 'वेध' का भी उल्लेख है। इसमें 'भुजङ्गवेध' अत्यधिक प्रचलित और अन्य आगमों में भी प्रभावशाली है। भैरवागम में पञ्चभुजङ्गवेध को माना गया है। इस चिन्तन में **भुजङ्गकुटिलाकारा अधो नाभेर्व्यवस्थिता। प्रबुद्धा फणिवद् गच्छेत् फणापञ्चकभूषिता ॥ पञ्चकात् पञ्चकं यावद्वेधं भुजङ्गसंज्ञितम्।**[१५] कहकर कुण्डलिनी का स्थान नाभि के नीचे बताया गया है। यहाँ कुण्डलिनी का

१३ स्वच्छन्दतन्त्र, शिवसूत्र १।५ विमर्शिनीव्याख्या में उद्धृत

१४ शिवसूत्र, ३।६

१५ तन्त्रालोक, २९।२४९—२५२, विवेकव्याख्या में उद्धृत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रूढ प्रयोग नहीं किया गया है, लेकिन कहा गया है कि इसकी आकृति साँप की तरह कुण्डली मारे हुए होती है। प्रबुद्ध का अर्थ है फणपञ्चक के शीर्ष पर स्थित रहना। इस दृष्टि से सर्प का शिर भैरव की नाभि के नीचे लिपटा हुआ है। जैसा कि **द्वितीयाद् वै भयं भवति** कहा गया है तो समग्र द्वैत भय प्रदान करने वाला है इसलिए भैरव अद्वय का बोधक हैं क्योंकि वे अद्वयभूमि में विचरण के लिए योग्य बनाते हैं। अतः **अद्वैतत्वात् सुरेशानि भैरवो गीयते भुवि। न तु दंष्ट्राकरालत्वात् तस्मात् सौम्यं विचिन्तयेत् ॥**[१६] कहकर भैरव का सौम्य विग्रह का भी चिन्तन हुआ है। सौम्य, उग्रता, हेय, ग्राह्य आदि सभी भेद व्यष्टि-बुद्धि के परिणाम हैं। वास्तव में जहाँ सब कुछ चिन्मय की व्याप्ति है, जहाँ विश्वात्मभाव का उन्मेष होता है वहाँ भेदरूपी प्रपञ्च विगलित होता है। शाम्भव, शाक्त और आणव आदि का भेद केवल चित्त का विश्लेषण है, चिति कभी सुप्त नहीं होती, उसकी सर्वात्मकता कभी दबती नहीं, फिर भी उन्मीलन और निमीलन का प्रत्यभिज्ञान हो रहा है क्योंकि सर्वसामर्थ्य का अर्थ केवल सुख ही सुख का भोग करना नहीं है। भैरव का अट्टहास या 'रव' ही दीक्षा है, अट्टहास के विना न तो **दानमात्मज्ञानम्**[१७] का दान सम्भव है और न ही पाशक्षपण सम्भव है। भैरव में सम्पूर्ण जगत् अभिन्न रूप से स्थित है। भैरव स्वयं परिपूर्ण, शाश्वत और सर्वव्यापी हैं। चूँकि भैरव समग्र विश्व के आधार हैं, विलय के स्थान हैं, इसलिए सब का अन्त भी वही हैं। चूँकि भैरव की अभिन्न शक्ति जगत् की रूप में भासित है, इसलिए जगत् भैरव से भिन्न नहीं है। यहाँ तक कि बिम्ब और प्रतिबिम्ब का भेदक भी बिम्ब से भिन्न नहीं है। विसर्ग भैरव की क्रीड़ा है, चाहे वह चित्तविश्रान्ति रूप में हो, या चित्तसम्बोध रूप। भैरव और भैरवी के यात्रा का मार्ग विपरीत है। 'अ-ह-म' रूप शक्ति का मार्ग है – क्रीडारूप दौड़ और 'म-ह-अ' रूप भैरव का मार्ग है– विश्रान्ति। इसीको **'म-ह-अ' इति नरात्मकं लीनं बिन्द्वात्मशक्तौ मा इति, कुण्डलिनी हकलारूपायां प्रविश्य परिपूर्णनिर्गलचमत्कारे सर्वावच्छिन्ने 'अ' इत्यनुप्रविष्टं तथा भवति**[१८] के अनुसार भी 'ह' रूप कुण्डलिनी या भुजंगवेध को ही मुख्य उपाय माना जा सकता है। समग्र कुल भुजंग का मार्ग है, इसे द्वादश रश्मिचक्र

---

१६ स्वच्छन्दतन्त्र, ११।१४, उद्योतव्याख्या में उद्धृत

१७ शिवसूत्र, ३।२८

१८ परात्रीशिकाव्याख्या, पृ. ३०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कहा जाता है। **संरुध्य रश्मिचक्रं स्वं पीत्वाऽमृतमनुत्तमम्। कालोभयपरिच्छन्नं वर्तमाने सुखी भवेत्**[19] के अनुसार भविष्यत् और भूत का स्तम्भन रश्मिचक्र के संरोध से होता है। भैरवविमर्श संहारप्रधान और शक्तिविमर्श सृष्टिप्रधान विमर्श हैं, इसलिए **म-ह-अ इति भैरवरूपचमत्कारः**[20] कहकर यद्यपि भैरव निमेषपरक हैं, फिर भी भैरव से अभिन्न शक्ति ही निमेषपरक है क्योंकि शक्ति द्वारा व्यक्त होने पर भी भैरव से भिन्न अन्य कुछ भी अभिव्यक्त होने वाला तत्त्व नहीं है, इसलिए **यत्र यत्र मनो याति बाह्ये वाभ्यन्तरे प्रिये। तत्र तत्र शिवावस्था व्यापकत्वात् क्व यास्यति ॥**[21] कहकर उपाय को बताते समय भी मन शिव के अलावा कहीं और कैसे जा सकता है? क्योंकि सब कुछ शिवमय है, ऐसा बताया गया है। यही चिदात्मक व्याप्ति ही परिपूर्णता है, स्वतन्त्रता है। इसके लिए क्षेमराज **समाधिसंस्कारवति व्युत्थाने भूयोभूयश्चिदैक्यामर्शान्नित्योदितसमाधिलाभः**[22] कहकर चिदात्मकता के आमर्शन को ही समाधिलाभ के लिए उपाय के द्वार बताते हैं। इन सभी उपायों के विना शक्तिपात का द्वार नहीं खुलता, इसलिए सबसे पहले **गुरुरूपायः**[23] कहकर गुरुवक्त्र में गुरुतरा शक्ति रहने की व्याख्या आगमशास्त्र करता है। गुरु भैरव ही है जो अनुत्तर का बोध कराते हैं।

■■■

---

१९ वाद्यतन्त्रम्, परात्रीशिका, पृ.१२ में उद्धृत

२० परात्रीशिका, पृ. ४

२१ विज्ञानभैरव, ११३

२२ प्रत्यभिज्ञाहृदय, १९

२३ शिवसूत्र, २।६

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भैरवाद्वैतवाद

क्या है भैरव का अद्वैतवाद? एक ओर वेदान्ती हैं जो मानते हैं कि संसार ब्रह्म का विवर्त है, एक ओर बौद्ध हैं जो मानते हैं कि संसार शून्य का विवर्त है, वहीं वैयाकरण हैं जो मानते हैं कि संसार शब्दों का विवर्त है और द्वैतवादियों के वाद-विवाद का चक्र भिन्न-भिन्न है। अद्वैत विचार के चरम पर पहुँच चुका अजातवाद भी संसार की व्याख्या से बचता नजर आता है। आभासवाद की पूर्णता भैरवाद्वैत में देखी जा सकती है। यहाँ व्याख्या के सन्दर्भ में कुछ स्थानों पर बिम्बप्रतिबिम्बवाद की अवधारणा को भी दर्शाया गया है। इन दोनों दृष्टियों में, मुक्त और पूर्ण भैरव सभी पदार्थों को अपनी आत्मा के स्वच्छ दर्पण के रूप में प्रकट करते हैं।[१] ऐसा कहा जाता है कि भैरव का शब्दराशिमय, नवात्मस्वरूप, त्रिशिरोभैरव, शक्तित्रयात्मक, नादबिन्दुमय, अर्धचन्द्र, निरोधिका, चक्रारूढ , अनच्क, शक्तिस्वरूप आदि किसी भी सकल स्वरूप या जहाँ द्वैतापत्ति हो सकती है उस सम्पूर्ण भूमि में कोई वास्तविकता नहीं है।[२] वे सभी सकल स्वरूप केवल अप्रबुद्ध लोगों के लिए हैं। इसे यूँ कह सकते हैं कि चन्द्रमा चाहने वाले बच्चे को रोटी के टुकड़े में भूलाने जैसा है। परम तत्त्व पारमार्थिक स्वरूप में देश और काल की परिधि से अतीत और वाणी से भी अतीत बताया गया है।[३] इस संसार की प्रतीति समुद्र में लहरों की अलग प्रतीति की तरह है। शिव से पृथ्वी तक के पदार्थ को

---

१ स्वतन्त्रः परिपूर्णोऽयं भगवान् भैरवो विभुः।
तन्नास्ति यन्न विमले भासयेत् स्वात्मदर्पणम्॥
- परात्रीशिका व्याख्या, पृ. ५८।

२ तत्त्वतो न नवात्माऽसौ शब्दराशिर्न भैरवः।
न वाऽसौ त्रिशिरो देवो न च शक्तित्रयात्मकः॥
नादबिन्दुमयो वापि न चन्द्रार्धनिरोधिका।
न चक्रक्रमसंभिन्नो न च शक्तिस्वरूपकः॥
- विज्ञानभैरव, ११—१२।

३ दिक्कालकलनोन्मुक्ता देशोद्देशाविशेषिणी।
व्यपदेष्टुमशक्याऽसावकथ्या परमार्थतः॥
- विज्ञानभैरव, १४।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुल कहा जाता है। ये सब भैरवरूपी सूर्य की किरणें हैं। भैरवस्थिति सर्वोत्तम मोक्ष है। सभी जीव शिव की शक्तियाँ हैं। जब शक्ति का विस्फार होता है, तब वे अलग रूप में दिखाई देते हैं मगर बोध की अवस्था में सब शिवमय ही हैं।[४] इस प्रकार, भले ही सभी पदार्थ भैरव से भिन्न नहीं हैं तथापि सर्वस्वातन्त्र्य का स्वभाव है कि वे उसे भैरव से भिन्न रूप में प्रकट करें। यदि परमेश्वर अपने आप को भिन्न भिन्न स्वरूप में प्रकट न करता तो उसका स्वातन्त्र्य ही खण्डित हो जाता। भैरव के पारमार्थिक स्वरूप के वर्णन में 'नादबिन्दुमय' मानने का पक्ष साधना की दृष्टि से बहुप्रचलित धारा है। इस विचार के आधार पर अन्य समग्र क्रम सम्बन्धी चिन्तन का विस्तार हुआ है। यद्यपि विज्ञानभैरव की दृष्टि से यह कहना अनुचित है कि यही वास्तविक परमार्थ है, परन्तु ॐ कार का प्लुत उच्चारण करके शून्य की भावना करते समय नादबिन्दु की अवस्था में स्वतः ही शून्य घटित हो जाता है।[५] बिन्दु से उन्मना तक की क्रम की अवस्थाएँ नाद और बिन्दु से अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं। भास्कर राय भी बिन्दु को छोडकर अर्धचन्द्र, निरोधिका आदि को नाद का ही स्वरूप मानते हैं।[६] नाद की स्फूर्ति, अन्तःप्रकाशन और बहिप्रकाशन पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी भूमि के विलास हैं लेकिन इन सभी का व्यवहार 'राव' शब्द से किया जाता है। अनाहत नाद का अनुत्तरतत्त्व है। नाद की अनुसन्धान में अनाहत का ही विश्लेषण किया जाता है। आचार्य अभिनवगुप्त ने भी अष्टविध नाद की भैरवता और भैरव की सर्वोच्चता पर जोर दिया है।[७] संकेतपद्धति में उल्लिखित कथन के अनुसार बिन्दुशक्ति बीजाक्षर को आन्तरिक विमर्श के पक्ष में ही लिया है, बाह्य विमर्श में तो अनाहतत्व ही नहीं है।[८] उन अवस्थाविशेषों में नदन की

---

४ जीवः शक्तिः शिवस्यैव सर्वत्राऽवस्थिताऽपि सा।
स्वरूपप्रत्ययारूढा ज्ञानस्योन्मीलनाच्छिवा॥
—त्रिशिरोभैरव, नेत्रतन्त्र १६।५३ (उद्योतव्याख्या) में उद्धृत।

५ प्रणवादिसमुच्चारात् प्लुतान्ते शून्यभावनात्।
शून्यया परया शक्त्या शून्यतामेति भैरवी॥
- विज्ञानभैरव, ३९।

६ बिन्दु विनिर्मुक्तानामन्यानामेव नादसंज्ञा मन्त्रशास्त्रे (वरिवस्यारहस्यम्, पृ.११)

७ योऽष्टविधो नाद भैरवः परमः।
- तन्त्रसार, आह्निक २२।

८ शून्य स्पर्शस्तथा नादो ध्वनिर्बिन्दुस्तथैव च।
शक्तिबीजाक्षरै चैवेत्वष्टधाऽनाहतः स्मृत॥
- संकेतपद्धति, नित्याषोडशकार्णव में उद्धृत, पृ. ३६।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मात्रा को लेकर आठ को नाद का विस्तार और नौवाँ को निर्विशेष माना जाता है।[९] इसे शब्द मानने के पक्ष में भी नाद के पक्ष की तरह घोष आदि शब्दों का भेद माना जाता है।[१०] इसमें एक ओर 'राव' ने एक मत को ग्रहण किया है तो 'स्फोट' ने दूसरे को। स्वन वह शब्द है जो शब्दनित्यवादी के बाद आया है और अन्त्य में 'शब्दाः' कहकर सभी का समावेश होने वाला विशिष्ट 'शब्दवाच्य' ही इस दर्शन की विशेषता है। भैरव का आद्यस्फुरण स्वच्छन्द है। महाप्रलय की चिरनिद्रा से जागने की प्रक्रिया का पहला चरण है 'स्वच्छन्दभैरव' और यहीं कालरात्रि से संवित् का व्यष्टिभाव प्रकट होता है। उद्यानभैरवतन्त्र में इसी की व्याख्या की गई है। इसके अनुसार उद्यानभैरव के ६४ योग से मध्यपद्म में अनाहत स्वरूप शब्द की उत्पत्ति होती है। इसे इस प्रकार व्यक्त किया गया है-

वनोपवनसङ्कीर्णे उद्याने सुमनोरमे।
तत्र याग कृते ह्यादौ सृष्टिक्रीडार्थहेतुतः ॥
चतुःषष्टिविभेदेन तत्र यागं प्रचक्रिरे।
उद्यानभैरवे सार्धं मन्त्रसामर्थ्यचिन्तकम् ॥
मध्यपद्मोर्ध्वगः शब्दो निर्गतः परमो महान्।
हननेन विना जातो ह्यनाहत इति स्मृतः ॥

इसके अनुसार, भैरव की आद्यसृष्टि या सृष्टि का पहला चरण अनाहत नाद का उद्भव है। "मध्यपद्मोद्भव" शब्द से सांकेतिक अर्थ में कुलप्रक्रिया के अनुसार की सृष्टि का चिन्तन प्रदर्शित है। व्यष्टि में मध्यपद्म ही हृदयरूप कमल है। हृदयकमल से ही अनाहत नाद की उत्पत्ति होती है। सृष्टि का सोपान कहने से ही इसको पश्यन्ती अवस्था तक व्याप्त माना जाना चाहिए। अनाहत भी ज्ञातधर्म तो पश्यन्ती ही हो सकता है, अन्यथा भैरव का परत्व तथा शक्ति का परविसर्ग एवं अपरविसर्गरूपी बिन्दु का

---

९ घोषः कांस्यं तथा घण्टावीणा वेणुश्च बीसकम्।
दुन्दुभिः शंखघोषश्च नवमं निर्विशेषकम् ॥
- हंसनिर्णय, नित्याषोडशिकार्णव में उद्धृत, पृ.३६।

१० घोषो रावः स्वनः शब्दः स्फोटाख्यो ध्वनिरेव च।
झङ्कारो ध्वनतश्चैव ह्यष्टौ शब्दा प्रकीर्तिताः ॥
- स्वच्छन्दतन्त्र, ११।६।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वाचकत्व ही प्रस्फुट नहीं हो सकता है। कमल की उत्पत्ति महाह्रद में माना जाता है। उस महाह्रद का अनुसन्धान ही मन्त्रवीर्य की अनुभूति का उपाय माना जाता है।[११] यहाँ नाद को मन्त्रवीर्यस्वरूप माना गया है। चूँकि 'नाद' वास्तव में बिन्दु आदि नवक का समष्टिस्वरूप है और मूल सत्ता से परे सूक्ष्म परापर विस्तार की भूमि है, इसलिए इसे मन्त्रवीर्य भी माना जाता है। जिस तरह लोक में स्त्री और पुरुष के एकत्व को आनन्द के रूप में देखा जाता है उसी तरह भैरव और भैरवी को नाद और बिन्दु का द्योतक मानकर दोनों के समष्टि को परमानन्द माना जाता है।[१२] यहीं पर कुल और कुण्डली का दार्शनिक उन्मेष होता है। भैरव की अभिव्यक्ति आनन्द की अभिव्यक्ति है और इसको समझाने के लिए कामकला के प्रतिपादक शास्त्रवचन और मूर्तियाँ भी देखी जा सकती हैं। जहाँ तक लोक में व्यक्त किया जा सकता है उस तरह की अद्वयता प्रतिबिम्बत करने का इससे अधिक सटीक और सरल तरीका क्या हो सकता है? अन्यथा व्याख्या करके सम्प्रदाय को विच्छेद न करें, इसी उद्देश्य से संकेतविद्या गुरुवक्त्रगम्या ऐसा कहा गया है। नाद और बिन्दु का 'भैरव–भैरवी भाव का द्योतन दर्शन का एक पहलू है, जबकि अभिनवगुप्त ने शब्द में ही पद का अन्तर्भाव करके एक ही आदर्शस्वरूप शब्द को 'भैरवपद' कहकर सम्बोधित किया है।[१३] वर्णग्राम में भूत, अनुत्तर और उसी का उल्लासस्वरूप या शक्ति की प्रकटनस्वरूप इच्छा और ज्ञानशक्ति का समावेशस्वरूप उन्मेष या पराक्रमबोधक 'अ-इ-उ' को स्वरषट्क की सांस में लिया जाता है। इसी ह्रस्वत्रय से भैरवरूपी परतत्त्व के शनिक स्वरूप का परिगणना किया गया है। इसे भैरव का रश्मिस्वरूप या प्रकाशस्वरूप माना जाता है।[१४] यद्यपि भैरव की शब्दव्युत्पत्ति के सन्दर्भ में अभिनवगुप्त पराकाष्ठा में नहीं पहुँचे हैं, फिर भी वह भैरव के दार्शनिक

११ महाह्रदानुसन्धानान्मन्त्रवीर्यानुभवः।
- शिवसूत्र, १।२२।

१२ भैरवोऽहं कुलोऽहं वै बिन्दुस्त्वं नादकुण्डली।
उभयोः संगमो योऽयं परानन्दसवभावकः॥
- श्रीमतोत्तर, नित्याषोडशिकार्णव, पृ. १३९ में उद्धृत।

१३ एकाशीतिपदा देवि ह्यत्रान्तर्भावयिष्यते।
एकामर्शस्वभावत्वे शब्दराशिः स भैरवः॥
- तन्त्रालोक, ३।१९७गघ—१९८कख।

१४ अतः षण्णां त्रिक सारं चिदिष्युन्मेषणात्मकम्।
तदेव त्रितयं प्राहुर्भैरवस्य परं महः॥
- तन्त्रालोक, ३।१९२।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विश्लेषण में चरमोत्कर्ष पर पहुँच गए हैं। ईश्वराद्वयवाद की दृष्टि से पुष्ट ईश्वरप्रत्यभिज्ञा के रहस्यवेत्ताओं का 'भैरव' ही प्रत्यभिज्ञा का 'ईश्वर' है। आचार्य अभिनवगुप्त ने शैव और रौद्र भेद को सम्मिलित करने के लिए ही भैरवाद्वयवाद को प्रतिष्ठित न करके भैरवाद्वयवाद को ईश्वराद्वयवाद के रूप में प्रतिष्ठित किया है। अभिनवगुप्त ने न केवल परात्रीशिका की व्याख्या आदि में, बल्कि स्वरचित शास्त्र में भी भैरव की ईश्वरता को स्वीकार किया है।[१५] भैरवीय चिदाकाश में सृजन और लय होता है, इस प्रकार का स्रोत मिलने के बाद और उस बिन्दु के विस्तार के रूप में इच्छा, ज्ञान और क्रिया का त्रिक मिलने के पश्चात् तो केवल चिन्तन की व्याख्या अवशिष्ट था, सामग्री तैयार थी। विज्ञानभैरव का शून्यवाद, जो नीलिपीतादि की सत्ता को शून्य मानता है, वह भी प्रपञ्चशून्यता को भैरवबोध का कारण मानकर ज्ञान और ज्ञानी के अविभाज्य भाव को प्रदर्शित करता है।[१६] स्पन्दकारिका के इस कथन के अनुसार भी कि भोक्ता सर्वत्र भोग्य भाव से रहता है[१७], नाम और रूपात्मक ईश्वर से भिन्न नहीं है। शिव और भैरव पद अलग होने से इनके स्रोत अलग मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। विज्ञानभैरव में भैरवावेश के उपाय बताते समय **सर्वज्ञः सर्वकर्ता च व्यापकः परमेश्वरः। स एवाहं शैवधर्मा इति दार्ढ्याच्छिवो भवेत्**[१८] कहकर शिव शब्द का प्रयोग भैरव शब्द के पर्यायवाची शब्द के रूप में किया गया है, इसलिए भैरवाद्वयवाद निश्चित रूप से शिवाद्वयवाद का पर्याय है।

अभिनवगुप्त बताते हैं कि भैरवीय चिदाकाश में भैरव के अपने स्वातन्त्र्य के कारण विश्व प्रतिबिम्बति हो रहा है।[१९] क्षेमराज इसी भाव को सूत्र रूप में कहते हैं कि चितिशक्ति अपनी

१५ इत्थं स्वसंवेदनमादिसिद्धमसाध्यमात्माननीशमीशम्।
स्वशक्तिसम्पूर्णमदेशकालं नित्यं विभुं भैरवनाथमीडे॥
- परमार्थचर्चा, श्लोक ८।

१६ ज्ञानप्रकाशकं सर्वं सर्वेणात्मा प्रकाशकः।
एकमेकस्वभावत्वाज्ज्ञानं ज्ञेयं विभाव्यते॥
- विज्ञानभैरव, १३४।

१७ भोक्तैव भोग्यभावेन सदा सर्वत्र संस्थितः।
- स्पन्दकारिका, २।२९गघ।

१८ विज्ञानभैरव, १०७।

१९ इत्थं विश्वमिदं नाथे भैरवीयचिदम्बरे।
प्रतिबिम्बमलं स्वच्छे न खल्वन्यप्रसादतः॥
- तन्त्रालोक, ३।६५।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इच्छा से अपने आप में एक दीवार बनाती है और वहाँ दुनिया को प्रतिबिम्बित करती है।[२०] क्षेमराज के इस वचन में ईश्वराद्वयवाद का सार प्राप्त होता है। प्रत्येक भाव प्रकट होने के लिए ईश्वर में अलग-अलग रूप बनते हैं। कर्ता, कर्म और करण का सर्वस्वरूप एक मात्र अधिष्ठान भैरव रूप पूर्ण चेतना है, जिसे शिवसूत्र में ब्रह्म की तरह आत्मा को चैतन्य कहा गया है।[२१] प्रत्यभिज्ञाहृदय में उसी चैतन्य रूप परमात्मा को विश्वसिद्धि का कारण[२२] बताते हुए उसको संवित् कहा गया है। स्त्रीलिङ्गीवाचक संवित् शब्द को महामहेश्वराचार्य अभिनवगुप्त परात्रीशिका की व्याख्या में यत्र-तत्र भैरव से अभिन्न प्रतिपादन करते हुए भैरवाभेदवाद को आगम के अनुकूल बताते हैं। अकुल शिव और कुल शक्ति में अकुल तत्त्व को करणरहित बताया गया है लेकिन सृष्टि आदि के अभाव में भी स्वातन्त्र्य लुप्त न होने के कारण सञ्चरण सम्भव होता है। अनुत्तर अकलात्मक है। परभैरवभट्टारक और आनन्द की अभिव्यक्ति के बाद स्वातन्त्र्यवश इच्छा और उन्मेष की क्रीडा से सारा संसार बिन्दु में लीन हो जाता है। भैरव आदि में चित्, आनन्द आदि पाँच प्रकार के शक्ति का उल्लास ही मातृकास्वरूप या संकोच–विकासस्वरूप है। शिव के पञ्चवक्त्र शक्तिपञ्चक से युक्त हैं। यही विश्वोत्तीर्ण–विश्वमय तत्त्व ही भैरव हैं। इसे ही महेश्वरानन्द ने **चिदानन्देषणाज्ञानक्रियापञ्चकशक्तिमान्। भैरवः परमो नाथस्तत्त्वान्ते कथयिष्यते**[२३] द्वारा व्यक्त किया गया है। यद्यपि शक्तिपञ्चक के बहिरुल्लासन में कुलव्रत का दर्शन होता है, परन्तु स्वभाव से भैरवनाथ अकुलवीर या अकुलेश्वर हैं। इस प्रकार कुलेश्वर, कुलेश्वरी, अकुलेश्वर और अकुलेश्वरी भैरव के ही उल्लासस्वरूप हैं, परमार्थ में भैरव ही हैं। लय और उद्भव की अभिव्यञ्जक शाक्त शरीर में ``ह" के रूप में कुलकुण्डलिनी के रूप में निवास करती है और निरोधिताशक्ति को समष्टि कुण्डलिनी या भैरवी शक्ति के रूप में प्रकट करती है और आणवाहन्ता के शरीर को धारण करती है, जिससे पुष्टोऽहम्, कृशोऽहम् आदि जैसी अजीब भावनाएँ पैदा होती हैं। जैसे ईश्वर और सदाशिव की स्थिति मे केवल उन्मीलित अवस्था और

---

२० स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति

- प्रत्यभिज्ञाहृदय, २।

२१ शिवसूत्र, १।

२२ चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः।

- प्रत्यभिज्ञाहृदय, १।

२३ महार्थमञ्जरी, २० कारिका, परिमलव्याख्या।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निमीलित अवस्था के 'अहम्' के समान भेद है वैसे ही जगत् और शिव का भेद केवल उन्मेष और निमेष मात्र का है। जगत् उन्मेष है तो शिव निमेष हैं। वामेशी आदि क्रम से उन्मेष में कारण हैं तो भूचरी आदि अक्रम से निमेष में कारण हैं। अब ऐसे महेश्वर को अनेकरूपता क्यों लेना चाहिए? इसके उत्तर में **अथास्यदेकरूपेण वपुषा चेन्महेश्वरः। महेश्वरत्वं संवित्त्वं तदत्यक्ष्यद् घटादिवत्**[२४] कहकर संवित् रूपता को ही प्रपञ्च का कारण माना जाता है। भैरव प्रकाशस्वरूप हैं, अतः परात्रीशिका की व्याख्या में **न अप्रकाशरूपं भावविकासप्रकाशे कारणं भवेत्, प्रकाशात्मकं चेत् नूनं तत् परमेश्वरभैरवभट्टारकरूपमेव** कहकर 'भाव' के रूप में प्रकाशित करने की क्षमता अप्रकाश की नहीं हो सकती और यदि प्रकाशात्मकता है लेकिन वह भैरव नहीं है ऐसा भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि वही प्रकाश, भिन्न रूप में, भैरव है इसलिए यह स्पष्ट किया गया है कि प्रकाश के अतिरिक्त कोई दूसरा वस्तु उपस्थित नहीं की गई है। इस प्रकार, लौकिक एवं पारलौकिक समग्रता का बोधक, भैरव, विश्वातीत शिव कैसे हैं? इस प्रश्न के उत्तर में **शिवतत्त्वमेव अनन्तविचित्र–स्वातन्त्र्यस्फारस्फुरणशक्ति–चमत्कारभैरवभावं निर्णीतम्** कहकर छत्तीस तत्त्व का ही पर्यवसान का पक्ष ग्रहण किया गया है यद्यपि विश्वातीत, सर्वातीत, सर्वभट आदि मानते हुए सैंतीसवाँ तत्त्व मानने का पक्ष भी प्रबल और अगममूलक ही है। अभिनवगुप्त ने इन सभी तथ्यों से जगत् के रूप में प्रकट होने वाले भगवान शिव को भैरवस्वरूप में इस प्रकार नमस्कार किया है–

तवैवैकस्यान्तः स्फुरणमहसो बोध जलधे–
र्विचित्रोर्मिव्रातप्रसरणरसो यः स्वरसतः।
त एवामी सृष्टिस्थितिलयमयस्फूर्जितरुचां
शशाङ्कार्काग्नीनां युगपदुदयापायविभवाः॥
अतश्चित्राचित्रक्रमतदितरादिस्थितिजुषो
विभोः शक्तिः शश्वद् व्रजति न विभेदं कथमपि।
तदेतस्यां भूमावकुलमिति ते यत्किल पदम्
तदेकाग्रीभूयान्मम हृदयभूर्भैरव विभो ॥[२५]

२४ तन्त्रालोक, ३।१००।

२५ क्रमस्तोत्र, १०—११, उद्धृत, के.सी. पाण्डे, पृ.९४९।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इसके अनुसार भी भैरवरूपी बोधसमुद्र में आया हुआ तरंग ही सृजन, स्थिति और विनाश है। 'अ'कार अनुत्तर शिववाचक है, 'ह'कार विमर्शरूपी शक्तिवाचक है और 'म'कार नररूपी (पुरुषत्व) अणुवाचक है, इसलिए परा, परापरा और अपरा शक्ति के स्वामी भगवान् भैरव ने अपना सम्पूर्ण शरीर 'अहम्' में धारण किया है। 'म' रूपी पुरुष 'ह' शक्ति की कृपा से 'अ' अनुत्तर तत्त्व का ज्ञान करके भैरवरूपी बोध की प्रकाशमयता को प्राप्त करता है। इसे **अकार सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः। हकारोऽन्त्यः कलारूपो विमर्शः परिकीर्तितः** कहकर समग्र मातृका को प्रकाश शिव और विमर्श शक्ति माना गया है। **न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारका कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति** कहकर जो सभी का अधिष्ठान है उसको प्रकाशस्वरूप अद्वैतवाद मानना, यद्यपि दोनों विचारों में समानता है तथापि विवर्तवादी परमतत्त्व को पूर्णतया स्वतन्त्र मानने में झिझकते हैं।

द्वैत और अद्वैत दोनों सशर्त ज्ञान हैं और जो द्वैत, अद्वैत और अद्वैत के त्रिशूल पर बैठता है उस तत्त्व को इन तीन पहलुओं के लिए कोई आकर्षण नहीं है। स्वतन्त्रता न द्वैत में है, न अद्वैत में है, न द्वैताद्वैत में है, क्योंकि ये सब एक एक अंश मात्र हैं लेकिन अद्वैत पन्थ पाश को काटने में समर्थ होकर महासमयेश्वर की कृपा का पात्र बनाता है, ज्ञान और आनन्द अद्वैतानुभूतिमय ही होता है। वेदान्त में स्वतन्त्रता का कोई विचार नहीं है, लेकिन यहाँ **इह परमेश्वरस्य चिदानन्दघनस्य ब्रह्मदर्शनोक्ततत्त्वातिशायिनः स्वच्छन्दभैरवस्फुरत्तात्मा परमार्थः**[२६] कहकर स्वच्छन्द 'अहम्' की समझ को परमार्थ माना जाता है।

इस विश्लेषण के सन्दर्भ में महामहेश्वर क्षेमराज का विचार मननीय है और उन्होंने कला से रहित निष्कल शिव में सकल (कला से लेकर पृथ्वी तक ३० पदार्थ) रहते हैं, अकल माया में ये सब विश्रान्त होते हैं और ये सब का स्वामी भैरव हैं, ऐसा बताकर एक ही श्लोक में सारा रहस्य भर दिया है।[२७] चैतन्य संसार का स्वभाव है, उस चैतन्य की सिद्धि के लिए साक्ष्य उपयुक्त नहीं हो सकता, क्योंकि साक्ष्य स्वयं ही स्वयं प्रकाशित चैतन्य की चमक से प्रकाशित होता है लेकिन चूँकि चैतन्य सदैव

---

२६ स्वच्छन्दोद्योत, १।१

२७ स्वच्छन्दतन्त्र ७, उद्योत मङ्गलाचरण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रकाशमान रहता है, इसलिए उसे कोई भी किसी भी तरह से ढक नहीं सकता। विना अनुभूति के कभी भी किसी का स्वभाव नहीं हो सकता, यदि उसका बोध हो जाए तो वह अपने ही प्रकाश से प्रकाशित हो जाता है।[२८] इसे उच्छुष्मभैरव का **यावन्न वेदका एते तावद्वेद्याः कथं प्रिये। वेदकं वेद्यमेकं तु तत्त्वं नास्त्यशुचिस्ततः ॥**[२९] श्लोक स्पष्ट करता है। अपनी ही शक्ति के संकोच के कारण संसारित्व की प्राप्ति होती है। **चिद्वत्तच्छक्तिसंकोचान्मलावृतः संसारी**[३०] **तथापि तद्वत् पञ्चकृत्यानि करोति**[३१] कहकर क्षेमराज ने दिखाया है कि जब शिव की कला आवृत हो जाता है तब भी सामान्य स्पन्दात्मकता और पञ्चकृत्यकारिता बनी रहती है। विज्ञानभैरवोद्योत, नेत्रतन्त्रोद्योत, स्वच्छन्दोद्योत आदि में सर्वत्र शिवाद्वयवाद को प्रतिष्ठित करने वाले क्षेमराज ने **अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः** में **घोरा-भेदाभेदाभासरूपा (अपरा) अघोरा न विद्यते घोरं भेदस्पर्शारूपं यस्या**[३२] कहकर अपरा, परापरा और पराशक्ति को अघोर मन्त्र में बदल दिया है। **अघोरान्नापरो मन्त्रः**[३३] अर्थात् अघोर से बड़ा कोई मन्त्र नहीं है ऐसा मानने वाला दक्षिणस्रोतप्रधान मन्त्र में त्रिशक्ति की व्याख्या करके त्रिकदर्शन की एक अच्छी जड़ गाड़ दी गई है।

शिव के अनुत्तर 'अ'कार रूप का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। शिव की ये शक्तियाँ लौकिक दृष्टान्त में 'अकार' का स्वरूप बनाने के लिए आवश्यक अंग हैं। जैसे अक्षर के ऊपरी, मध्य और निचले हिस्से होते हैं वैसे ही बिन्दुस्वरूप में शिर रौद्रीशक्ति, मुख वामाशक्ति, भुजा अम्बिकाशक्ति, हतियार ज्येष्ठाशक्ति करके चार शक्तियाँ रहती हैं। इसमें शैव कलाएँ इच्छा, ज्ञान, क्रिया और शान्ता जब जुडते हैं और जब ये तीनों अलग अलग दो बार और ये सभी एक बार मिल जाते हैं, तो ग्यारह बन जाते हैं। ये सभी मातृका के विस्तार में प्राथमिक कारण हैं और **परभैरवीयपरावाक्शक्त्यात्मकमातृका, अत एव ज्येष्ठा-रौद्री-अम्बाख्यशक्तिप्रसरसम्भेदवैचित्र्येण सर्ववर्णोदयस्य**

२८ शिवसूत्र, १।१ विमर्शिनीव्याख्या, पृ. १३

२९ पूर्ववत्

३० प्रत्यभिज्ञाहृदय, ९

३१ प्रत्यभिज्ञाहृदय, १०

३२ नेत्रतन्त्र, १९।१६० (उद्योतव्याख्या)

३३ शिवमहिम्नस्तोत्र, ३५ग

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उक्तत्वात्[३४] के कथन के अनुसार परावाक् की शक्ति के प्रसार रूप हैं। ये सभी मातृकाएँ भी शक्ति के उल्लासस्वरूप हैं और वह शक्ति भैरव की ही है। भैरव कहें या भैरवी, उस परम सत्ता के लिए कोई आग्रह नहीं है, इसलिए क्रम को जानने वाले **यो मनोन्मनमनोन्मनीतरः। स्वस्वरूपचतुरात्मभावतः॥ द्वादशैक्यतनुरक्रमक्रमो। भैरवस्त्वमसि देवी ते स्थितिः**[३५] कहकर प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय की सभी स्थितियों के योग के रूप में भैरव को देवी का पर्याय वा स्थिति दर्शाते हैं। यह भैरव सभी कार्य अकुलस्वरूप या उत्तीर्ण रूप में करता है, इसलिए क्षेमराज मृत्युजित् की व्याख्या करते हुए **विश्वसर्गादिकृत्स्वाभावैरिञ्च्यादिकुलक्रमात्। अकुलो जयति श्रीमानेकश्चिन्नेत्रभैरवः**[३६] कहकर मृत्युञ्जय की भैरवात्मकता को व्यक्त करते हैं। प्रत्यभिज्ञाहृदय के **तद्भूमिका सर्वदर्शनस्थितयः**[३७] सूत्र बताता है कि इसी परम तत्त्व की उल्लासभूमि में बैठकर सभी दर्शन इसके सर्वव्यापी स्वरूप से विमुख हो गए हैं। जो चाहे कुछ भी माने परन्तु वे परमेश्वर के अंश हैं, इसलिए उन शास्त्रों को यहाँ हेय नहीं माना जाता बल्कि किसकी विचार किस श्रेणी का है, वही स्तर के अनुसार आदर किया जाता है।

■■■

३४ शिवसूत्र, २।३ विमर्शिनीव्याख्या, पृ. ९१

३५ चिद्गगनचन्द्रिका, १७७

३६ नेत्रतन्त्र, १२ अधिकार, उपसंहारश्लोक

३७ प्रत्यभिज्ञाहृदय, ८ सूत्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

महात्रिपुरसुन्दरी : एक चर्चा

तत्त्वचर्चा

आगमशास्त्र में द्वैत, द्वैताद्वैत और अद्वैत सिद्धान्त प्रसिद्ध हैं। शाक्तदर्शन इन त्रिविध विचारों से ऊपर उठकर भगवती के तुरीय रूप की उपासना का प्रतिपादन करता है। सामान्यतः छत्तीस तत्त्वों के भीतर शिव और शक्ति की सांसारिक लीला, उसके ऊपर चैतन्यस्वरूप विश्वोत्तीर्ण परम तत्त्व और चिन्मात्र अड़तीसवाँ तत्त्व शक्तिदर्शन के ऊपरी आधार हैं। संविद्रूपिणी भगवती ही नर-शक्ति-शिवात्मक सृष्टि की जननी हैं और संसार का आनन्द और त्रास भगवती की नित्य लीला है। सम्पूर्ण प्रपञ्च तथा प्रपञ्चोत्तीर्ण और विश्वोत्तीर्ण-विश्वमय भैरवाकारता भगवती में निहित स्वातन्त्र्य से प्रतिपादित हैं और भगवती स्वयं अपने में विश्वमय वैचित्र्य का आधान करती है। यही शक्तिदर्शन का सार है। भगवती के इसी संवित् स्वभाव को 'त्रिपुरा' शब्द से सूचित किया जाता है।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरस्वरूप त्रिमूर्ति से परे, ऋक्, यजुः और सामरूप त्रिवेदमयी और वास्तव में वेद से परे, शाम्भव, शाक्त और आणव विसर्ग से तुरीय स्वभाव, अकार, हकार और सामरस्य स्वभाव, पराशक्ति त्रिशक्ति, त्रिधाम, त्रिबीज, त्रितत्त्व, त्रिकोण आदि भेद से विस्तारित प्रपञ्च की सृष्टि करने में प्रवीण, मन्त्र, पद, वर्णमय अथवा चक्रगत त्रिविधता तथा भुवन, तत्त्व, कलामय वाच्यगत त्रिविधता को आकार में सृष्टि करने में प्रवीण संवित् स्वभाव को ही 'त्रिपुरा' शब्द इंगित करता है। संविद्रूपिणी भगवती त्रिपुरा धाम, तत्त्व, पीठ, लिंग, मातृका आदि त्रिकात्मक समग्र परापरा प्रपञ्च से उत्तीर्ण स्वरूप की हैं। वेदान्त में प्रतिपादित परब्रह्म आगमशास्त्र में प्रकाश-विमर्शात्मक युगल स्वभाव तथा प्रपञ्च के रूप में प्रकट होने की शक्ति से युक्त माना गया है। प्रकाश-विमर्शात्मक बीज-योनि या कामकला का नित्य विलास प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय के रूप में होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तुरीयरूपिणी भगवती ही सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह और अनुग्रहरूप पञ्चकृत्य को आभासन, रक्ति, विमर्शन, बीजावस्थापन और विलापन की प्रक्रिया के माध्यम से सम्पादन करने वाली हैं। इन पाँच क्रियाओं में भगवती की पाँच अवस्थाएँ सृष्टि, स्थिति, संहार, अनाख्य और भासा हैं। 'अनाख्या' अर्थात् जिसको वाणी के रूप में व्यक्त नहीं किया जा सकता है उसी 'परा' की व्यक्त स्वभाव पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी रूप वाङ्मय का विस्तार है।

'अ-ह-म' स्वरूप शिव, शक्ति और नरक्रम के संकुचन या शिवतत्त्व, विद्यातत्त्व और आत्मतत्त्व के क्रम की जड़ता के विस्तार को विभिन्न तरीकों से 'म-ह-अ' के क्रम से बदलकर अपने स्वरूप में विलास कराने में चतुर भगवती को 'महात्रिपुरसुन्दरी' के रूप में प्रतिपादन किया गया है।

महात्रिपुरसुन्दरी ही 'अहम् त्रिपुरः' स्वभाव अर्थात् मन, बुद्धि और अहंकाररूप त्रिपुरात्मक शरीर में आत्मस्वभाव से प्रकट होती है। सृष्टिक्रम में विस्तारित स्वभाववाला शाक्तवीर्य सूक्ष्म रूप धारण कर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपने में समाहित कर लेता है और केवल बीजांकुर रूप में विद्यमान रहता है। जब संसार के विस्तार और संकुचन की सार्वभौमिक प्रकृति स्वयं प्रकट होने लगती है, तो वह वामा, ज्येष्ठा और रौद्रीस्वरूप में प्रकट होती है। सृष्टि के उत्कर्ष में यह शक्ति मूलाधार मे स्थिति त्रिकोण में सुषुप्ता भुजगी के रूप में विद्यमान है, जबकि संहार के समय में वह चन्द्रमण्डल में स्थित शिवधाम अकुल परम सहस्रार शून्य रूप शिव में व्योमवामेश्वरी के रूप में विद्यमान है। चूँकि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उनमें समाहित है, इसलिए अकेली भगवती ही महा अहन्ता के रूप में विद्यमान हैं। वस्तुत: महात्रिपुरसुन्दरी का प्रपञ्च के रूप में आभास होना भी भगवती की सत्ता से पृथक् सत्ता प्राप्त करना या 'अन्यथा भाव' नहीं है; भगवती का अपना अमूर्त या चिन्मयप्रपञ्च मूर्ति रूप में प्रफुल्लित होना ही है। 'संवित्' ही वृद्धि और संकुचन की निरन्तर स्वाभाविक क्रिया को प्राप्त कर लेती है और शक्ति के संकुचन और विकास में विभिन्न स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। तत्तत् अवस्था के शक्तिरश्मि के समूह शक्तिचक्र के रूप में प्रकट होते हैं। इस परापरधाम के प्रकट होने से संवित् की अपने में ही भेद प्रकट हो जाता है और शक्ति की मन्त्रमय, चक्रमय, देहमय सृष्टि हो जाती है और मानो मायावी ने माया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का अन्त कर दिया हो, स्वयं में चिन्मात्र का भी अवशेष होता है। शाक्तदर्शन की मुख्य विशेषता यह है कि चित् की स्वतन्त्रता भी चित् ही है, वह चित् से अभिन्न है और चूँकि यह स्वतन्त्रता जगत् के रूप में उल्लसित होता है, अत: वेदान्त दर्शन के मायावाद या सांख्य के समान परिणामवाद को स्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

परमेश्वरी चैतन्यशक्ति का जगत् के रूप में आभास या शरीर के रूप में स्फुरण स्वेच्छा परिकल्पित है। यह जगत् के रूप में जो स्फुरण है वह क्रम में आश्रित होकर या अक्रमिक रूप में, दोनों प्रकार से होता है। कार्य-कारण भाव से उत्पन्न सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड क्रम में आश्रित है, जबकि चित्रों का ज्ञान जिसमें पूर्वस्थित, परस्थित, पूर्व क्षण में निर्मित, पर क्षण में निर्मित, इन सभी का एक समान आकस्मिक रूप में बोध होता है, उस प्रकार का अक्रमिक कलना भी संवित् से ही होता है। **प्राक् संवित् प्राणे परिणता** अर्थात् चितिशक्ति सबसे पहले प्राणरूप में परिणत हो गई, इस वाक्य के अनुरूप शक्ति का स्फुरण सबसे पहले प्राण के रूप होता है, जो संसार में 'सूर्य' के रूप में और जीव में 'प्राण' के रूप होता है। 'सोम' रूप प्रमेय जब सूर्यस्वरूप प्रमाण के विभिन्न कलाओं से संयुक्त होता है, तब चन्द्रमा के अमृता आदि कलाएँ दिखाई देते हैं। बाह्य सोम में कलाओं के प्रस्फुटित होने पर प्रतिपदा आदि तिथियाँ उल्लसित होती हैं और जब प्रमेयगत चैतन्य क्रमशः प्रमाता के रूप में परिणत हो जाता है और समग्रता या प्रकाश की अधिकता से प्रमाता में विश्वमयता का उदय होता है, तब बाह्य सोम में पञ्चदशी या पूर्णिमाकला का उदय होता है। इस विश्वमय भाव का भी प्रमाता के रूप में स्थित शक्ति षोडशी ही है, जो विश्वोत्तीर्ण तत्त्व और प्रकाश को भी अपने में समेटनेवाली महाकाली षोडशीस्वरूप अमावस्या का बाह्य सोम में उदय होता है। इस भाव को भी कलना करनेवाली पराकला अक्षया चिति ही महाषोडशी के रूप में पूजी जाती है, जिसकी स्फुरण से सम्पूर्ण कला को अपने में ग्रास करने से आनेवाली कला का भासन अवशेष रहने के कारण प्रतिपदा आदि तिथियाँ चन्द्रमा में फिर से उभर आती हैं। काल परमेश्वर का स्वरूप या शरीर है। इसका भासन कला पर आधारित है। ये कलाएँ भी प्रतिपदा से पूर्णिमा तक पन्द्रह होती हैं, जिनका

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कलना नित्या कला से होता है। इससे उत्तीर्ण पारमेश्वरी षोडशी नित्या कला जो क्रम से रहित है, सभी में अनुप्राणन कराके स्वयं भासित होती है।

शरीर में कला के अंश के रूप में जो प्राण उत्पन्न होता है, वह छत्तीस अंगुल का होता है जो गमन में अष्टादश अंगुल और आगमन में अष्टादश अंगुल होता है। अंगुलियों के आधार पर तत्त्वों के उदय की भावना की जाती है और प्राण में एक चषक में घटिका का उदय, साठ चषक में साठ घड़ी का उदय माना जाता है, और तिथियों का उदय माना जाता है तुटि के अधार पर। तुटियों में प्रथम तुटि का आधा भाग तथा अन्तिम तुटि का आधा भाग विश्रान्तिरूप होने के कारण वे काल के सम्पर्क में नहीं हैं। बीच के पन्द्रह तुटियाँ पन्द्रह तिथि के रूप में स्फुरित होते हैं। उनमें से प्रत्येक में, दिन और रात प्रकाश और विश्राम का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रमाता में प्रमेय का विलाप रात्रि का रूप है और प्रमेय का प्रकाशन दिन का रूप है। कभी वेद्यभाव का और कभी वेत्ताभाव की अवधि लम्बी होती है, इसलिए दिन और रात सभी एक जैसे नहीं होते हैं। जब वेद्यभाव और वेत्ताभाव की अवधि समान होती है, तो उस समय को विषुव कहा जाता है। कृष्णपक्ष में प्राणरूपी सूर्य को अपानरूपी चन्द्रमा का अनुप्राणन करने के लिए एक एक कला हरेक तिथि के क्रम से अर्पण करते हुए पन्द्रहवाँ कला भी अर्पण करने से चन्द्रमा की कला का प्रसारण क्षीण होने के कारण चन्द्रमा प्राणरूपी सूर्य में लीन हो जाता है। अगला अर्ध तुटिकाल को पक्ष का सन्धि माना जाता है जिसमें प्राण की अर्ध तुटि को 'अमावस्या' माना जाता है और अपान की अर्ध तुटि को प्रतिपदा माना जाता है। जब अमावस्या का अंश प्रतिपदा के अंश में प्रवेश करता है तो उसे तिथिच्छेदरूप ग्रहण माना जाता है। उसके बाद चित्स्वरूपी सूर्य अपान स्वरूप चन्द्रमा को एक कला अर्पित करने लगता है और उसी के आधार पर शुक्लपक्ष की तिथियां उदय होती हैं और पन्द्रहवीं कला अर्पित करने पर पूर्णिमा का उदय होता है।

इड़ा और पिंगला नाडी से सूर्य और चन्द्रमा का सञ्चरण देवयान और पितृयान के रूप में माना जाता है। चन्द्रमा वाम नाडी के मार्ग से पूरे शरीर के नाड़ियों को अमृत सिञ्चित करके तृप्त करता है तो सूर्य दाहिनी नाड़ी के मार्ग से ऊपर की तरफ उछले अमृत बिन्दुओं को खींचता है। चन्द्र तथा सूर्य दोनों का जब आधारचक्र में समावेश होता है तब अमावस्या तिथि का उदय होता है। कुण्डलिनी शक्ति सूर्य की किरणों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के सम्पर्क से चन्द्रमण्डल में विलीन होनेवाली कला के साथ मन्द मन्द अमृत निःसृत होनेवाला आधारकुण्ड में सोई हुई है। शयन की अवस्था को कृष्णपक्ष तथा जागृति की अवस्था को शुक्लपक्ष माना जाता है। यदि प्राणरूपी सूर्य सूर्यनाडी में और अपानरूपी चन्द्रमा चन्द्रनाडी में अवरुद्ध हो तो अमृतसेचन आधारकुण्ड में रुक जाता है और कुण्डलिनी जागृत होकर चन्द्रमण्डल में ग्रास करने के लिए पहुँच जाती है। चन्द्रमण्डल को बैन्दवस्थान कहा गया है और बैन्दवी चिकित्सा को 'त्रिपुरसुन्दरी' का नाम दिया गया है। प्रतिपदा आदि तिथि के आधार पर उत्पन्न होने वाली नित्याएँ हैं कामेश्वरी, भगमालिनी, नित्यक्लिन्ना, भेरुण्डा, वह्निवासिनी, महाविद्येश्वरी, शिवदूती, त्वरिता, कुलसुन्दरी, नित्या, नीलपताका, विजया, सर्वमंगला, ज्वालामालिनी और चित्रा। चूँकि नित्या का उदय तिथि के आधार पर माना जाता है, इसलिए तत्तत् कला का उदय तत्तत् नित्या का उपासना काल माना जाता है।

चन्द्रमा के आधार पर वर्ष का उदय ३६० दिनों का होता है। इसमें प्रमाणरूप में सूर्य के बारह राशियों में भ्रमण करने से राशिचक्र का एक चक्र भी पूरा होता है। राशियों का उदय परा, परापरा और अपरारूप कला और उनके भैरवांशस्वरूप षट्कोण में शाक्तोल्लास और शाम्भवोल्लास के तारतम्य से होता है। जब सूर्य किसी राशि में गमन करता है तो तत्तत् राशि में सूर्य के कला के रूप में राशियों से कलाओं का आदान होता है और जब शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की कला में अमृत तर्पण होने लगता है तो राशि की कलाओं मे हान होता है। सूर्यचक्र नाड़ीचक्र से निकलकर शान्तचक्र में एक अयन पूरा करता है जिसे उत्तरायण कहते हैं। शान्तचक्र में विषुव के बाद सूर्य का सञ्चरण शरीर में नाड़ीचक्र में जाकर पूरा होता है। शान्तचक्र मन का प्रतिनिधित्व करता है, क्योंकि सृष्टि के प्रति उन्मुख आत्मा मन के रूप में शरीर में प्रवेश करती है। स्वभाव के कारण इस चक्र का नाम शान्त है जबकि कला के प्राधान्य से इस चक्र का पर्याय आज्ञा है। ब्रह्माण्ड में जिस प्रकार आत्मा अर्थात् आत्मस्वभाव हिरण्यगर्भ से आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी के क्रम से सृष्टि होती है उसी प्रकार शरीर में भी आकाश आदि प्रपञ्च का सर्जन होता है। सूर्यरूप प्रमाण कुल ३६० किरणों का माना जाता है, जिनमें शाम्भव और शाम्भवी किरणों के योग से यह संख्या पूरी होती है। जब

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्राणरूप हंस और अपानरूप ईश्वरी को दश से गुणा की जाती है, तो उन्हें उक्त संख्या प्राप्त होती है। ५६ पृथ्वी किरणें, ५२ जल किरणें, ६२ तैजस किरणें, ५४ वायु किरणें, ७२ आकाश किरणें और ६४ मानस किरणें हैं। जब ये किरणें परापर विग्रह में पिण्डीकृत होते हैं, तो नवात्मेश्वर नवात्मेश्वरी से लेकर परमेश्वर परमेश्वरी तक की विद्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। पञ्च महाभूत, उनके कारणस्वरूप तन्मात्रा, ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों के समूह, अन्तःकरण, प्रकृति के कलाएँ भी न्यून और अधिक के भेद से मयूख में परिणत होतें हैं। पिण्ड में वे किरणें प्रकृति से लेकर महाभूत तक के विग्रह में प्रविष्ट होते हैं।

प्रकाशविमर्शस्वरूप शुक्ल और रक्त चरण भगवती त्रिपुरसुन्दरी के चरण युगल वर और अभय मुद्रा रूप हैं और ये चरण ३६० किरणों से ऊपर हैं। भगवती की मूर्ति वर्ण, चक्र, मन्त्र, धाम और संवित्स्वरूप प्रमेयपञ्चकस्वरूप बनकर उपास्य रूप बनता है। वर्ण आदि से अतीत चिन्मात्र स्वभाव में उपासना करना सम्भव नहीं है। भगवती का वर्णविग्रह 'अ' और 'ह' का सामरस्यस्वभाव 'अहम्' स्वरूप है। 'अ' से वामा, ज्येष्ठा, रौद्री और अम्बिका तथा सबका समष्टिस्वरूप पाँच कला माना जाता है और 'ह' से इच्छा, ज्ञान, क्रिया और शान्ता और सबका समष्टिस्वरूप पाँच कला माना जाता है। 'अ' और 'ह' के सामरस्य को ग्यारहवीं कला माना जाता है। इस प्रकार वाणी का पश्यन्तीरूप विस्तार एकादश कला के रूप में हुआ है।

वाणी के उल्लास की स्थिति में पश्यन्ती मध्यमा में बदल जाती है। इसमें वाणी नादात्मकता को प्राप्त कर लेती है। नाद को शून्य, स्पर्श, नाद, शब्द, बिन्दु, शक्ति, बीज और अक्षर के रूप में तथा समष्टिरूप में नौ प्रकार से विभाजित किया गया है। वैखरीवाक् समग्र मातृभेद में विभाजित किया गया है।

श्रीचक्र एवं विद्या शीर्षक के अन्तर्गत भगवती की चक्रात्मक एवं मन्त्रात्मक विग्रह की चर्चा की जायेगी। भगवती का धामस्वरूप विग्रह वह्नि, सूर्य और सोम अथवा शिव, शक्ति और सामरस्यात्मक है। संवित्क्रम में सुषुम्नाकाश में सम्पूर्ण आवरण से निर्मुक्त आदि, मध्य और अन्त्यरहित नित्य, निरञ्जन, चिन्मात्र रूप में भगवती का परावाग्रूप धाम है। परा से लेकर वैखरी तक का समग्र वाग्विलास, यन्त्रात्मक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रपञ्च सभी को भगवती के प्रमेयात्मक स्वरूप के रूप में गणना किया जाता है। देश और काल के आधार पर मूर्ति और क्रिया का भेद वास्तव में ईश्वर का आत्मोल्लास मात्र है।

विद्याचर्चा

परव्योम से मातृका का उल्लास जिस प्रकार परिमित ज्ञान के अधिष्ठान के रूप में होकर सम्पूर्ण पाशबद्ध जीव को वाङ्मयप्रपञ्च में निरुद्ध करने के लिए उत्साहित होता है, उसी प्रकार शिवनिष्ठ अनुग्रहस्वरूप कला वाङ्मयप्रपञ्च के शोधन के माध्यम से मन को शुद्ध करके परिमित प्रमातृभाव को अपरिमित प्रमातृभाव प्रदान करनेवाले मन्त्र के रूप में उल्लसित होता है। 'ई' कार में समग्र शक्ति का उल्लास बीज रूप में है इसलिए मन्त्रजननी 'ई' कार में प्रकट होकर त्रिकोणरूप वाग्भवाकारता प्राप्त करती है। त्रिकोण ही शक्ति का स्फार है और त्रिकोण से ही त्रिपुराकुल के सम्पूर्ण मन्त्रों का अंकुरण होता है। शाक्त त्रिकोण का स्फुरण नित्या भगवती की नौ कलाओं के आधार पर नौ अलग-अलग तरीकों से होता है और ये नौ त्रिपुरा आदि विद्या के रूप में प्रकट होती हैं। त्रिपुरा, त्रिपुरेश्वरी, त्रिपुरसुन्दरी, त्रिपुरवासिनी, त्रिपुराश्री, त्रिपुरमालिनी, त्रिपुरसिद्धा, त्रिपुराम्बा और महात्रिपुरसुन्दरी इस प्रकार वाग्भाव के ही विस्तार हैं। यही नौ नित्या शक्तियाँ ही विद्यावतारक नौ गुरुओं में भी स्फाररूप में पाई जाती हैं। महाबैन्दवस्थानीय भगवती की चिन्मरीचिमय विभव ही चक्र में अवस्थित समग्र विद्याएँ हैं। 'चक्र' भगवती के देशाध्वा का विस्तार या मूर्ति है और मन्त्र भगवती के कालाध्वा का विस्तार है। वास्तव में मन्त्र भी देवी का विग्रह मात्र है। मन्त्रविस्तार की पराकाष्ठा महाबैन्दवस्थानीय भगवती महाषोडशी महात्रिपुरसुन्दरी का मन्त्र है। पञ्चदशी मध्यमा वाक् के रूप में हृदय में रहती है तो पश्यन्ती वाक् के रूप में शाक्त प्रणव के बिन्दु में रहती है और इसी बिन्दु में वाङ्मयप्रपञ्च का विलय होने के कारण बैन्दवस्थान महा अक्षर है इसलिए वह महानित्या के हृदयरूप है। महानित्या के हृदय के भीतर गुहारूपी सप्तदशी विद्या केवल परम योगियों के लिए ही सुलभ है।

भगवती त्रिपुरसुन्दरी के मन्त्र सर्वाम्नायात्मक होने के कारण ऊर्ध्वाम्नायस्वरूप माने जाते हैं और त्रिपुराकुल के समग्र मन्त्र ऊर्ध्वाम्नायस्वरूप माने जाते हैं। ऊर्ध्वाम्नायात्मक मन्त्रों में सृष्टि, स्थिति, संहार और अनाख्या समग्र दशाएँ गौण रूप में रहते हैं। वस्तुतः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मन्त्र सर्वाम्नायात्मक होते हुए भी मन्त्रों की कला के प्राधान्य के आधार पर मन्त्रों का आम्नाय विभाजन होता है। अलिपि और हलपि में निहित चार कलाओं में से, इन दोनों की पहली कला से सृष्टिरूप पूर्वाम्नाय, दूसरी कला से स्थितिरूप दक्षिणाम्नाय, तीसरी कला से संहाररूप पश्चिमाम्नाय और तुर्यकला से अन्तर्लीनस्वरूप उत्तराम्नाय का निर्माण हुआ है। अत: इन आम्नायनायिकाओं में तत्तत् कला का उद्रेक होता है। अनुत्तर रूप में चारों आम्नाय चतुर्बाहु के रूप में उभरे हैं। अनुत्तर व्योमवामेश्वरी का चिन्मय धाम है, जहाँ से सामान्य स्पन्द भी हृदय के रूप में प्रकट होते हैं। यही भगवती श्री का वास्तविक गोलोक है। नित्य लीलाधाम में इसीका प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है। परव्योमरूप मन्त्रगृह से वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी के अंश प्रकट होते हैं, तो सभी मातृकाओं में पाँच महाभूतों की कलाएँ रहती हैं। ये कलाएँ भी मधुमती, मालिनी, परपरा आदि क्रम में अलग अलग तारतम्य से रहने के कारण अत्यन्त गहन हैं।

शक्तिप्रणव को हृदय-गुहा में मन्त्रों के बीजरूप शक्तिप्रणव का लिखना सम्भव है, इसलिए भगवती विद्या का दूसरा नाम हृल्लेखा है। चूँकि मन्त्र के अन्तर्गत व्योम प्रकाश का प्रतिनिधित्व करता है और वह्नि ग्रास का प्रतिनिधित्व करता है, इसलिए यह भगवती के उन्मेष और निमेष स्वभाव को इंगित करता है। 'ई'काररूप शक्ति-हृदय विमर्श का बोधक है और बिन्दु प्रकाश और विमर्श के सामरस्य का बोधक है। मन्त्र का वाग्रूप प्रणव प्रथम आविष्कार है और यही मन्त्रभाव है। वास्तव में प्रकाश और विमर्श के संघट्टस्वरूप परम शिव ही हृदयगह्वर है और श्रुति में इसे ब्रह्म के रूप में समझाया गया है। प्रपञ्च की दृष्टि से यह शून्य है तथा इस स्थिति को शून्यातिशून्य भी कहा जाता है। हृदयरूप धाम में भगवती की ऐश्वर्यातिशयता होने के कारण ज्ञाता, ज्ञान तथा ज्ञेय भाव इसी ऐश्वर्य का उल्लास है। वस्तुत: गह्वर परातीत है तथापि परा, पश्यन्ती और मध्यमा में भी सापेक्ष गह्वरता होने के कारण त्रिविध वाक् को गुहाहित, गह्वरेष्ठ आदि कहा जाता है। परा ही शक्ति का हृदय है और हृद्गुहा न तो किसीका कार्य है और न ही कारण। चूँकि स्वानुभूतिसिद्ध संवित्सापेक्ष समग्र की सिद्धि होता है, इसलिए चिद्रूप परव्योम की सत्ता स्वतः ही स्वीकार किया जाना चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्रिकोणरूप वाग्भव का उल्लास तभी सम्भव है जब ऊर्ध्वबिन्दु परावक्त्र के रूप में और मध्य बिन्दु स्तनद्वय के रूप में सङ्घट्ट होकर नाद और बिन्दु एकाकार हों। त्रिबिन्दुरूप त्रिकोण ही 'अय' अर्थात् गति है और यही मुक्ति है। मध्यम प्राण के रूप में उल्लसित संवित् को आगम में त्रिकोणान्तरवर्ती के रूप में वर्णित है। पराशक्ति का यही स्फार देह में कुलकुण्डलिनी और अकुलकुण्डलिनी के रूप में होता है। हृदयरूप आकाश में स्थित महाषोडशी अकुलधाम में अकुलकुण्डलिनी के रूप में और कुलधाम में कुलकुण्डलिनी के रूप में प्रतिबिम्बित होती है। जैसे सहस्ररश्मि सूर्य अनन्त जलकुण्ड में प्रतिबिम्बित होकर न मलीन होता है, न शीतल होता है, उसी प्रकार शक्तत्रितयरूप अरसङ्घट्ट में प्रतिबिम्बित होकर भगवती महानित्य में कोई दोष उत्पन्न नहीं होता। त्रिबिन्दु ही भगवती की विद्या में तीन कूटों के रूप में प्रकट हुए हैं, इसलिए पिण्ड समग्र रूप से हृदय का रूप है। बिन्दु के अन्तर्गत भानु, भानु के अन्तर्गत शिव, शिव के अन्तर्गत विभिन्न शक्तियाँ और संवित् के अन्तर्गत चिद्रूपा शक्ति हैं। शक्ति के प्रतिबिम्ब में कौटिल्य होने के कारण शक्ति के मूल स्वरूप को 'वक्र' या 'वक्रेशी' भी कहा जाता है। यह वामेश्वरी को इंगित करता है। वक्रेशी कूट के व्योम से उन्मेषात्मक स्पन्द और वह्नि से निमेषात्मक स्पन्द समझा जाता है, इसलिए वामेशी स्वयं स्पन्दात्मिका शक्ति है। इसी बीज में 'स्व' और पर को अवभासन करने की क्षमता होती है और यही विश्व को प्रकाशित करने वाला आत्मस्वरूप है। वियत्कला ही नादरूप में समग्र मन्त्रों की जननी है और हृदय ही मन्त्र का सार है। कर्ता, कर्म, करण आदि समग्र व्यापार में कार्य या कर्तृता की प्रधानता रहती है जो 'कृ' अर्थात् करण का ही व्यापारविशेष है। काल और देश 'कृ' के 'विकृ' हैं। निरपेक्ष सत् की गणना में 'कृ' अथवा 'विकृ' में कोई अन्तर नहीं है। सापेक्ष में कार्यता का क्षय हो जाता है और कर्तृता नित्य रहती है। इसमें भी निरतिशय कर्तृता ही वास्तव में कर्तृता है और यही भगवती का प्रथम स्पन्द है। वक्रेशी का उल्लास त्रिकोणाकार या अर्धचतस्राकार कुण्डलिनी के रूप में होता है और जब प्रत्येक में सृष्टि, स्थिति और संहारदशा उल्लसित होता है तब नवनाद का प्रादुर्भाव होता है और मिथुननवक इसका संकेत देता है। समग्र मन्त्र का यही वागर्थ है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आम्नाय से परम्परा का बोध होता है। खगेन्द्र, कूर्म, मेष और मत्स्येन्द्रनाथ चार युगों के विद्यावतारक गुरुओं को चार आम्नाय के गुरुमुख माने जाते हैं। श्रीविद्या प्रकाशानन्द और विमर्शानन्द क्रम से दीपकनाथ होते हुए प्रसृत हुआ है। इस परम्परा के विद्यावतारक कामदेव, लोपामुद्रा से लेकर आज तक प्रसृत परम्परा में विद्याप्रवेश आम्नाय परम्परा पर आधारित है, इसलिए सम्प्रदाय को समझने के लिए गुरुमुख की आवश्यकता है। जैसे ही शिव की अनुग्रह कला जीव के हृदय में प्रवेश करती है, उसमें जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है और अनुग्राहिका शक्ति बिन्दु से अलग होकर बिन्दु का आधा भाग शिष्य में और बिन्दु का आधा भाग गुरु में प्रवेश करने के कारण शिव की इच्छा या आज्ञा से शुद्ध जीव गुरुभावापन्न और शोधमान जीव शिष्यभावापन्न होता है। जीवोऽहं भाव से शिवोऽहं भाव में प्रवेश या विश्वाकार प्रथा का आश्रय गुरु ही हैं।

गुरुसम्प्रदायलब्ध विद्या से साधक को निश्चित ही विश्वाकारप्रथा होता है। सम्पूर्ण विश्व पञ्चमहाभूतों से व्याप्त है। विद्या में निहित वर्ण भी पञ्चमहाभूतों का संकेत देते हैं। विद्या में अहन्ता का उद्रेक होते ही विद्या की स्थिति अहन्ता में हो जाती है और साधक विद्यादेह बन जाता है। शिव ही गुरु हैं और शिव जीव के हृदय में अहन्ता के रूप में प्रकट होते हैं इसलिए किसी साधारण व्यक्ति को गुरु मानने की कोई आवश्यकता नहीं है यदि वह सहज, सांसिद्धिक, प्राकृतिक आदि बोधयुक्त तथा साधनापूर्ण लक्षणसम्पन्न नहीं है। विद्या की उपासना में दूसरे विकल्प में प्रथा का उद्रेक स्वयं की साधना के उत्कर्ष से होता है। कुछ साधकों ने विधिहीन उपासना से सिद्धि प्राप्त की है, ऐसा सुनकर जो उपलब्ध विधि की उपेक्षा करता है जह विष्टा मे उत्पन्न कृमि के समान है।

मन्त्रों में वर्ण और वर्णनिष्ठ कला होती है। कला और मन्त्रवर्ण में उसी प्रकार भेद नहीं किया जा सकता जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश और सूर्य में भेद नहीं किया जा सकता। कला शक्ति का अंश है और वर्ण शिव का अंश है। सम्पूर्ण संसार में जो भी पदार्थ विद्यमान हैं, उन सभी में कोई न कोई शक्ति अन्तर्निहित है। वह शक्त्यंश भगवती का और शिवांश या पदार्थ भाग परमेश्वर का विग्रह है। शिवांश और शक्त्यंश का प्रयोग सापेक्षतया व्यवहार के लिए किया गया है, वस्तुतः परमार्थ में कोई अन्तर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नहीं है। परमार्थ में स्थित अभेद को लोक में भी गुण और गुणी के अविभाज्य सम्बन्ध से जाना जाता है। जब मन्त्र में निहित शिवभाव और शक्तिभाव अपने कारण में लीन हो जाते हैं, तब भगवती त्रिपुरसुन्दरी का प्रादुर्भाव होता है। भगवती के विद्या में निहित अक्षरों के अवयव ३३, तीन बिन्दु जोडने पर ३६ और यदि सब की समष्टि एक माना जाए तो ३७ भेद होते हैं। पृथ्वी आदि क्रम से क्रमशः पदार्थ व्यापक हैं और ३६ वाँ तत्त्व को भी व्यापन करने वाली भगवती त्रिपुरसुन्दरी की विद्या सर्वात्मना समग्र भावजात या अभाव को भी व्यापन करता है।

महाबिन्दु और नाद के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। मन्त्रनिष्ठ बिन्दु के भाग से शिव या पदार्थभाव को और नाद के भाग से शक्ति या कला भाग को समझना चाहिए। मन्त्रनिष्ठ वर्णों में जब पदार्थ व्याप्य-व्यापकभाव से अनुस्यूत होते हैं, तब परम नाद के रूप में भगवती का उद्बोधन हो जाता है। बिन्दु समग्र का वाचक है और नाद समना की सीमा को भी पार कराकर परा के हृदय में प्रवेश कराता है। व्याप्य-व्यापक भाव में स्थित तत्त्वों को प्रमाता में तारतम्य की दृष्टि से भेद होता है। माया तक के तत्त्वों का आत्मतत्त्व में, माया से सदाशिव तक के तत्त्वों को विद्यातत्त्व में और शक्ति और शिवतत्त्व को शिवतत्त्व में अध्याहार किया जाता है। शुद्ध प्रमाता में मल का परिपाक हो चुका होता है और अशुद्ध में मल पक्वमान अवस्था में होता है। भले ही भोग से मल का परिपाक होता है परन्तु नए कर्म नए भोगोत्पादन करते हैं इसलिए सामान्य जीव का हमेशा लोक में पुनरावृत्ति होती रहती है। सकल नामक जीव में तीनों प्रकार के मल विद्यमान होते हैं, प्रलयाकल में कार्म मल का नाश हो चुका होता है और विज्ञानकल में कार्म और मायीय मल का नाश हो चुका होता है। आणवमल का भी नाश होने के बाद शुद्धविद्या की अवस्था में साधक मन्त्रभाव में उभरता है। यद्यपि प्रमाता में वस्तुतः कोई अन्तर नहीं है, फिर भी संकोच के तारतम्य के कारण प्रमातृभाव में अन्तर माना जाता है। चूँकि इन्द्र और अग्निकुल से प्रादुर्भूत समग्र मन्त्र या देवता नाद और बिन्दु में लीन हो जाते हैं, इसलिए विद्या में निहित नाद और बिन्दु देवताओं के बोधक हैं। सर्वकर्तृत्व, सर्वज्ञत्व, नित्यतृप्तत्व, नित्यत्व, स्वातन्त्र्य और यिनके संकोच में दस अवस्था संकोच से विकास के क्रम नियति से ऊर्ध्वतत्त्व के बोधक हैं। शिव इन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दस अवस्थाओं से ऊपर परम भाव के रूप में हैं। जिस प्रकार सम्पूर्ण पुष्प सूत्रों में ग्रथित होता है, उसी प्रकार तत्त्वों में अधिष्ठित परमेश्वरी शक्ति में मन्त्र विद्यमान हैं। मन्त्रों के साढ़े तीन वलय शुद्धविद्या से निचले प्रस्तार पर पूरी होती है और प्रत्येक वलय में एक एक करोड विद्याएँ ग्रथित हैं। जो मन्त्र शुद्धविद्या से निचले प्रस्तार पर होते हैं, वे शोध्य-शोधकभाव में रहकर शुद्धविद्या की भूमि तक ले जाते हैं। इसके ऊपर साढ़े तीन वलय का मन्त्रप्रस्तार है। समग्र में इस प्रकार महाबैन्दवधाम से सप्तकोटि विद्या का प्रादुर्भाव हुआ है। सम्प्रदाय अथवा आम्नाय के अर्थ को समझने पर मन्त्र से यह अर्थ स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है। इसे मन्त्र का सम्प्रदायार्थ कहा जाता है।

शिव, गुरु और आत्मा में वस्तुतः कोई अन्तर नहीं है। जीव में अनुग्राह्य भाव, शिव में अनुग्रह भाव, गुरु में अनुग्राह्य अनुग्राहक भाव भी तब तक भिन्न रूप में प्रतीत होते हैं जब तक कि वे परमार्थ में एक नहीं हो जाते। इसकी एकत्वबोध करना ही मन्त्र का निगर्भार्थ है।

मन्त्र के कौलिकार्थ में विद्या, देवता के विग्रह और आत्मा की एकता का प्रतिपादन किया जाता है। पार्थिव, जलीय, तैजस, वायवीय और नाभस वर्णों में ल, व, र, य, ह शामिल हैं। पृथ्वी को चतुष्कोण द्वारा, पानी को अर्धचन्द्र द्वारा, प्रकाश को त्रिकोण द्वारा, वायु को छह बिन्दु या षट्कोण द्वारा और आकाश को वृत्त द्वारा दर्शाया जाता है। कुलाकुलचक्र के अनुसार समग्र वर्ण पाँच महाभूतवर्ग में आते हैं और भूतकला का उत्कर्ष हकारादि वर्ण में होता है। महाभूत की सूक्ष्म कलाएँ अ, इ, उ, ऋ, लृ में वायु, अग्नि, भू, जल और आकाश की कलाएँ हैं। यन्त्रप्रस्तार में बाह्यप्रस्तार स्थूल कला का प्रतिनिधित्व करता है और अन्तःप्रस्तार सूक्ष्म कला का प्रतिनिधित्व करता है। यह वैखरीचक्र तक लागू होता है और इसको पूर्वाम्नाय में रखा जाता है। मध्यमा वाक् नादमय है, इसलिए स्थितिद्योतक दक्षिणाम्नाय के प्रस्तार नवनाद या नाद के एक विशिष्ट पहलू को इंगित करता है। पश्चिमाम्नायात्मक संहारचक्र पश्यन्ती दशा को इंगित करता है, इसलिए वामा आदि और इच्छा आदि को ऊर्ध्व और अधःत्रिकोण द्वारा दर्शाया जाता है। जहाँ वामा आदि और इच्छा आदि के बीच समान सञ्चार होता है, वहाँ षट्कोण बनता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्रिशूल भी इच्छा आदि तीन शक्तियों का प्रतीक है, लेकिन यामलभाव के साथ भैरवत्रितय की भी उपासना त्रिशूल में की जाती है। परात्मक अनाख्य चक्र उत्तराम्नाय का द्योतक बिन्दु है। श्रीचक्र में वर्णविन्यास के क्रम में पहले वर्ण का फिर नाद का बाहरी स्थूल क्रम से विन्यास करना चाहिए और फिर शान्ता आदि कला का अवकाश होता है। श्रीचक्र सर्वाम्नायात्मक है, इसलिए इससे सभी मन्त्रों और यन्त्रों का उद्धार होता है। चूँकि कमल को खिलने के लिए झील की आवश्यकता होती है, इसलिए कमल पानी का प्रतीक है। इस प्रकार यन्त्ररूपी देवीविग्रह का मन्त्ररूपी देवीविग्रह के साथ एकाकारता होती है।

मूर्ति में मौजूद हथियार पश्यन्ती की कला को दर्शाते हैं। जैसे; मूलविग्रह की पाश से इच्छा, अंकुश से ज्ञान, धनुष और बाण से क्रिया को दर्शाते हैं। भूत, इन्द्रिय, प्राण और सूक्ष्म तत्त्व का यथास्थान तत्त्वक्रम के अनुसार यन्त्र में जिस प्रकार विनियोजन होता है, उसी प्रकार शरीर में उनका विनियोजन होता है। देवविग्रह यन्त्रमय है और यन्त्रमयता 'देव' का आविष्कारस्वरूप सम्पूर्ण जीव है। साधक के अनुसन्धान करते ही यन्त्रमय और देवमय स्वतः हो जाता है। चूँकि श्रीयन्त्र सम्पूर्ण मातृका का मूल है, इसलिए इससे सभी देवताओं के विग्रहों का भी उद्धार होता है। चूँकि आवरण देवियाँ एक सौ आठ संख्या में और परा आदि देवियों तीन संख्या में अवतरित होती हैं, इसलिए चार आम्नाय के अन्य विग्रह यथास्वरूप देवियों की युग्मता, संघट्ट आदि अवस्था के कारण बनते हैं। इससे देवी विग्रह का गणेश स्वरूप प्रकट होता है। सोम, सूर्य और अग्निरूप धाम, इच्छा आदि त्रिशक्ति और गुणत्रय का संकेत 'ग्रह' से होता है। भूत, इन्द्रिय, अर्थ, करण, प्रकृति, पुरुष सभी नक्षत्र से सूचित होते हैं। डाकिनी, राकिणी, लाकिनी, काकिनी, साकिनी और हाकिनी योगिनियाँ चर्म, रक्त, मांस, मेद, अस्थि धातु के रूप में भगवती के ही विग्रहरूप हैं। शुक्रधातुकी याकिनी और ओज़ोरूपिणी साकिनी भी अष्टयोगिनी, अष्टमातृका के बोधक हैं, क्योंकि इन योगिनियों से ही मातृकाओं का उद्बोधन हुआ है। राशि से वायु, जीवात्मा और परमात्मा का द्योतन होता है। गणेश आदि की विद्या में भी विनियोग होता है विद्यानिष्ठ समग्र कलाएँ गणेश आदि षट्क को दर्शाती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'रहस्' का तात्पर्य 'एकान्त' से है। एकान्त ही गह्वर है और इसी हृदयगह्वर में भगवती एकान्तवासिनी निवास करती हैं। त्रिकोणाकार गुहा के अन्तराल में कुण्डलिनी स्वरूप की चिन्मात्ररूप परातीत भगवती ही समग्र विद्या का लक्ष्यार्थ है। पिण्डकुण्डलिनी के रूप में यही वाच्यार्थ के रूप में प्रकट होती है। त्रिकोणरूपी गह्वर वाग्भवाकार या त्रिबिन्दुमय हृल्लेखा में नृत्य करने वाला शाक्त स्वरवर्णमय है। सद्योजात आदि पञ्चवक्त्र में सन्निहित ३८ कला और पचास मातृकास्वरूप विद्याजननी कुण्डलिनी आकार में परिणत हो गई है। त्रिपुराविद्या में वह्नि, सूर्य और सोमरूप धाम की समग्र कलाएँ निहित होने के कारण तीनों मण्डल का भेदन होता है। विद्युत् स्वरूप वाली शक्ति को स्वयं के रूप में बोध करना मन्त्र का रहस्यार्थ है।

कौलिकार्थ में कौलसम्मत अर्थ का प्रतिपादन किया जाता है और रहस्यार्थ में तन्त्रसम्मत अर्थ का प्रतिपादन किया जाता है। कौल विश्वमय आत्मतत्त्व का प्रतिपादन करते हैं, इसलिए कौलिकार्थ में भगवती की विश्वमयता का प्रतिपादन किया जाता है। तान्त्रिक ३६ तत्त्वों से उत्तीर्ण परम शिव को विश्वोत्तीर्ण रूप में मानते हैं। ३६ तत्त्वों को भेदन करने के लिए इसी विश्वोत्तीर्णता को लक्षित किया गया है।

त्रिकदर्शन और महार्थ में कोई अन्तर नहीं है। इसमें विश्वत्तीर्ण-विश्वमय परिपूर्ण भैरवात्मकता का प्रतिपादन किया गया है। कुछ लोग इसे ३८वाँ तत्त्व मानते हैं, परन्तु यह 'तत्' ही है, 'तत्' का भाव नहीं है। यहाँ न काल है, न कला है, न भावना है, न अभाव ही है। इस चिन्मात्रधाम में न तो तत्त्व हैं और न देवता। हालाँकि उसे ब्रह्म, निर्वाण, शून्य, मोक्ष, शिव, निरञ्जन, निराकार आदि नाम दिया गया है, लेकिन उस धाम के ऐसे कोई नाम नहीं हैं। यह तत्त्वातीत है, वाणी, मन और सम्पूर्ण से ऊपर है। विकल्प, कला और द्वन्द्व से रहित यह परम धाम ही महार्थ है। यह वह सर्वोच्च स्थिति है जहाँ पहुँचकर कोई पुनरावृत्ति नहीं होती। यह वासुदेव का धाम है, जो स्वयं प्रकाशमान है जिसे सूर्य, चन्द्रमा, तारे आदि द्वारा प्रकाशित नहीं किया जा सकता है। प्रणव की बारह कलाएँ या सोलह कलाएँ समाप्त हो जाने पर उन्मना धाम के ऊपर, उन्मनातीत परात्पर धाम, भगवती महात्रिपुरसुन्दरी का अवस्थान है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यह त्रिपुरा के हृदय का गह्वर भी है और यह अकथनीय है, अप्रकाश्य है। साधक को भावार्थ से इसका अर्थ समझने का प्रयास करना चाहिए, सम्पूर्ण रूप से तो वही पराम्बा बोध कर सकती है।

यन्त्रचर्चा

शक्ति और शक्तिमान् में कोई अन्तर नहीं है। दिव्य विग्रह में चिन्मात्र प्रमाता है और चिन्मात्र प्रमेय है, अत: जो भी द्वैत है, वह सब कल्पित है और परमार्थतः अद्वैत है, जो शून्य आकार के बिन्दु से सूचित होता है। सृष्टि शक्ति का उल्लास है और आकाश अवकाश प्रदान करने वाला अधिष्ठान है। आकाश ही सोम के रूप में जगदाकार हो जाता है और प्रमाता ही वह्निरूप में प्रपञ्चात्मकता प्राप्त कर लेता है। श्रीचक्र अग्निषोमात्मक भगवती का विग्रह है और यही हृदय है।

प्रकाश ही चेतना का स्वभाव है। प्रकाशन या विमर्शन ही प्रकाशनिष्ठ शक्ति है। संसार प्रकट होने से पहले बीज के रूप में प्रकाश में अन्तर्लीन होता है। शिव या प्रकाश की किरणें विमर्श या निरन्तर आकृति में स्फुरित होने वाली शक्ति में उसी प्रकार प्रतिबिम्बित होती है जैसे सूर्य दर्पण में प्रतिबिम्बित होता है। इस खेल में शिव शक्ति को दर्पण के रूप में उपयोग करके अपने स्वरूप का अवलोकन करते हैं। चिति के संकुचित स्वभाव चित्त में यह शक्तिफलित प्रकाश उसी प्रकार प्रतिबिम्बित होता है जैसे भित्ति में सूर्य प्रतिबिम्बित होता है। चूँकि इसमें प्रकाश और विमर्श दोनों का अंश है इसलिए चित्त में 'अहम्' भाव उत्पन्न होता है। इसी अहंकार में सारे प्रपञ्च बीज रूप में विद्यमान है। वाक् और अर्थ के रूप में रक्त और शुक्लबिन्दु रूप विमर्श और प्रकाश अनुस्यूत हैं और इसी से सम्पूर्ण 'द्वैत' का उदय हुआ है। वाक् और अर्थरूप यह शिवशक्ति स्वभाव ही सृष्टि, स्थिति और संहार रूप तीनों कूट में मन्त्रशरीर के रूप में व्यक्त होता है। परात्परस्वरूपिणी महात्रिपुरसुन्दरी की विश्वाकर प्रथा ही श्रीचक्र का आविर्भाव है।

प्रपञ्च से उत्तीर्ण भगवती के स्वरूप में श्रीयन्त्र भगवती का पीठ है तथा यन्त्र का मध्य बिन्दु भगवती की श्रीपादुका है। कौल परम्परा में श्रीचक्र भगवती का विग्रह है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आत्मास्वरूप बिन्दु, चित्तस्वरूप त्रिकोण, पुर्यष्टकस्वरूप अष्टार, दस इन्द्रियस्वरूप युग्मदशार, प्रकृति, महत् और अहंकारस्वरूप अष्टदल, इन्द्रियगण, भूत और मनस्वरूप षोडशदल और मुद्रादशक भूपुर के रूप में भगवती के विग्रहस्वरूप श्रीचक्र के रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

यह कहने में कोई आपत्ति नहीं है कि यन्त्र उनकी पीठ है और भगवती यन्त्रविग्रह है क्योंकि भगवती विश्वोत्तीर्ण हैं। पूर्णतः स्वतन्त्र चितिशक्ति स्वेच्छा मात्र से विश्वमय और विश्वोत्तीर्ण दोनों होती है। वह स्वेच्छा से जगत् का उल्लास तथा अन्तर्लय दोनों करती है।

जिस प्रकार जीव शरीर में विद्यमान है और विभिन्न नामप्रपञ्चों में अनुगत है, उसी प्रकार भगवती देवविग्रह में यन्त्र में आविष्ट हो कर समष्टिरूप में अनुगत है। शरीर में जाग्रत् आदि अवस्था की तरह, ये भावनाएँ देवीविग्रह में भी उत्पन्न होती हैं और सर्वात्मतया परात्पराम्बा का ही परामर्श होता हैं। चूँकि देवीविग्रह का चिन्मात्र स्वभाव को ही मुख्य माना जाता है, इसलिए श्रीयन्त्र में बैन्दवचक्र की प्रधानता है। श्रीयन्त्र का विस्तार बिन्दु से और नियमन भूपुर से हुआ है, इसलिए बिन्दु उद्यमस्वरूप भैरव है और भूपुर मातृकाचक्र है। मातृकाचक्र का 'ह'कार में समाहार होता है, इसलिए बिन्दु से भूपुर तक का विस्तार केवल अहमाकार पूर्ण परामर्शन मात्र है।

बैन्दवचक्र आनन्दधाम है। यद्यपि निजानन्द आदि भूपुर आदि चक्रों में प्रकट होते हैं तथापि बिन्दु चिदानन्द रूप हैं और चिन्मात्रता भगवती का विग्रह हैं, इसलिए अनुभूति के अंश में आनन्द का उद्रेक होता है और इसलिए इस का नाम आनन्दमय है। यद्यपि निजानन्द आदि स्थानों में प्रयुक्त 'मयट्' विकारार्थक है तथापि बिन्दुचक्र चिन्मयदेह होने से यह 'स्वभाव' के अर्थ में है परन्तु 'प्रधानता' के अर्थ में नहीं क्योंकि यदि आनन्द का प्राचुर्य मानी जाए तो आनन्द का लेस उपस्थित होता है ओर वस्तुतः वह अभिप्रेत नहीं है। अ' या शिवरूप बिन्दु से त्रिकोणचक्र का उदय अक्रम से होता है। श्रीयन्त्र में बिन्दु को मध्यधाम में रखकर उस को त्रिकोण से आवृत किया जाता है। अम्बिका को अकार की वामा आदि कला का तुर्यस्वरूप माना जाता है और 'अ' कहने और 'अकार की समग्र कला' कहने में जैसे कोई अन्तर नहीं है, वैसे ही बिन्दु और त्रिकोण में कोई अन्तर नहीं है। त्रिकोणचक्र की मुख्य स्वभाव यह है कि वह जिस बिन्दु की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ओर उन्मुख है वही मुख्य बिन्दु है और उससे ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेयभाव की प्रधानता उदित होता है।

त्रिकोण 'द्वय' का निदर्शन करता है। सम्पूर्ण त्रिकोण द्वय स्वभाव की व्याख्या मात्र है। जहाँ ज्ञान और ज्ञेय है, वहाँ ज्ञान का अंश या सम्बन्ध उपस्थित होता है और ज्ञानभाव अन्य दो भावों की तुलना में कालकल्पित है, और यह ज्ञेयांश में ज्ञेय की प्राधान्य में उपस्थित होता है, और ज्ञातृ अंश में ज्ञातारूप सहज स्वभाव में ही लीन होकर ज्ञातृभाव की प्रधानता होती है।

त्रिकोणरूप अन्तःकरण पुर्यष्टकस्वभाव अष्टार में परिणत हो जाता है और इन दोनों के समाहार को नवयोनिचक्र के रूप में लिया जाता है। वास्तव में त्रिकोण और बिन्दुनिहित अकारकला का यन्त्र सीमास्वरूप या मातृकाचक्र द्वारा नियन्त्रित होता है और शाक्त कला का भी उद्रेक त्रिकोण के रूप में होता है। त्रिकोण में बिन्दु और भाव निगूहित होते हैं, दलचक्र में निगूहिततर होते हैं और यह भूपुर में निगूहिततम होते हैं। त्रिकोणचक्र जाग्रत् आदि तीनों अवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करता है और बिन्दु तुर्यस्वभाव का प्रतिनिधित्व करता है और त्रिकोणान्तरवर्तिनी भगवती की व्याख्या त्रिपुरा शब्द से की जाती है। नवयोनिचक्र में नौ आवरण में स्थित सारे देवता वासनात्मक रूप में रहते हैं और प्रत्येक में सृष्टिदशा गुणा होकर नौ प्रकार से नवयोनिचक्र में सन्निविष्ट है। अष्टारचक्र के आठ कोण कामेश्वर और कामेश्वरी के आयुध के रूप में परापर विग्रह में सन्निहित हैं।

यद्यपि त्रिकोणात्मकता शाक्तोल्लास है परन्तु यह शिवकला में अनुस्यूत होने के कारण स्वरगण, जो 'अ' का ही विस्तार है और 'अ' की अनुस्यूतता भी स्फुट है, इस चक्र में उदित हुए हैं। अन्तःस्थ और ऊष्मा के समायोजनस्वरूप अष्टारचक्र में शक्ति के उद्रेक के बाद योनिगण का उदय होता है और जीवस्वरूप मकार त्रिकोणात्मकता में अनुस्यूत होता है। दोनों दशार के मध्य मे उपलब्ध चतुष्कोण भकार आदि चार वर्ण के हैं और दशारयुग्म क आदि बीस वर्ण के बोधक हैं। 'क्ष' शिव और शक्ति का समाहारस्वरूप कूट होने के कारण बिन्दु में अनुस्यूत है। बिन्दु और विसर्ग दलचक्र में तथा शेषा स्वरगण चतुर्दशार में अनुस्यूत होते हैं। ककार आदि व्यञ्जनों में पृथिवी आदि तत्त्व का प्राधान्य माना जाता है और बिन्दु पुरुषरूप मकार। वस्तुतः दशारद्वय वस्तु और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वासनामय होने के कारण शिवप्रधान और शक्तिप्रधान माना जाता है। रौद्री कला का विस्फुरण चतुर्दशार में हुआ है।

इन शक्ति और तत्त्वों को जगत् के रूप में परिवर्तित होने के लिए शिव तत्त्व में क्षोभ होना आवश्यक है। उसी क्षोभकारिणी अनंगा या कामकलात्मिका शक्ति का उल्लास अष्टदल के रूप में चक्राकार बनता है। वामाशक्ति ही जगत् के उल्लसन में विशेष रूप से सक्रिय होने के कारण दलचक्रों में वामा की विशेष प्रधानता है। जगत् को वमन करने वाली सारी कलाएँ जब क्रियाशील हो जाती हैं, तो दिशा में अवस्थित अध्वत्रय के पूरण के लिए आशापूरण हो जाता है। चूँकि भूपुर मातृकाओं के सीमित ज्ञान के लिए चक्राकार में स्थित है, इसलिए यहाँ सांसारिक ज्ञान और राग-द्वेष-मोहरूप त्रिलोक रञ्जक मिलकर त्रैलोक्यमोहन कर रहे हैं। मुग्धावस्था संसार की जड़ता की अधिकतम सम्भावना है। चैतन्य का पूर्ण अभाव 'ठोस' पदार्थ में भी सम्भव नहीं है, क्योंकि समस्त विश्व विस्तार का कारण आद्यस्पन्दरूप चैतन्य है और अन्य समग्र उसी के उपादेय हैं।

शरीर में चक्र का तीन रूप में अवस्थान है- सकल रूप में, सकलनिष्कल रूप में और निष्कल रूप में। यन्त्र का भूपुर से लेकर बिन्दु तक का स्फुरण 'सकल' रूप है। इसमें चक्र के नौ आवरण हैं। इसके बाद प्रत्येक पिण्ड या बीजमन्त्र में अर्धचन्द्र, निरोधिका, नाद, नादान्त, शक्ति, व्यापिनी, समना, उन्मना और मनोन्मनी अवस्थाएँ आती हैं। श्रीचक्र के इन गुह्य आवरणों में मूलविद्या, सिंहासनविद्या आदि की स्थिति है। व्यापिनी अन्तर्गत समना भूमि से निचले प्रस्तार पर व्योमरूपा, अनन्ता, अनाथा और अनाश्रिता कलाएँ स्थित हैं। प्रणवाक्षर में बाहरी तीन मातृकारूप और बिन्दु आदि त्रयोदश रूप संयोग नित्याओं के उदय और अस्त भूमि हैं और यही क्रीड़ास्थली है। मातृकाचक्र के उदयकाल से प्राप्त दिव्यकाल लोकसिद्ध काल का जनक है तथा उन्मनाभूमि इस काल का लयस्थान है। यह स्थान भगवती की गुफा है और इसे महाबैन्दवचक्र कहा जाता है। अक्षर का उच्चारण काल एक मात्रा का होता है और क्रमशः द्विविभक्त क्षण अन्य कलाओं का उदय काल होते हैं। अतः बिन्दुद्वय अर्धमात्रा क्षणों में होता है और समानोदय १ ÷ २५६ क्षणों में होता है। चूँकि उन्मना काल की लय अवस्था है, इसलिए इसमें काल स्पन्दित नहीं होता है। मनोन्मना या उन्मनातीत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भूमिका महाषोडशी महानित्या भूमि है और इसमें मानसराज्य का स्वरूप विश्वमयता का उल्लास और अलखभूमि का सहज उदय होता है। इस परिपूर्ण भैरव अवस्था में महायोगी रमण करते हैं।

अपर चक्र ही जब देशाकार में सघन होते हैं तब बिन्दुचक्र ओड्याण के रूप में और त्रिकोण कामरूप, पूर्णगिरि और जालन्धर पीठ के रूप में अवतरित होता है। चूँकि पीठ यन्त्र का ही विग्रह है, इसलिए उन स्थानों पर विधिनिषेध का पालन करने से यथास्थान शुभ का उदय होता है। चूँकि बिन्दु से सूक्ष्म कोई धाम नहीं है और लोक में उसका अवतरण नहीं है, इसलिए बैन्दवी भूमि से ऊपर के साधकों के लिए केवल इच्छाशक्ति का उल्लास ही विधि या निषेध है और उन साधकों को लोक में अवतरित शास्त्र या शास्ता नियमन नहीं कर सकता है। जिस प्रकार वामा आदि कला का अवतार ही समग्र मातृका है, उसी प्रकार चतुष्पीठ कला ही समग्र पीठ है। चार पीठ पिण्ड, पद, रूप और रूपातीत स्वरूप के हैं। 'पिण्ड' कुण्डलिनी शक्ति को, पद हानदानसमर्थ हंस को, रूप बिन्दु को और रूपातीत चिन्मय स्वभाव को लक्षित करता है। यन्त्र में वे बिन्दुओं और त्रिकोणों का रूप लेते हैं और भूपुर तक विस्तारित होते हैं। शरीर में मूलाधार को पिण्डपद द्वारा, हृदय को हंस द्वारा, आज्ञास्थान को रूप द्वारा और ब्रह्मरन्ध्र को रूपातीत द्वारा लक्षित किये जाने के कारण देह के अन्य अवयव इन्हीं स्थानों के शाखारूप हैं। इन्हीं स्थानों पर स्वयम्भू, बाण, इतर और पर लिंग स्थित हैं और जब पचास शून्य मातृकाक्षर के रूप में अवतरित होते हैं, सारे ब्रह्माण्ड लिंगाकार में स्वयं उत्पन्न हो जाते हैं। चूँकि लिंग परम ज्योति स्वरूप है, इसलिए दिव्य और काल से भी सूक्ष्म रूप में ये विद्यमान हैं। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुर्य ये चार अवस्थाएँ भी इन पिण्ड आदि चार अवस्थाओं के अपर नाम हैं। अन्यथाग्रहण का बाहरी स्वरूप जाग्रत, आन्तरिकता स्वप्न, ग्रहण सुषुप्ति तथा चिदावेश तुर्य है। जब इन स्थितियाँ प्रत्येक में गुणित हो जाती हैं, तो अनन्त स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। आत्मा का वास्तविक स्वरूप इन चार अवस्थाओं से परे जाकर चौथे साक्षी के रूप में भासित है। यह प्रकटन या भासन भी व्यष्टिरूप में या समष्टिरूप में भिन्न-भिन्न होता है। नित्याएँ समष्टिरूप में भासित होती हैं। जीव का भासन व्यष्टिरूप में होता है और परम शिव का भासन उभयस्वरूप में होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जिस प्रकार भगवती की इच्छा जगत् के रूप में स्फुरित हुआ है, उसी प्रकार क्रियाशक्ति भी मुद्रा के रूप में स्फुरित हुआ है। मुद्रारूप क्रियाशक्ति भैरवस्वरूप उद्यम में समाविष्ट जीव में निरञ्जन स्वभाव में मोदन और एकरसीभाव प्रदान करती है, जबकि जो भैरवस्वरूप उद्यम में आविष्ट नहीं हुआ है उस जीव में वह अज्ञानमग्न रहकर मातृका की सहायता से संसार में नाम के रूप में प्रकट होती है और मोदन तथा रूपात्मक आभासन से मल का द्रावण करती है। समग्र मुद्रा कला की स्फुरित अवस्था है। 'अ' और 'ह' के एकात्मक सर्वसामरस्यस्वरूप अवस्थाविशेष मुद्रा के रूप में उल्लसित न हो कर अन्य कलाओं का विस्तार होने पर श्रीविद्या की दस मुद्राएँ प्रकट होती हैं। वामा आदि के उत्कर्ष और अपकर्ष में मुद्राएँ प्रकट होती हैं और वे तत्तत् कलाओं के आवरण को मुद्रित करते हैं।

संसार के उन्मेषदशा में शिव और शक्ति के सामरस्यस्वरूप परव्योम में सूक्ष्मरूप में विश्व का आद्यस्फुरण होता है। सम्पूर्ण प्रकाश इसी दशा में अनुप्राणित होता है प्रकाशधर्मता प्राप्त करता है। जो मुद्रा प्रकाश का स्रोत है उसे शास्त्रों में 'योनिमुद्रा' कहा गया है। इसे हृदय भी कहा जाता है क्योंकि समग्र प्रकाशन के कारणरूप मूल प्रकाश बोधमय है। जिस प्रकार अरणिसंघट्ट से अग्नि उत्पन्न होता है उसी प्रकार बिन्दु के अन्तराल में ही धर्म और अधर्म के संघट्ट से 'वित्ति' या 'बोध' का जो उदय होता है, उसी निर्विकल्प बोधमात्र में विकल्प का उपसंहार होता है और शून्याकारता को ग्रहण करके विकल्प की उत्पत्ति हो जाने के कारण इस मुद्रा को खेचरी कहा जाता है। वामेश्वरी की मुद्राकारता योनिरूप में प्रकट होती है तथा उल्लसन की प्रथम भूमिरूप 'खेचरीशक्ति' 'खेचरीमुद्रा' के रूप में प्रकट होती है। इस अनाख्यभूमि की बाहरी स्पन्दन ही गोचरी आदि शक्ति हैं और जब ये शक्तियाँ मुद्रा के स्वरूप को प्राप्त करती हैं, तो वामा आदि शक्ति की प्रधानता ही आठ प्रकार की मुद्रा के रूप में उल्लसित हो जाती है। जिस प्रकार अष्टमातृका ने सम्पूर्ण वाङ्मय को मान, तरण और कायन से व्याप्त किया है, उसी प्रकार मुद्राशक्ति ने संविन्मय समग्र एकरूप भावसमूह को यथा यथास्थान पर मुद्रित किया है। यह मुद्रा शाम्भवोल्लास में अभेदस्वरूप में, शाक्तोल्लास में चिन्मयता के लिए

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मनन के रूप में और आणवोल्लास में हस्तसंयोजन आदि के रूप में प्रकट होती है। दाहिने हाथ की अंगुलियों को शक्तिस्वरूप और बाएँ हाथ की अंगुलियों को शिवस्वरूप मानकर 'अ' और 'ह' की चार चार कलाएँ चार चार अंगुलियों में व्यक्त हो कर आणवमुद्रा के रूप में प्रकट हो जाते हैं ।

चक्र तथा चक्रेश्वरी की एकरूपता का अन्वेषण ही चक्रपूजा है। भगवती चक्र में बिन्दु आदि क्रम से, परा में हृदय आदि क्रम से, मातृका में परा आदि क्रम से और स्थान में तुर्य आदि क्रम से प्रकट होती हैं। इसके अन्वेषण से सर्वतत्त्वात्मकता और सर्वानुभूतिरूपता सहज ही प्रकट हो जात है। इसी परामर्श से सहज स्वरूप ज्ञानौघ का उदय उदय सम्भव है।

क्रियारूप जाग्रत्, आन्तरिक विकल्प की अनुसन्धानदशारूप स्वप्न, तत्त्ववेद्यतारूप सुषुप्ति चक्र में त्रिकोणाकार बन जाते हैं तथा चिन्मयानुसन्धानदशा तुर्य बिन्दुरूप में परिणत हो जाती है। स्पर्श वर्ण में जाग्रत् का, स्वरवर्ण में स्वप्न का, अन्तःस्थ में सुषुप्ति का और ऊष्मा में तुर्यदशा का अनुसन्धान किया जाता है। वर्णों में स्पृष्टता और विवृतता संकोच और उल्लास के कारण हुआ है। स्थानों मे भी वस्तुतः जाग्रत् और सुषुप्तिरूप द्विविधता है। जब क्रियामय ये रूप ज्ञान के रूप में उदित होते हैं तो स्वतः ही स्वप्न और सुषुप्ति में बदल जाते हैं। तुर्य वस्तुतः धाम है और यही शिवपद या शिवगह्वर है जो बिन्दु द्वारा लक्षित है। जब इसमें ईक्षण होता है तो अधिक बनने की क्रियारूप विसर्ग का उल्लास होता है। विमर्शन ही चैतन्य का धर्म है और ईश्वर इससे सदैव अभेद रूप से रहता है। चूँकि परमार्थ में धर्मधर्मी भाव भी कल्पना मात्र है, इसलिए प्रकाशन को विमर्श का धर्म भी कहा जा सकता है। वस्तुत: दिशारूप दक्षिणमार्ग का ज्ञानरूप वाममार्ग में और वाममार्ग का ज्ञान भी चिन्मात्र अनलधाम में प्रवेश करने के कारण आम्नाय भी इसी के आधार पर उल्लसित होते हैं। जिस प्रकार भेद अवस्था में स्थानों का उदय और अस्त होता है, उसी प्रकार अभेद अवस्था में भी स्थानों का उदय और अस्त होता है। पशुदशा में सुषुप्ति चन्द्रधाम, जाग्रत् सूर्यधाम और स्वप्न वह्निधाम के रूप में तथा शिवात्मकता में समग्र चिदग्नि रूप में प्रकट होते हैं। जब शक्ति को धर्म माना जाता है तब बिन्दुस्वभाव शिव श्रीकण्ठ के रूप में और वैसर्गिकी कला

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वामेश्वरी आदि क्रम में जब परिणत होती है तब शक्तिचक्र के रूप में यन्त्रराज में उल्लसित होते हैं। स्पन्दन भी क्रिया है और क्रिया चित् की जड़ता में प्रवेश है। परमतत्व में स्पन्दन केवल अपने स्वरूप में स्थिति है और यह विकल्प का हान है। इसमें स्पन्द और अस्पन्द का एक साथ बोध परम तत्त्व के कालातीत स्वभाव के कारण सम्भव है।

वर्णों में स्थानकल्पना के समान प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय की भी किया जाता है। अकार द्वारा समझे जाने वाले बिन्दु और विसर्ग प्रमाता का स्वभाव है अन्तःकरण के प्रसरणस्वरूप स्वप्नप्रमाता का विषयोल्लास पाँच लघु स्वरों द्वारा व्यक्त किया जाता है, बाह्य इन्द्रिय के प्रसरणस्वरूप जाग्रत् प्रमाता का विषयोल्लास पाँच दीर्घ स्वरों द्वारा व्यक्त किया जाता है, और अन्तः तथा बहिःप्रसरण के उभयात्मक प्रमाणदशा का विषयोल्लास सन्ध्यक्षर द्वारा व्यक्त किया जाता है। इसमें भी लघु स्वरों के अधिष्ठाता बिन्दु दीर्घ स्वरों के अधिष्ठाता बिन्दु माना जाता है। विसर्ग सोरह कला से युक्त है और इसमें बिन्दु का लोप नहीं हुआ है। इस प्रकार प्रकाशन और विमर्शन समयप्रपञ्च तथा उत्तीर्ण स्वभाव है।

कार्यरूप जगत् का बीज विमर्श कारणरूप जगत् का भी बीज है। परव्योम का विमर्शरूप धर्म नित्य संलग्न रहने के कारण व्योमात्मा का बोध भी वहाँ शाश्वत है। परव्योम का जडस्वरूपता लाभ विकास है और वह विमर्शावेश और मेयांश का चिदावेश प्रकाशात्मकता है। 'अहं' प्रकाशात्मकता है और इसमें सम्पूर्ण प्रपञ्च एकरस होते हैं। गह्वर में एकरसता भी लय हो चुकी होती है, इसलिए यह वागतीत और कल्पनातीत है। यह त्रिपुरा ही है जो अहं-इदम् और द्वैतमय शरीर धारण करके बाहर उल्लसित होती हैं। कामेश्वरी, वज्रेश्वरी और भगमालिनी के परा, परापरा और अपरास्वरूप मूर्तियाँ हैं।

स्वप्न अवस्था मनोमूलक होती है और इसमें निहित ब्रह्माण्ड का मूल पिण्डाण्ड है। यह प्रतीति मायाकल्पित है। सम्पूर्ण अध्वा माया की भित्ति पर खडा है। 'अध्वा' नाम इसलिए दिया गया है कि शिव स्वयं जीव भाव में रहकर विभिन्न जाग्रत् आदि स्थानों में भ्रमण करते हैं। मन से कल्पित भाव में जडविश्रान्ति स्वरूप सुषुप्ति और अजडविश्रान्ति स्वरूप स्वप्न है। तुर्यदशा का अनुभव जाग्रत्

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अवस्था में होता है लेकिन उस अवस्था में प्रपञ्च पूरी तरह से समाप्त हो जाता है, इसलिए इसे निवृत्ति-जाग्रत् भी कहा जाता है। भले ही विद्येश्वर तुर्यदशा में रहते हैं, लेकिन परम शिवात्मक तुर्यस्थान की तरह वहाँ भेदज्ञान पूरी तरह से उपशमन नहीं होता है। स्थानों की मध्यदशा में भी वृत्ति प्रवाहित हो सकती हैं, इसलिए अवान्तर स्थान असंख्य हैं। पिण्ड, पद, रूप और रूपातीत स्थान के भेद हैं और तत्तत् स्थान में चैतन्य का आवेश होने से ब्रह्माण्ड, प्रकृत्यण्ड, मायाण्ड और शक्त्यण्ड चिन्मय रूप में प्रकट होते हैं। चतुर्भुजा भगवती पञ्चबाणस्वरूप जाग्रत्, परशुरूप स्वप्न, चापरूप सुषुप्ति तथा अंकुशरूप तुर्य स्थान को अस्त्र के रूप में धारण करती हैं। इन अस्त्रों में वशीकरण, भेदाभेदरूप भ्रान्ति, मोह, उद्बोधनधर्म रहते हैं। भगवती को 'क्ष्मात्मा' भी कहा जाता है क्योंकि वह बिन्दु और विसर्गरूप उभयारणिसङ्घट्ट स्वभाव की हैं। मितप्रमातृता में उदित भेदमय प्रमातृ, प्रमाण और प्रमेयगत त्रिस्वरूपता नवयोनि के रूप में चक्रराज में प्रकट होते हैं। चूँकि श्रीचक्र भी क्ष्मात्मविग्रह है, इसलिए इसमें रश्मिचक्र और बिम्बचक्र दोनों का समाहार है।

मन्त्रों की योनि मातृका है। चूँकि श्रीचक्र मातृकाचक्र का ही रूप है इसलिए इसके अभ्यास से मातृकोदय होता है। मन्त्रोद्धार तथा मन्त्रचैतन्य योनिगह्वर से उद्धार होने के साथ ही समग्र मन्त्र का स्वतः ही उद्धार होता है और यही मन्त्रवीर्य है। मन्त्रनिष्ठ विशिष्ट शक्ति का अवयवभूत मातृकानिष्ठ रश्मियाँ ही यन्त्रराज में पंक्तिबद्ध होकर रहे हैं। जिस प्रकार से वर्णों का समायोजन किया जाता है, उसी क्रम में शेष अध्वाओं का भी समायोजन किया जाता है। वियच्चक्र इसका नामान्तर है। गह्वरमालिनीस्वरूपा भगवती पराभट्टारिका चिदाकाश में सतत नृत्य करने वाली पराम्बा का ही रूप है। जिस तरह मातृका से मन्त्रों का उद्धार होता है उसी तरह अन्य समग्र चक्र नवयोनि रूप गह्वर से निकलते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पूजाचर्चा

परा, परापरा और अपराक्रम के माध्यम से भगवती ही पूजा में अवतरित होती हैं और बिन्दु और विसर्ग के संघट्टदशा के रूप में उभरती हैं। अपने स्वरूप का अवबोधन या चिदावेशरूप परापूजा में पूज्य का उत्कर्ष होता है और चक्रार्चारूप अपराक्रम में पूजक का। जब तक अहम्भाव विलीन नहीं होती, जब तक आत्म-समर्पणरूप प्रकाशमात्रता प्रथित नहीं होती तब तक पूजा सम्भव नहीं है। परापरा पूजा में ज्ञानमय उपासना की जाती है और यही गुरुपरम्परा का रहस्य है।

परापूजा में समग्र स्थिति तन्मय होती है। आन्तरिक अथवा बाह्य करण भैरवी के रश्मजिाल के रूप में जाना जाता है। वहाँ केवल अद्वयप्रथा ही होती है। पूजा केवल परा है, अन्य तो केवल द्वार हैं। जिस प्रकार द्वैतमिथ्यात्वसिद्धि के लिए द्वैत की उपलब्धि होनी चाहिए, उसी प्रकार परापूजा के प्रयोजन के लिए अपरा का अनिवार्य निष्पादन होना चाहिए। अकुलधाम परापूजा का घर है और समना पूजापीठ। उस पीठ पर त्रिपुरा वाङ्मयविग्रह में प्रकट होती है और बिन्दुमात्र की अवस्थिति में पूजा की जाती है। शुक्ल और रक्तचरण भगवती के हृदय रूप हैं और सामरस्य बिन्दुरूप परापूजा है। इस प्रकार के परामर्श द्वारा चिच्चमत्कार से आह्लाद की जो अभिव्यक्ति होती है उस रसास्वादन की स्थिति में ह्लादरूप चरुकार्पण होता है। प्रसादग्रहणरूप आनन्दभाव में जप होता है। हृदयरूपी गुफा के भीतर आत्मलय की अवस्था में अहन्तारूप परानुभूति विश्वोत्तीर्ण - विश्वमय - परिपूर्ण - चिदावेश के रूप में होती है। आनन्दमात्र की नादात्मक अभिव्यक्ति ही जप का रूप है।

केवल परम भाव में अवस्थति का बोध ही जप है, यहाँ चित्कला पूर्णचन्द्र के समान प्रकट होती है और महाषोडशी की नित्यलीला यहीं होती है। पूजा की इस उच्चतम अवस्था में जब साधक शान्त और जागृत होते हुए नित्योदित बन जाता है तब बाहरी या आन्तरिक समग्र भेद केवल चित्स्वरूप में प्रकट होते हैं और उक्त साधक के उच्चारण मात्र ही जप होते हैं, विमर्श मात्र ही मन्त्र होते हैं, कल्पना मात्र ही ध्यान होता है और क्रिया मात्र ही पूजा होती है। पूजा और पूजक भाव पूर्णतया विगलित होने के कारण आत्मपरामर्शन उपाधिद्वारा अम्लान है। भाव मात्र को औपचारिक रूप में पूजा माना गया है और इसी प्रकार न्यास, तत्त्वशुद्धि आदि को भी औपचारिकतावश

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पूजा संज्ञा दिया गया है। परापूजा केवल इच्छास्वरूप है और अपरा पूजा क्रियास्वरूप है। क्रिया का उपशमन ज्ञान के माध्यम से इच्छा में ही होता है इसलिए अपरा पूजा शैवीमुख की शुरुआत है, परामर्श का पहला उद्रेक है।

अपरा पूजा द्वयभाव को अंगीकार करके और अद्वयभाव में प्रवेश करने का एक उपाय है। इसमें बौद्ध और पौरुष मल को दीक्षा के अभ्यास द्वारा शुद्ध किया जाता है। यह अभ्यास जीवभाव में स्थित शिव के वास्तविक स्वरूप को जागृत करने के लिए किया जाता है। इस महाजागरणस्वरूप पूजा में सबसे पहले अटल शिवभाव के उदय के लिए न्यास की जाती है। विश्वमयता के उदय के लिए चिन्मात्र में षडध्व का न्यास होता है और इसमें भुवन से वर्ण तक सूक्ष्मता के तारतम्य से विन्यास होता है। अध्व के स्वभाव के अनुरूप षोढा, महाषोढा, षडंग आदि न्यास यथाम्नाय निरूपित हैं। प्रत्येक आम्नाय में छह प्रकार के षोढा न्यास होते हैं। चक्रन्यास, मन्त्रन्यास, आयुधन्यास, योगपीठन्यास आदि यथारुचि करने से तत्तत् न्यासलभ्य सिद्धियाँ प्रकट होती हैं। शिव में ही शिवता का न्यास किया जाता है, न्यासकर्ता और न्यास स्वयं शिव हैं। शिव भगवती त्रिपुरा के हृदय हैं। शिवता के विन्यास के बाद आसनकल्पना और बलि अर्पण होता है। हृदयभट्टारक में अहन्तास्वरूप सतत उदीयमान शिवभाव को प्राणद्वार के माध्यम से बाह्यचक्र में अवस्थित करना ही आसन है। जिस प्रकार संवित् शक्ति शरीर में प्राण के रूप में प्रकट होती है, उसी प्रकार यह प्राण चक्र के रूप बाह्यपीठ में, यष्टा के रूप में साधक में और यज्य के रूप में पीठचक्र में सन्निहित होता है। शरीर आदि स्थान शिवमयता में मध्यावस्थान या क्रमसन्धि हैं और इनका न्यास करने से अन्यथावस्थानरूप भ्रम दूर हो जाता है। सारे भावप्रपञ्च चिदग्नि में भस्म होने से चित्स्वरूप अग्नि के प्राकार से आवृत उक्त योगी को भेदप्रतीति स्पर्श नहीं कर सकता। संविन्मात्र त्रिपुरादेवी विमर्शशक्ति के रूप में अपरा अर्चा को ग्रहण करती है और सोऽहं भावना का उदय ही पूजा होती है। तीनों धामों में कला का सन्निवेश अर्घ्य में किया जाता है और कलातीत के तीनों पुर उसी से प्रोज्ज्वलित होते हैं। गुरुपंक्ति और भैरव को द्रव्य अर्पित करने के बाद शेष से कामाग्नि में मरीचिवृत्ति का हवन होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जब माता और मेय संविद्रूप में संघट्ट हो जाते हैं, तो वह पूर्णाहुति की हवि होती है। वाग्भव विश्वमय इन्धन, तुरीया स्वाभाविकी शक्ति और मध्यदशारूप चतुर्दशी इसमें समिन्धन होते हैं। कला और क्रिया निरस्त होते हैं उस उन्मनीदशा में मनरूप स्रुक् से हवन किया जाता है। विषयसंगति के विना ही चिदावेशरूप चमत्कार में योगी अपनी वास्तविक स्थिति को प्राप्त कर लेता है। पृथिवी से लेकर महेश्वर तक का क्ष्मात्वावसान अकृत्रिम इन्धन के प्रज्वलन से प्रज्वलित चिद्धाम में समर्पण होता है। इसी भावना से कारण स्वरूप आनन्दविग्रह भगवती की अर्चा होती है और नित्यानुसन्धान तथा नित्योदय के रूप में पूजा और भगवती के विग्रह की किरणों के चक्र के रूप में अनुसन्धान स्वरूप चक्रपूजा की जाती है। स्थूल में प्राप्त बाह्यचक्रनिष्ठ मातृकाओं का देहावरणस्वरूप चर्म की तरह प्रथम सम्पर्क होता है और साधक अमितमान आदि से पुलकित होकर अन्तश्चक्र में प्रवेश करता है। चूँकि चक्र देवीविग्रह है, इसलिए महात्रिकोण स्वरूप समना धाम तक पूजा करने के बाद, फिर उन्मनी धाम में प्रवेश रूप गमागम होता है।

महाषोडशी की मुख्य पूजा षोडशोपचार द्वारा की जाती है। इसमें चैतन्य शक्ति को आत्मरूप पृथ्वी में अवस्थान कराना ही आसन है। नामरूपात्मक मल को चित्स्वरूप पादुका अर्पण करना ही पाद्य है। संवित्स्वरूप आह्लादन से मलशोधन अर्घ्यप्रदान है। भावना का कवलीकरण आचमन है। सम्पूर्ण मलरूपी आवरण का चैतन्य में विलापन ही स्नान है। भावनात्मक वृत्तियों को शून्यरूप आवरण प्रदान करना वस्त्र द्वारा देहप्रोक्षण है। पूर्णत्व, नित्यत्व, व्यापकत्व आदि धर्म के साथ धर्मी का अभेद अनुसन्धान आभरण प्रदान है। देहनिष्ठ पार्थिव अंश में चिन्मात्रता का पर्यवसान गन्धार्पण है। देहगत विवर को चिद्रूप आकाश में पर्यवसान करना पुष्प अर्पण है। समग्र प्राण के वृत्तियों को चेतना में समर्पण करना धूप का अर्पण है। शरीर में निहित ईन्धन को पराशक्ति में पर्यवसित करना ही दीप अर्पण है। जीवनवृत्ति का कारणस्वरूप देहनिष्ठ अमृत को परामृतरस में समर्पित करना ही नैवेद्य अर्पण है। षोडशान्त में स्थित इन्दुमण्डल की चिद्भावभावना ताम्बूल अर्पण है। वैखरी आदि वाणी द्वारा परव्योम में प्रवेश ही स्तोत्र है। वारंवार विषय के प्रति उन्मुख मन को वापस ला कर निर्विषयक ब्रह्म में विलय करना ही

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रदक्षिणा है। चित्तवृत्ति को वाच्यार्थ के माध्यम से परम सत्ता की ओर लक्षित करना ही प्रणाम है। वास्तव में इस प्रकार सतत निर्विकल्प स्वरूप में रहना ही पूजा है। इस पूजा तक पहुँचाने के लिए साधनभूत चरुक अर्पण में भी द्वार के रूप में पूजा की जाती है।

अपरा अवस्था से परास्वरूप पूजा में प्रवेश कराने के लिए द्वाररूप में परापरा पूजा का अनुष्ठान किया जाता है। इसमें ज्ञानस्वभाव का उत्कर्ष होने से मनन की प्रधानता होती है और इसमें विशेषतः शाक्तोपाय का समावेश होता है। इसमें बाह्य चक्र की अर्चना से शक्ति, यामल, देह, प्राण और बुद्धि में क्रमशः प्रवेशरूप अर्चना होती है। प्रत्येक बाह्य अवस्थिति से लेकर अन्तरतम स्थिति तक सभी में परा रस का आप्यायन कराना ही इस पूजा का तात्पर्य है। विकल्पों को शोधन करके निर्विषय धाम तक पहुँचा जा सकता है। शुद्ध विकल्प उत्पन्न हुए विना परापूजा सम्भव नहीं है। इसी उद्देश्य से अशुद्ध विकल्पों को शुद्ध करने के लिए विभिन्न स्तरों पर सोपान का आश्रय लिया जाता है। जिस प्रकार व्यक्ति अन्तरतम चक्र में प्रवेश करने के लिए द्वार से प्रवेश करता है, उसी प्रकार शुद्ध विकल्प के लिए वह संसार के क्रोध, द्वेष, मोह आदि का विकल्पों का आश्रय लेता है।

वैखरीक्रम से परास्वरूप में अवस्थानस्वरूप जप भी परापरा पूजा है। अपरा पूजा का अन्तिम उत्कर्ष कुलदीपनिवेदन है जिसमें विश्वविकल्प संवित्कला में उल्लसित होता है और इसके बाद ही जप का आरम्भ होता है। वागर्थमय प्रपञ्च में करणप्रवृत्ति का निरोध करके आन्तर नाद का आमर्श ही जाप है। वैखरी वाणी से जप का आरम्भ गुरुमुखोच्चारणानुच्चार से होता है और नादमात्र का आमर्श मध्यमा जप तथा मन्त्रदर्शनस्वरूप और पश्यन्ती जप होता है। पश्यन्ती जप ही सूक्ष्म परावस्था में अद्वयभाव से युक्त होता है। मन्त्रार्थ, मन्त्रचैतन्य और योनिमुद्रा जप के मुख्य रहस्य हैं। जप मननात्मक होता है और मनन का कारण मन है। प्राण जितनी गतिशील होगी, मन उतना ही चञ्चल होगा। प्राण का संयम करके जप करना चाहिए अथवा प्राणसम जप करना चाहिए। 'स' और 'ह' में गमागमस्वरूप प्राण ही परिनिष्पन्न अवस्था में प्रकाशविमर्शरूप शुक्ल–रक्त बिन्दु बनता है। प्राण में कालोदय का ज्ञान करके मातृकोदय तथा मन्त्रोदय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का ज्ञान करना चाहिए। प्राण में मन्त्र उदित होने के बाद ही जप शुरू होता है। इसके लिए बीजादिक्रम से उसी प्रकार मन्त्रों का उद्धार करना चाहिए जैसे प्राण में मन्त्रों का उदय होता है। अपान से लेकर उदान तक समग्र में मन्त्रोदय होने के बाद जगदानन्द स्वरूप वास्तविक आनन्द सञ्चारित होता है। इसमें मूलाधारनिष्ठ वह्निकुण्डलिनी के जागरण के बाद हृन्मण्डल में सूर्य कुण्डलिनी और बिन्दुमण्डलनिष्ठ सोमकुण्डलिनी का जागरण होना चाहिए। चाण्डाली शक्ति एक होते हुए भी भिन्न दहर में प्रतिबिम्बित होने पर अलग कला ग्रहण कर लेती है। यही सार्धत्रिवलय का रहस्य भी है। मन्त्रकूट बिन्दु में अन्वित होते हैं और उन्मना तक जप होता है। षोडशान्त ही महाधाम है, जहाँ प्रवेश करने के बाद प्रपञ्च का विलय होने के कारण यह 'गह्वर' है। एक बीजानुगत नाद से अगले बीज तक उच्चार होता है और नाद के विलीन होने पर ही मन्त्र दर्शन होता है। षोडशधाम में शून्यषट्क, अवस्थापञ्चक और विषुसप्तक की भावना की जाती है। इसे बहिःप्रकट नवयोनि और बिन्दु आदि दशा में विनियोग किया जाना चाहिए। आत्मा, प्राण और मन का संयोग ही प्राणविषुव है। मूल बिन्दु आदि को नाद में लय करके हृदय में स्वयं लीन होकर गह्वरप्रवेश ही मन्त्रविषुव है। नाद और नाड़ी के समायोग से सम्पूर्ण ग्रन्थिभेदन करना ही नाडीविषुव है।

नादान्त के बाद शक्तिस्थान में आत्मविश्राम प्रशान्तविषुव है। स्वयं लीन नाद को ऊर्ध्वसञ्चार में संविन्मात्र से आकर्षणयोग के द्वारा समना तक सूक्ष्मतम नादानुसन्धान शक्तिविषुव है। कालकला का भान जहाँ नहीं होता है उस उन्मनीधाम में नाद का विश्राम कालविषुव है। उन्मनातीत धाम में आत्मानुसन्धानरूप महाजागरण तत्त्वविषुव है। जाग्रत् से तत्त्वविषुव तक विकल्पसमूह का त्याग करके स्वरूपमात्र या चिन्मात्र गह्वर में प्रवेश ही परम स्थानरूप मन्त्र का अनुसन्धान है। इस प्रकार जप करके केवल विमर्शस्वरूप में जप समर्पण करके और शिवशक्तिसामरस्यजनित आनन्द में निर्भर रहकर महाहं भाव से विश्व में चिन्मात्रसारता का अनुसन्धान किया जाता है। संवित् की विश्वरूपता से साधक में नित्येदित समाधि का लाभ होता है। इस अवाङ्मनसगोचरधाम में नियोक्त्री परभट्टारिका ही गुरु है और मूलोद्भव शक्तिचक्र समाप्त होकर अव्ययधाम में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विलीन हो जाता है। इसके बाद जीवात्मा को श्वास-प्रश्वास का निरोध और तीनों कुण्डली के सम्पर्क द्वारा बिन्दु और विसर्ग का समायोग होने पर बलि दी जाती है। चिन्मात्र भगवती ही आत्मविग्रहरूप चरु महाकामेश्वरार्पण करती है और इस चिदावेश को महाचरुकार्पण कहा जाता है। इसी याग के माध्यम से भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की आराधना की जाती है। जो इस रहस्य को जानता है वह महान् योगी है और उसकी इच्छा आदि सारी शक्ति जागृत हो जाती है।

■■■

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्रीतन्त्रहृद्ग्रह्वरः

श्रीतत्त्वगर्भः

संवित्प्रस्तरः

द्वयाद्वयपदद्वन्द्वां द्वयाद्वयविवर्जिताम् ।
नित्यां चिन्मात्रविस्तारां तुर्यातीतामुपास्महे ॥१॥

विश्वोत्तीर्णा विश्वमयी षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपिणी ।
अक्रमा क्रमसंस्कारा परा संविद्विराजते ॥२॥

अनुत्तरं निर्विकल्पं चिन्मरीचिविजृम्भितम् ।
परिच्छेदापरिच्छेदोपाधिभेदविवर्जितम् ॥३॥

यथाऽऽलोकपरिच्छेदो विषयाख्यः प्रकाशते ।
चैतन्यं भाति विश्वात्मा मानाकारो द्वयाश्रितः ॥४॥

सर्वातीतं सर्वमयमप्रमेयं स्वयं प्रथम् ।
चितिमात्रं परं धाम नानाशब्दैर्निरुच्यते ॥५॥

सत्ता क्रिया कारकञ्च वारि–वाष्प–हिमात्मता ।
तदन्तः परमं तत्त्वं यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥६॥

सङ्कोचात्म–विकासात्म–क्रमारूढक्रियामयम् ।
शक्तिचक्रं चिदणवो व्यज्यन्ते यस्य विस्तरे ॥७॥

नैव मायाविनो माया नैवोर्णाप्यूर्णनाभितः ।
सलिलं न हिमाद् भिन्नं जगत् तद्वच्चिदात्मकम् ॥८॥

परिणामो विवर्तो वा यत्किञ्चिदपि कथ्यताम् ।
स्वयमुल्लसते नित्या मायाकाया निजेच्छया ॥९॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

क्रमाश्रिताऽप्यक्रमा वा जगदाकारविग्रहा।
कुलं चित्रादिविज्ञानं यथासंख्यं विकल्प्यते ॥१०॥

तन्मयत्वाद् भाववर्गः शक्तः सन्मात्रविस्तरः।
भ्रान्तिस्वप्नादिविज्ञाने सत्तासापेक्षता समा ॥११॥

समष्ट्या चेतसा क्लृप्त व्यष्ट्या वागर्थभेदतः।
सदसद् वा यथेच्छं वा सत्त्वं चित्त्वमपेक्षते ॥१२॥

निरपेक्षा शिवावस्थाऽनवस्था कल्पितेऽन्यथा।
कार्यकारणभावेन व्यक्ततां याति चिन्मयः ॥१३॥

लोके रथादिव्यापारो भिन्नावयवसङ्ग्रहे।
शिवस्वभावमाश्रित्य सर्वाधिष्ठानमप्यतः ॥१४॥

देशकाललयो यत्र बाह्यान्तश्चित्रवर्जितः।
स्पन्दास्पन्दात्मयुगपद् गह्वरः सर्वसम्भवः ॥१५॥

वाच्यवाचकद्वैविध्यं मनोमूलं क्रमाश्रितम्।
अध्वषट्कं महामायास्फारः कामेशकल्पितः ॥१६॥

शिवो भ्रमति जीवाख्यः स्वप्रकाशमयेऽध्वनि।
जाड्याजाड्यविभेदेन नानास्थानेषु व्यापकः ॥१७॥

स जीवः प्राणसम्पर्काद् भिन्नाधिष्ठानव्यञ्जितः।
बद्धः पिण्डाभिमानेन मुक्तो मोहप्रहाणतः ॥१८॥

अत्र विद्येश्वरा भान्ति निर्विकल्पे महाह्रदे।
तदन्तान्तान्तर्हृदये भाति कामेश्वरः स्वयम् ॥१९॥

नित्या शिवस्य चिन्मात्रानुभूतिः क्षणवर्जिता।
सर्वाभासाऽप्यनाभासा युगनद्धस्वयंप्रथा ॥२०॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बीजाङ्कुरतया शाक्तवीर्यमुल्लसनात्मकम्।
बीजाङ्कुरतया सर्वमेकीकृत्यावतिष्ठते ॥२१॥

अश्वत्थमिव बीजान्तः शून्यमात्रान्महाह्रदात्।
अक्षयामाश्रित्य कलां पुनः सूते चराचरम् ॥२२॥

तुरीयाम्बा पञ्चकृत्या भासा रक्तिर्विमर्शनम्।
बीजावस्थापनं स्वात्मलापनं स्पन्दनं श्रियः ॥२३॥

सृष्टि–स्थिति–लयानाख्या भासाक्रमप्रकाशिता।
अहमाक्रान्तसङ्कोचमहोदयविलासिनी ॥२४॥

संविदेव पुरा प्राणे भासते कुलसंक्रमे।
ब्रह्माण्डे हंसरूपेण जीवे कुटिलकुण्डली ॥२५॥

प्राणप्रस्तरः

शक्तिचक्रं समालिङ्ग्य रूपं रूपं विभर्ति सः।
स्वभावं गोपयन् देवस्तस्यात्मा वह्निवासिनी ॥१॥

देशकालक्रमाक्रान्ता पदमन्त्राक्षरात्मिका।
धामतत्त्वकलारूपा वाच्यवाचकविग्रहा ॥२॥

सा चण्डी कर्षिणी नित्या सारः स्पन्दश्च गह्वरः।
हृदयं व्योम उच्छुष्मश्चरणं चाभिधीयते ॥३॥

त्रिधा विभक्तं यत्किञ्चिद्धाम बीजं विसर्जनम्।
गुणस्तत्त्वं च शक्तिश्च स्फारस्तस्या निगद्यते ॥४॥

नरशक्तिशिवोल्लासा स्वभित्तौ स्वेच्छया मुहुः।
भैरवाकारवपुषा ग्रसमाना च स्वात्मनि ॥५॥

अनुत्तरं ब्रह्मतत्त्वं प्रकाशामर्शगर्भितम्।
कामो बीजं कला योनिर्लीला वागर्थविस्तरः ॥६॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्रिविधोपायहृदयनिलया भगमालिनी ।
समावेशभिदा भाति त्रिगुणा लिपिविग्रहा ।।७।।

परापरस्यैव धाम्नः प्राकट्यं ज्ञानसञ्चरः ।
मन्त्रचक्रदेहभिदा मायावीव विजृम्भते ।।८।।

देवो विश्वमयो माता ग्रस्तमेयस्वभावकः ।
बाह्योद्यमलयस्तत्र षोडशी देवता चितिः ।।९।।

भावयुग्मकुचद्वन्द्वा क्षयहीना परात्परा ।
कल्पनाकुलसङ्ग्रासा महानित्या हृदालया ।।१०।।

शाक्तस्फारः क्रमाक्रान्तप्रकाशामर्शनिर्भरः ।
उदानान्तः परामर्शाद् ग्रस्तमेयेन्धनः शिवः ।।११।।

नोपासा गह्वरावेशे चिन्मात्रे किं विकल्पनम् ।
वर्ण–चक्र–मन्त्र–धाम–संविद्रूपा विमृश्यते ।।१२।।

मातृभैरवगा शक्त्यावृता तत्त्वानुगाऽन्तरा ।
सर्वात्मिका धामभिन्ना चितिस्त्रिपुरभैरवी ।।१३।।

स्वात्मोच्छलत्तारूपोऽसौ परिणामो महारवः ।
त्रिवृत्कृतजगन्मूलः स्पन्दः हृदयमाश्रितः ।।१४।।

आद्यन्तचोदिता वीर्यवन्तो मन्त्राः फलप्रदाः ।
मन्त्रपिण्डे प्राणयोगादन्यथा बुद्बुदोपमाः ।।१५।।

शिवशक्त्यविनाभावात्तुर्यातीतोऽहमाकृतिः ।
आद्यः पञ्चकलो वामाज्येष्ठारौद्र्यम्बिकायुतः ।।१६।।

इच्छाज्ञानक्रियाशान्तायोगोन्त्यो रुद्रयामलः ।
पश्यन्तीभूमिका वाचः शिवाम्बात्माद्वयोदयः ।।१७।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शान्ताम्बिकासमाश्लिष्टा शृङ्गाटाकारताङ्गता।
वामेच्छा ज्ञानज्येष्ठा च क्रियारौद्री विजृम्भते ॥१८॥

संघट्टा मध्यमा शून्य–स्पर्श–नाद–ध्वनि–क्रमात्।
बिन्दुशक्तिबीजतया योगेन नवधा स्थिता ॥१९॥

स्फुटाक्षरस्वरूपेण वैखरीवाङ्मयं जगत्।
शब्दतत्त्वस्य विस्तारे बाह्याभासः क्रमाक्रमः ॥२०॥

द्विधा विभागः पश्यन्ती क्रियामूर्तितया चितेः।
सर्वावरणविक्षेपस्वभावप्रतिभोदया ॥२१॥

पिण्डे पदे तथा रूपे रूपातीते चकास्ति वाक्।
ब्रह्म–प्रकृति–मायाण्ड–शाक्ताण्डपरिबृंहिता ॥२२॥

बाह्यान्तरेन्धनोद्दीप्ताः शून्यगेहाः शरीरिणः।
रश्मिबोधात् पुलकिताः प्राप्नुवन्ति परं पदम् ॥२३॥

दीक्षा–चर्या–यागभेदस्तदाश्रित्य प्रवर्तते।
क्रियाया विविधत्वं च सम्प्रदायास्ततः पृथक् ॥२४॥

मूर्तिक्रियाभेदरूढा नित्या याति प्रमेयताम्।
तदात्मतासमापत्त्या समुपास्या गमागमे ॥२५॥

उदयप्रस्तरः

सिद्धिश्च सर्वभावानामसिद्धिश्च स्वसंविदः।
व्यापारत्वात् स्वयंसिद्धा संवित् सर्वप्रकाशिका ॥१॥

प्रपञ्चनिरपेक्षत्वाच्छून्यं गह्वर उच्यते।
शून्यातिशून्यपदवी सर्वशङ्कानिमज्जनात् ॥२॥

कार्यकारणभावेन साधवः साधयन्तु वा।
चिद्रूपत्वात् समग्रस्य न तस्यास्ति प्रयोजनम् ॥३॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रतिबिम्बेन सूर्यस्य न म्लानिर्न च शीतता ।
तद्वदेव पराम्बाया न क्षयः प्रतिबिम्बनात् ।।४।।

कौटिल्यं तत्र वक्रेशीरूपतां व्यञ्जयत्यतः ।
लोको विश्वप्रथाकारः प्रत्यावर्त्तं स्फुटास्फुटः ।।५।।

व्योमवामेश्वरी स्फारमात्रसारा जगत्प्रथा ।
अवभासनवीर्येण नादरूपा वियत्कला ।।६।।

कारकाणि कृज्ञुल्लासः क्रिया सर्वानुगामिनी ।
तद्विकासे देशकालात्मना भेदः प्रकल्पितः ।।७।।

यतो व्यापारसन्ताना तत्सारस्त्ववबोधनम् ।
तदधिष्ठानरूपेण परा देवी विराजते ।।८।।

धरादिशिवपर्यन्तमुमा व्याप्नोति स्वात्मना ।
नादिफान्ताक्षरोद्रेकाच्छून्याशून्यात्मकं जगत् ।।९।।

वामेश्याः प्रथमोल्लासस्त्वयनं संसिसृक्षया ।
प्रवृत्तिः परेमश्वर्याः स्वात्मोल्लासः शिवात्मना ।।१०।।

कुलाकुलात्मना पिण्डे सार्धत्रिवलयाऽऽलया ।
महानित्या भासयति परिच्छिन्नप्रमातृताम् ।।११।।

आलिकालिमयी वामा तत्त्वातीता च तन्मयी ।
अष्टात्रिंशत्कलाग्रासा पञ्चाशल्लिपिविग्रहा ।।१२।।

महाबिन्दुचिदाकाशे भासान्ताः क्रमदेवताः ।
सन्त्याश्लिष्टा यदुद्रेकादाम्नायाः शिववक्त्रजाः ।।१३।।

कलायन्त्रसमाश्लेषादाम्नायस्फारसंस्फुटा ।
महावज्रेश्वरी सर्वाम्नायरूपा चिदुत्क्रमा ।।१४।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रसरो ज्ञातृ–विज्ञान–ज्ञेयभावात् त्रिधा मनोः।
उच्छुष्मस्तु परातीतस्त्रिपुरा क्रमलङ्घिनी ॥१५॥

रक्तशुक्लमित्रबिन्दूद्भवा वाक् त्रिविधोदया।
सर्वाधिष्ठानरूपत्वात् न कार्यं कारणं परा ॥१६॥

निष्कलाऽपि कलाधारारूढा प्रज्ञानविग्रहा।
धाममण्डलभेदेन स्थूलसूक्ष्मपराकृतिः ॥१७॥

मातरो योगिनीवक्त्रात् संविच्चक्रप्रचोदिता।
भिन्नाकाराः प्रवर्तन्ते भिन्नकार्यामितांशवः ॥१८॥

विषयाकारविज्ञानं बध्नाति मातृकाकुलम्।
मोचयत्यपरिच्छिन्नं मन्त्रारूढं मनोमुखम् ॥१९॥

आत्मा विद्या तथा माया शक्तिश्चैव शिवः क्रमात्।
व्याप्नोति तत्र सकलो विज्ञानाकलसंज्ञकः ॥२०॥

प्रलयाकलसंज्ञश्च मन्त्रमन्त्रेश्वरक्रमात्।
महेश्वरश्च मन्त्राणां स्वच्छन्दः कुलविग्रहः ॥२१॥

प्रमातारो विभिद्यन्ते मलानां तारतम्यतः।
घटादिना सलिलवत् खवद्देवः पराकृतिः ॥२२॥

शोध्यशोधकभावेन यदा बिन्दुर्विभज्यते।
गुरुशिष्यतया कामेश्वरो याति विसर्गताम् ॥२३॥

शिवेच्छा हृदयारूढाऽनुग्रहाय प्रचोदिका।
शिष्यत्वकामो जिज्ञासुः शोधनीयस्तया भवेत् ॥२४॥

शक्तिपाततारतम्यात् शास्त्रतः गुरुतः स्वतः।
बोधभानोः समुदयो विद्यामन्त्रः स्वयंविधिः ॥२५॥

। इति श्रीतत्त्वगर्भः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्रीचक्रगर्भः

रूपप्रस्तरः

मातृमेयात्मको लोकश्चिन्मात्रो बिन्दुविग्रहः।
अधिष्ठानं महाबिन्दुः शक्त्युल्लासात्मसर्जने ॥१॥

कृन्तत्यशेषं पाशौघं करोत्यात्मप्रकाशनम्।
विकासं बिन्दुतो याति वियच्चक्रं चकत्यतः ॥२॥

अग्निसोमात्मसंघट्टाद्देवतामण्डलोदयः।
चिदंशुप्रसरे कोणदलाद्याकृतयः स्फुटाः ॥३॥

स्वातन्त्र्यमात्रसारस्य शाक्तस्फारविमर्शनात्।
प्रपञ्चात्मप्रकाशात् प्राक् प्रकाशात्मावबोधनम् ॥४॥

निर्मले दर्पणे यद्वन्मार्त्तण्डः प्रतिबिम्बते।
विमर्शांशे प्रकाशश्च चिन्मात्रो यन्त्रितस्तथा ॥५॥

शक्तिगह्वरमाविष्टश्चिद्व्योमानन्तविग्रहः।
चित्तयन्त्रं संस्फुरति शिवश्च फलितो हृदि ॥६॥

बिन्दुसर्गशरीरोऽसौ रक्तशुक्लविभेदितः।
द्वयमूलश्चिदामर्शस्त्रिकोणाद् भूपुरावधिः ॥७॥

निर्विकल्पान्महाशून्याद् विकल्पकुलग्रासनात्।
आद्यस्पन्दो बोधमयस्ततो हृदयसंज्ञितः ॥८॥

उदयः सहजस्यायं चित्तयन्त्रप्रचोदितः।
क्रिया विकल्पोऽभावश्च त्रिकोणाकारतां गतः ॥९॥

धर्मोऽपि धर्मितां याति धर्मी गच्छति धर्मताम्।
मायाजालस्य विस्तारे नास्ति किञ्चिन्नियामकम् ॥१०॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आम्नायः शाम्भवोल्लासो वामदक्षिणसंज्ञितः ।
ज्ञानक्रियाविभेदेन चितिवह्निप्रवेशिनः ॥११॥

समग्रस्य प्रपञ्चस्य सारः प्रसरकुञ्चने ।
कार्यकारणलोकस्य विमर्शो बीजमुच्यते ॥१२॥

स्वावबोधः परव्योम्नो वह्नेर्दाहकतासमः ।
विकासो जडताभावो विमर्शावेशसंज्ञितः ॥१३॥

क्रिया हि जडता स्पन्दस्वभावप्रतिभाश्रिता ।
अन्तर्विमर्शे भावानां हानादानक्रियात्मता ॥१४॥

देहाविष्टो यथा जीवो मायायन्त्रनियन्त्रितः ।
प्रवर्तते बहिर्वृत्तौ यन्त्रारूढा तथा परा ॥१५॥

व्याप्यव्यापकभावेन सापेक्षत्वं द्वयोरपि ।
सर्वात्मना संस्फुरति चक्रभावेन देवता ॥१६॥

विस्तारस्योद्यमो बिन्दुर्भूगेहो मातृकाकुलम् ।
षडध्वसंहारमयमनाख्यं योनिमण्डलम् ॥१७॥

इच्छा त्रिकोणतां याति मातृभैरवरूपताम् ।
वेत्तृभावप्रहाणेन कोशात् कोशं प्रमेयता ॥१८॥

शक्तिशक्तिविनिर्भेदाज्जातवेदस्समन्वयात् ।
वस्वात्मता क्रियास्फारादेकाऽपि बहुधा स्फुटा ॥१९॥

बिन्दुस्त्रिकोणमष्टार आत्मा चित्तं पुरोऽष्टकम् ।
इन्द्रियाणि तद्विषया द्विदशारतया स्फुटाः ॥२०॥

करणानां समाश्लेषो मन्वरः प्रकृतिर्महान् ।
अहङ्कारस्तथा तन्मात्राणि वसुदलात्मना ॥२१॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भूतेन्द्रियमनोयोगाच्छोडशारः कलात्मकः ।
दशमुद्राप्रथारूपं भूगेहं चिञ्चिणीवपुः ॥२२॥

षोडशत्वसमुद्रेकात् सर्वाशापूरणं स्वतः ।
मोहेन रागद्वेषाभ्यां लोकस्त्रितयचित्रितः ॥२३॥

नवावरणचक्रस्य काये सकलरूपता ।
अर्धेन्द्वाद्युन्मनान्तस्य परापरस्वरूपता ॥२४॥

सृष्टिसृष्ट्यादिभेदेन त्रिपुराद्यास्तु देवताः ।
चक्रावरणव्यापिन्यो नव नित्या हृदास्पदा ॥२५॥

नामप्रस्तरः

कौलिनी क्रमनिर्भासा विश्वोत्तीर्णाऽक्रमा परा ।
युगनद्धा चित्रचक्रारूढा गह्वरमालिनी ॥१॥

तत् प्रकाशविमर्शास्यं समुदेत्यहमात्मना ।
अनुत्तरं लोकबीजं स्वात्ममूला हि वृत्तयः ॥२॥

बिन्दुरूपाऽम्बिका धत्ते स्वेच्छया चक्ररूपताम् ।
पुनर्देहस्य सङ्कोचाल्लयमाप्नोत्यनुत्तरे ॥३॥

बीजसृष्टिरियं प्रोक्ता बाह्योद्घाटस्त्वतः स्फुटः ।
अत्रान्तःस्थोष्मसम्पर्क ओष्ठ्यान्तश्च त्रिकोणके ॥४॥

द्विदशारे कादिनान्ताश्चतुष्कोणे च भान्तिमाः ।
अनुत्तरादिशूलान्ता मन्वरे मातृकाः स्थिताः ॥५॥

दलचक्रे बिन्दुसर्गो शिवशक्तिमयस्तु क्षः ।
समाहारतया बिन्दौ क्षात्मिका त्रिपुरेश्वरी ॥६॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रौद्र्युल्लासः क्रियाशक्तेर्भूपुरस्य स्वरात्मता।
कलाविक्षोभकामाख्यानङ्गादिवसुदेवताः ॥७॥

जगद्वमनशीलत्वादस्या वामास्वरूपता।
मेयानां वान्तरूपत्वं चर्वयत्यखिलं लये ॥८॥

दिव्ययामलभावेऽस्मिन् गुह्यविद्यास्तु कोटिशः।
मातृकाचक्रमारूढा व्यापिन्यां योजयन्ति ते ॥९॥

त्रिपुराद्याश्रितस्फारारूढा पञ्चदशी परा।
षोडशी संविदोल्लासे कालचक्रात्मना स्फुटा ॥१०॥

कालः प्रमातृसापेक्षः सप्तधा मातृकामुखः।
विधाय शाम्भवोल्लासमुन्मनायां स लीयते ॥११॥

महाबैन्दवचक्रं हि गुहा संज्ञानवर्जिता।
अक्षरोच्चारमात्राया अर्धमात्रा तु बैन्दवी ॥१२॥

तदर्धार्धार्धक्रमशोऽमाकला षोडशी परा।
नातः कालकलास्पर्शो मनसः संक्षयो यतः ॥१३॥

षोडश्युमा महास्फारविस्मया सहजोदया।
उत्क्रान्ता भैरवीरूपा योगिनीस्थानमुच्यते ॥१४॥

चिन्मात्रामर्शनं तुर्यं यन्त्रे बिन्द्वात्मताङ्गतम्।
स्पर्शे जाग्रत्स्वरे स्वप्नो निद्राऽन्तःस्थं परोष्मसु ॥१५॥

सङ्कोचात् स्पृष्टता वर्णे विकासाद् विवृतो भवेत्।
स्थानेष्वभावः सौषुप्तं भावो जाग्रद् विशिष्यते ॥१६॥

सन्तापनं सन्तपनं स्थानेष्वपि प्रकाशवत्।
बिन्दुस्वभावः श्रीकण्ठे वामेश्याः परमा कला ॥१७॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तुर्यं चानुत्तरो बिन्दुर्नित्यायाः प्रथमोदयः ।
ईक्षणं चास्य विस्तारो विसर्गस्तदिहोच्यते ॥१८॥

विमर्शनं बिन्दुधर्मो वियुक्तः शङ्करस्ततः ।
किं वा प्रकाशः स्याद्धर्मः सम्बन्धः परिकल्पितः ॥१९॥

बिन्दुसर्गौ मातृभागौ तदन्तः स्थानमान्तरम् ।
पञ्चह्रस्वस्वराः स्वप्नरूपा लोकोत्तरस्थिताः ॥२०॥

विश्वाकारा विराडात्मदीर्घाः स्युर्जागराभिधाः ।
सन्ध्यक्षराणि प्रसरत् प्राणप्रामाण्यरूपिणः ॥२१॥

अधिष्ठाता भवेद् बिन्दुह्रस्वाणामुद्यमान्तरः ।
दीर्घाणां च विसर्गोऽस्ति कलाषोडशविग्रहः ॥२२॥

महात्रिकोणे कामेशी–वज्रेशी–भगमालिनी ।
शाक्तोल्लासक्रमाद् बिन्दुसर्गाधिष्ठानमान्तरम् ॥२३॥

मन्त्राणां मातृका योनिः श्रीचक्रम्मातृकामयम् ।
उदयास्तमया मन्त्रा रश्मिदेहाश्चिदुद्गमाः ॥२४॥

मेयांशस्य चिदावेशः स्वभावः प्रथनात्मकः ।
मयूराण्डे यथा वर्णा कुलञ्चाद्यन्तिमे तथा ॥२५॥

मुद्राप्रस्तरः

विमर्शः परमाशक्तिरिच्छास्फारो जगन्मयः ।
क्रिया मुद्रा प्रबोधार्थं मोदद्रावणकारिणी ॥१॥

नामरूपात्मकं मेयं क्रमाद् वमनचर्वणे ।
कलाः कुर्वन्ति माहेश्यो मातृकाभैरवात्मिका ॥२॥

आदिमान्त्यकलोद्रेकाद्द्राण्यः सामरस्यदाः ।
मुद्रा दश महेश्वर्या वामेच्छादिसमन्वयात् ॥३॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सर्वसिद्धिप्रदा देव्यो मोहयन्ति नियामिका।
रञ्जयन्ति मिताभासान्मोचयन्त्यमितप्रथा ॥४॥

मोहो हि जडता नान्यो तद्धाने चिन्मयं जगत्।
मोहनिद्रा महामाया रोधिनी सा तमोऽभिधा ॥५॥

शिवशक्तिसमायोगप्रभवास्तन्मयास्तथा।
मुद्रयन्ति परे भावे यन्त्रनाप्तांशवः शिवाः ॥६॥

पराशक्तिर्बोधसारा धत्ते मुद्रात्मतां स्वतः।
अभेदाः शाम्भवोल्लासे शाक्ते मननविग्रहाः ॥७॥

आणवे वृत्तिमास्थाय करणानां स्फुटाः पृथक्।
दक्षाङ्गुल्यः शक्तिरूपा वामाः शैवाः प्रकाशकाः ॥८॥

सामरस्यमये व्योम्नि विश्वं बीजतया स्थितम्।
प्रकाशस्य समग्रस्य स्रोतस्तदनुप्राणकम् ॥९॥

भाः स्रोतोमुद्रणान्मुद्रा निःशेषोत्पत्तिहेतुना।
कारणब्रह्मरूपेण योनिश्चेच्छाप्रसर्पणात् ॥१०॥

बिन्द्वन्तराले धर्मादिसंघट्टादुदयश्चितेः।
अरणिद्वयसंघट्टाज्जातवेदोदयो यथा ॥११॥

उन्मेषान्ते स्थिता मूले सुषुप्तभुजगी वृता।
निमेषेऽकुलपद्मान्तर्व्योमवामेश्वरीवपुः ॥१२॥

व्योम्न्यस्तङ्गमनान्मुद्रा खेचरी रावभूमिका।
बोधाकाशविहारिण्या नित्याया मुद्रणात्तथा ॥१३॥

अस्यैवानाख्येयभूमेर्गोदिग्भूक्रमसञ्चरः।
मातृकाष्टकभेदेन कलाभिर्मुद्रिता यथा ॥१४॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

षडानन्दाः क्रमाच्चक्रे सर्वानन्दस्तु व्यापकः ।
तन्मयी भैरवीमुद्रा द्वयाभासविवर्जिता ॥१५॥

रूपातीतं तथा रूपं पदं पिण्डमनुक्रमात् ।
ओड्याणादिस्वरूपाणि पदानि जाग्रदुत्तरे ॥१६॥

चिन्मयो बिन्दुभावश्च हंसः कुटिलकुण्डली ।
मूलं हृदाज्ञारन्ध्रश्च स्थानं पिण्डमनुक्रमात् ॥१७॥

स्वप्नस्य जाग्रतश्चैक्यं बाह्याभासेन लभ्यते ।
अनाभासा सुषुप्तिः स्यात् तुर्यं प्रत्यक्प्रथामयम् ॥१८॥

एकैकसंक्रमादस्यानन्त्यं षोडश मूलतः ।
समष्टौ मूलविद्यास्तु सन्त्यवश्याभिमानिनः ॥१९॥

मन्त्रा विद्या सिद्धसाध्याः शाबरा डामरास्तथा ।
जगदस्यास्समाहारः स्वात्मानात्मस्वरूपतः ॥२०॥

ज्ञातृविज्ञानविज्ञेयमूलभावाश्रिता परा ।
बाह्यावस्थाभिमानेनानन्तभेदवितानिता ॥२१॥

स्वप्नस्तु ज्ञानतापत्तिः क्रियारूपस्य जाग्रतः ।
तद्धानमेव सौषुप्तमभावस्थानमुच्यते ॥२२॥

उदयास्तमयं स्थानमुच्यते कुलसंक्रमे ।
तद्वदेवाभेददशा धामसञ्चारशालिनी ॥२३॥

जाग्रद्रविर्जातवेदा स्वप्न इन्दुः सुषुप्त्यपि ।
अणोः शिवत्वसञ्चारे स्फुरत्येकात्मना स्वतः ॥२४॥

जडाजडाख्या विश्रान्तिर्निद्रास्वप्नविभेदिता ।
निवृत्तिर्जाग्रत्तुर्याख्या स्वभावामर्शनात्मिका ॥२५॥

॥ इति श्रीचक्रगर्भः ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्री–अर्चागर्भः

इच्छाप्रस्तरः

शक्त्यास्पदां घोरघोराघोररश्मिविलासिनीम् ।
मुद्रापुस्तकरां त्र्यक्षां कृशां पूर्णां श्रये कलाम् ॥१॥

देहप्राणादिभिर्भावैस्त्रिपुरा स्वप्रथात्मिका ।
परापरादिभेदेनार्चिताऽभीष्टार्थदायिनी ॥२॥

स्वामर्शात्मचिदावेशा पूजा स्वात्मपरोद्यमा ।
पूज्यपूजकभेदोत्थसामरस्याऽपरा स्मृता ॥३॥

यष्टृयज्यादिभिर्भावैः प्राण एव विकल्प्यते ।
अस्यैव गह्वरावेशो नित्योदितसमाधिना ॥४॥

उपचारस्त्वयं पूजाजपध्यानादिसङ्ग्रहः ।
इच्छामात्रं परार्चा स्यात् क्रियारूढाऽपराऽऽणवी ॥५॥

परार्चा भैरवीरश्मिसन्तानप्रसरस्फुटा ।
बाह्यान्तराणां भावानां नित्यासाराऽद्वयप्रथा ॥६॥

शिवो योगी शिवा योगस्तदभ्यासस्तदात्मता ।
शिवशक्त्यात्मसंघट्टादर्चा हृद्व्योममन्दिरे ॥७॥

चिदग्निभावो भावानां प्राकारत्वेन कल्पितः ।
कल्पनाकवलङ्कारात् बाह्यस्पर्शविवर्जितः ॥८॥

इन्द्रियग्रामवृत्तान्ताः क्रियाः पूजा स्वयंप्रथा ।
सर्वोपाधिभिरम्लानः परभावोऽयमुत्तमः ॥९॥

अणुभावसमापन्नः शिवोऽभ्यासात् प्रबुध्यते ।
महाजागरणाह्लादभावः पूजा निगद्यते ॥१०॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शिवे शिवत्वविन्यासः स्वत्वोद्रेकस्ततः स्वतः ।
स्वतः सङ्कल्पिताद् भावाद् बध्यते च विमुच्यते ॥११॥

चिदेव त्रिपुरादेवी लौहित्यं हि विमर्शनम् ।
सोऽहमित्युदयो देव्याः पूजा झटिति सञ्चरः ॥१२॥

तत्रार्चा कारणानन्दरूपाया भावसंक्षयात् ।
नित्यानुसन्धानतया तथा नित्योदयक्रमात् ॥१३॥

रश्मिवृन्दानुसन्धानं चक्रार्चा चित्क्रमोदयः ।
सर्वतो नित्यताव्याप्त्या पूजा झटिति चोद्यमा ॥१४॥

यथा देहे तथा चक्रे यथा चक्रे तथा शिवे ।
यथा विश्वे तथा पिण्डे यथा हृदि तथा बहिः ॥१५॥

सर्वं संविन्मयं शुद्धमध्वषट्कं विमृश्यते ।
नित्योदितप्रकाशत्वात् प्रतिभामर्शनत्वतः ॥१६॥

अत्रावाङ्मनसे धाम्नि नियोक्त्री गुरुरूपिणी ।
पराभट्टारिका शक्तिचक्रोल्लासाऽव्ययात्मिका ॥१७॥

संवित्स्वभावा कामेशं प्रार्पयत्यात्मविग्रहम् ।
युगनद्धचिदावेशश्चरुकार्पणमान्तरम् ॥१८॥

नित्याहृदययागोऽयं शिवसद्भावदायकः ।
महायोगी तदभ्यासाच्चिद्वपुर्भैरवो भवेत् ॥१९॥

विश्वोत्तीर्ण–विश्वमयपरिपूर्णचिदात्मता ।
पूर्णाहन्तासमावेशाज्जपो नादाभिधः परः ॥२०॥

निमीलनोन्मीलनात्मा स्वचमत्कारनिर्भरः ।
तुर्यधाम्नि प्रशान्तानामावेशो भाववर्जितः ॥२१॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जनिपालनधर्मेण खलयश्चित्प्रथा जपः ।
मन्त्रग्रामो विमर्शोऽस्य कल्पना ध्यानमुच्यते ॥२२॥

सर्वभावसमाश्लेषस्थितिर्मुद्रा जपः कथा ।
ध्यानं विकल्पो व्यापारो यागो नित्योदिता दशा ॥२३॥

परभावोदये भावा साध्यसाधनसंक्रमाः ।
सर्वे पूजा महादेव्या विश्वात्म्येन विजृम्भणात् ॥२४॥

सिद्धानां न विधिर्नास्ति निषेधो यादृगिच्छया ।
चरन्ति यद्यत्तत्सर्वं शिवोद्रेकतया शुभम् ॥२५॥

ज्ञानप्रस्तरः

रक्ताराधनद्वारेण परभावोदयक्रमा ।
पूजा परापरा युग्मसन्धाना ज्ञानविग्रहा ॥१॥

मननस्यात्र प्राधान्यं शाक्तोपायस्वभावतः ।
चक्रे देहे तथा प्राणे धियि यागः परापरः ॥२॥

परामृतचमत्कारश्चक्राच्चक्रान्तरं क्रमात् ।
विकल्पानां शोधनेन निर्विकल्पचिदात्मता ॥३॥

स्थानानां क्रमसन्धित्वं पिण्डादीनां शिवाध्वनि ।
अन्यथात्मकताहानं न्यासो भैरवरूपता ॥४॥

बिन्दुसर्गात्मसंघट्टाद् बीजपिण्डमनुप्रथा ।
रश्मिस्फारलया पूजा सृष्टिसंहारचोदिता ॥५॥

संवित्कलायां प्रोल्लासः कुलदीपनिवेदनम् ।
जपस्तदनु स्वामर्शस्वभावः प्राणसाधनः ॥६॥

करणवृत्तिरोधेन वागर्थमयगह्वरे ।
जपो नादान्तरामर्शः परान्तो वैखरीमुखः ॥७॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मन्त्रार्थो मन्त्रचैतन्यं मुद्रा योन्यभिधा त्रिकम् ।
रहस्यं जपविद्याया जपश्च मननात्मकः ॥८॥

चित्सङ्कोचः प्राणयोगाद् विस्फारः प्राणसंयमात् ।
उदयास्ते महासन्ध्या मनोयोगाज्जपो लयः ॥९॥

प्राणे पञ्चविधे कालोदयश्च मातृकोदयः ।
मन्त्रोदयश्च क्रमशो जपः सर्वोदयादनु ॥१०॥

नित्यामोदरसास्वादैः प्रसादाह्लादव्यञ्जनात् ।
पानचर्वणसन्तृप्तो जपत्युद्रेकनिर्भरः ॥११॥

बीजाद्यथाङ्कुरोत्पत्तिः सारान्मन्त्रोदयस्तथा ।
उदानान्तोदयान्नित्यजगदानन्दसञ्चरः ॥१२॥

कुण्डलीत्रितयोद् बोधान्मन्त्रचैतन्यमान्तरम् ।
एकाप्यनन्ता शून्यापि सर्वकल्पनविग्रहा ॥१३॥

कलावैचित्र्यतां धत्ते सा कूटत्रयगर्भिता ।
तदन्विता महामन्त्राः शून्यप्राणास्तडिन्निभाः ॥१४॥

उन्मनान्तं जपस्तेषां षोडशान्तो महाह्रदः ।
भावग्रासस्वयंज्योतिर्मन्त्राणामुदयास्तभूः ॥१५॥

बीजाद् बीजान्तरं नादामर्शो नादलयादनु ।
स्पर्शः सम्भाषणं मन्त्रदर्शनं मन्त्रमात्रता ॥१६॥

शून्यषट्कमवस्थानां पञ्चकं सप्तकं तथा ।
विषुवतां षोडशोऽस्मिन् धाम्नि भावनमुत्तमम् ॥१७॥

नवयोनिमहाचक्रमर्धचन्द्रादिखान्तिमम् ।
बाह्यान्तरपरामर्शाज्जपस्तद्विनियोजनम् ॥१८॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विषुवत्प्राणसंज्ञस्तु मनोप्राणात्मसंयमात्।
मान्त्रो नादलयाद् बिन्दोर्हृदयान्तः स्वतो लयात् ॥१९॥

नाड्याख्यो ग्रन्थिसम्भेदो नादनाडीसमन्वयात्।
प्रशान्तश्चान्तविश्रान्तिः शक्तौ नादलयादनु ॥२०॥

विलीनस्यापि नादस्य समनावधि योजनम्।
संयमान्मनसः शाक्तं नादोज्जीवनमान्तरम् ॥२१॥

कालसङ्कलनातीतोन्मन्यां नादसमर्पणम्।
तत्त्वं महाजागरणन्तुदतीतनभोदयात् ॥२२॥

पिण्डात्तत्त्वावधिः सर्वं कल्पनाजालसङ्कुलम्।
प्रहाणान्मन्त्रसन्धानं लयश्चिन्मात्रगह्वरे ॥२३॥

जपस्य कारणामोदललिताचरणार्पणात्।
सामरस्याद्द्वयाह्लादनिर्भरस्य चिदात्मता ॥२४॥

श्वासद्वयनिरोधेन कुण्डलीत्रयसंयमात्।
बिन्दुसर्गसमायोगो बल्यर्पणमनुत्तरम् ॥२५॥

क्रियाप्रस्तरः

विद्यासरणिमारूढा मण्डलार्चा क्रियात्मिका।
घोराशक्तिसमुद्रेकाद् बाह्योल्लासस्त्रयात्मनः ॥१॥

अद्वयं द्वयमाश्रित्यापरापूजा सभित्तिका।
समावेशाधिकाराय धारणासु मलक्षयात् ॥२॥

यावदात्मप्रकाशोऽस्ति भेदारणिविभावितः।
यावत्परायां नावेशोऽपरापूजा द्वयाश्रिता ॥३॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आदौ शिवत्वविन्यासः कुलतत्त्वोदयस्ततः ।
स्थूलसूक्ष्मपरोत्कर्षादवीच्यादिनिरुत्तरः ।।४।।

प्रत्याम्नायविभेदेन षोढा षोढा प्रपञ्चिता ।
देशकालाध्वभेदेन क्रमोल्लंघनहेतुना ।।५।।

शिवत्वं बाह्यचक्रे स्वाहन्तोद्रेकाद्यदास्यते ।
आसनं प्राणद्वारेण प्राणे संविद्यतः स्फुटा ।।६।।

ओ–जा–पू–का–क्रमाक्रान्ता देवी पीठात्मना बहिः ।
चकास्ति यद्यद्रूपेण रश्म्यौघो मूर्तिरुच्यते ।।७।।

चतुःस्रोता परा संविद्रश्मिसन्तानलक्षिता ।
जाग्रन्मुखा तुर्यगेहा विकल्पकुलवर्जिता ।।८।।

वशीकरणव्यापारा भेदाभेदभ्रमान्विताः ।
मोहात्मानः स्वप्रकाशा राजन्ते त्रिपुरायुधाः ।।९।।

धाम्नां निवेशोऽर्घ्ये पात्रे वह्न्यर्कशशिसञ्चयात् ।
मरीचिवृत्तेः कामाग्नावाहुतिश्चरुकार्पणम् ।।१०।।

मातृमेयौघसंघट्टः पूर्णाहुतिरनुत्तमः ।
वाग्भवेन्धनमात्मीयं शक्तिस्तुर्या निरञ्जना ।।११।।

दिनरात्रि–शुक्लकृष्ण–भावाभावादियुग्मता ।
सन्ध्योन्मनी कलाग्रासान्मनः श्रुक् हवनं लयः ।।१२।।

चिदावेशचमत्कारो विषयारणिवर्जितः ।
तत्त्वव्रातहठोत्तारो मध्यधाम्नि निरिन्धनः ।।१३।।

समनायां त्रिकोणेऽनुत्तरार्चा नादसंलयात् ।
तदुत्क्रमादुन्मनायां स्वयंज्योतिर्गमागमः ।।१४।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अकुलं मन्दिरं पीठः समना वाग्भवाकृतिः ।
अनाख्या देवतामूर्तिरर्चा बिन्द्वात्मना स्थितिः ॥१५॥

स्रोतोमज्जनप्रह्लादस्पर्शः स्वान्तर्हितः परः ।
श्रीपादुकातर्पणेन चरुकार्पणमुत्तमम् ॥१६॥

संविच्छक्तेरवस्थानां स्वमहिम्न्यासनं मतम् ।
नामरूपविकल्पानामर्पणं पाद्यमान्तरम् ॥१७॥

अर्घ्यं मलानां संशुद्धिश्चिदुद्रेकान्निरन्तरम् ।
कवलीकरणात् कल्प्यरूपस्याचमनं लयः ॥१८॥

स्नानं विलापनं सर्वावरणानां परेऽव्यये ।
भावानां शून्यतामर्शात् प्रवेशः कायप्रोञ्छनम् ॥१९॥

व्यापकत्वादिभिर्धर्मैर्धर्मिणश्च परात्मनः ।
अभेदसन्धानमयं दानमाभरणं शुभम् ॥२०॥

गन्धार्पणं देहनिष्ठे पार्थिवांशे चिदात्मता ।
पुष्पार्पणं चिदाकाशे देहाकाशनिमज्जनम् ॥२१॥

महाशून्येऽद्वये नैवेद्यार्पणं कुलयोजनात् ।
ताम्बूलं षोडशान्तेन्दुमण्डले चितिभावना ॥२२॥

वैखरीप्रमुखैर्वाग्भिः परव्योमलयः स्तवः ।
एवम् पूजा निर्विकल्पस्वभावामर्शनात्मिका ॥२४॥

चक्रचक्रेश्वरैकत्वान्वेषणं मण्डलार्चनम् ।
भासान्तरश्मिप्रस्फारान्निस्तरङ्गशिवात्मता ॥२५॥

। इति श्री–अर्चागर्भः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्रीमन्त्रविद्यागर्भः

संवेदनप्रस्तरः

अहं मन्त्रौघहृदयं महाहृदविवर्तनात् ।
मातृभैरवसंघट्टसारः स्पन्दः शिवोदयः ॥१॥

महाबिन्दुपदारूढाम्बिकाकिरणप्रस्तरः ।
मन्त्रविद्याकुलस्फारोऽनन्तोऽजो विश्वतोमुखः ॥२॥

कालकुलनामज्ञानचित्तनादकलामयः ।
बिन्दुजीवात्मको मन्त्रो नवव्यूहजगत्प्रथः ॥३॥

स्पन्दत्रितयरूपेच्छा त्रिकोणं वाग्भवात्मकम् ।
मरीचिचक्रं पिण्डेऽन्तश्चाग्निसोमात्मना द्विधा ॥४॥

वागेव शक्तिचक्रस्य हृदयं पञ्चधा स्थिता ।
उदेति मन्त्रग्रामोऽस्यां विद्यायोनिश्च कथ्यते ॥५॥

नवनित्यात्मनोन्मेषे स्वकलापरिषिञ्चिता ।
स्वयं गुर्वौघरूपेण स्फुटा विद्यावतारिणी ॥६॥

सा काले मन्त्ररूपेण देशे यन्त्रात्मना स्वयम् ।
षोडशी विग्रहाक्रान्ता भासयत्यखिलं जगत् ॥७॥

हृदयं सा परा सप्तदशी गह्वरमालिनी ।
चित्कला कलनातीता चतुर्धात्मविभेदिनी ॥८॥

प्रमातृभेदेऽपि सति यद्वदात्मा न भिद्यते ।
तथा हृदयरूपेण मन्त्रौघो द्वयवर्जितः ॥९॥

आणवश्चाथ शाक्तो वा शाम्भवो वा स्फुरत्यतः ।
मालिनीमधुमत्याख्या विद्या मन्त्रात्मना परा ॥१०॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नादधारां समारुह्य शाक्तोल्लासक्रमान्मनुः ।
नित्योदितमहाधाम्नि नित्यानां स्फारयत्यरम् ॥११॥

महामन्त्राक्षरे लीना नित्याषोडशदेवताः ।
तद्वीर्यस्फारसङ्कोचादुदयास्तमयास्ततः ॥१२॥

प्रत्यक्षरविभेदेन मालिनीमातृका भिदा ।
चिद्रश्मयो विभिद्यन्ते तस्मान्मन्त्रेषु भिन्नता ॥१३॥

षट्सिंहासनभेदेन षट्त्रिंशद्भैरवीक्रमात् ।
वाक्–काम–शक्तिप्रतिभाहृदयाः सप्तकोटयः ॥१४॥

अनन्ता मन्त्रविद्यार्था यथा स्फुरति योगिनाम् ।
विकल्पसंशुद्धिक्रमे बोधः स्फारानुयोजितः ॥१५॥

विद्या हृद्गह्वरक्षेत्रे बीजवच्छिवरोपिता ।
विश्वाकारप्रथाव्याप्त्या बोधिता मोचयत्यणून् ॥१६॥

भिद्यन्ते नांशवो भानोर्यद्वन्मन्त्रकलास्तथा ।
न भिन्ना मन्त्रवर्णेभ्यस्तयोर्यामलरूपता ॥१७॥

व्यक्तता कल्पनाधारारूढा मायीयविग्रहा ।
चितस्तदेव मूर्तत्वं सुभगोदेति तल्लयात् ॥१८॥

विद्यार्णाश्च विसर्गश्च बिन्दुश्चापि समन्वितः ।
तत्त्वातीतात्मना तत्त्वात्मना मन्त्रकलोदयः ॥१९॥

नादबिन्दुमयो मन्त्रो विमर्शः शक्तिबृंहितः ।
मनोन्मनपरव्योमान्तः स्वभासा स्फुटा चितिः ॥२०॥

महाशून्योद्भवे मन्त्रे सर्वकर्तृत्ववेत्तृते ।
पूर्णता नित्यता व्यापकता करणवत् स्फुटा ॥२१॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शिवालिङ्गाः कुलकौलाकुलशक्तिप्रचोदिताः ।
मन्त्रा मन्थांनसन्दीप्तास्तद्धाम प्रापयन्त्यणून् ॥२२॥

महाबिन्दुपदोत्तीर्णा बिन्दुविस्तारव्यञ्जिताः ।
नित्याहृदयमारूढा मन्त्रा बोधस्य कारणम् ॥२३॥

देव्यायुधानि पश्यन्त्या मूर्तिर्ज्ञानस्य द्वैधता ।
अस्त्रेषु द्विविधा संस्था तत्त्वानि क्रमशस्तथा ॥२४॥

रश्मिस्फारे यथा यन्त्रं तथा देहश्च संयमात् ।
मातृकाप्रसरो यन्त्रं सर्वं सर्वात्मकं ततः ॥२५॥

कालव्याप्तिप्रसरः

सृष्टिः कलायाः प्रसरः कालो देवस्य विग्रहः ।
बाह्याध्यात्मिकभेदेन भासते स च सक्रमः ॥१॥

प्रमाणात्मा यदा सूर्यः स्वकलाभिर्निषिञ्चति ।
मेयात्मेन्दुः कलारूढो भासयत्यमृतान् स्वतः ॥२॥

बहिः प्रतिपदारभ्य सञ्चरो यः कलानिधेः ।
प्रमातृतोन्मज्जनं तल्लयोऽन्तर्मेयसंविदः ॥३॥

प्रमाणोऽप्यनवच्छिन्नो मेयतां याति सर्वतः ।
पूर्णिमा बाह्यसोमेऽपि धत्ते पाञ्चदशीं कलाम् ॥४॥

षट्त्रिंशदङ्गुलिः प्राणो गमागमसमन्वितः ।
तत्त्वानामुदयस्तत्र चषके घटिकोदयः ॥५॥

तिथीनां तुटिमाश्रित्याद्यन्तार्थोऽस्पृष्टकालकः ।
विश्रामः स तु विज्ञेयो हंसस्तत्र विलीयते ॥६॥

दिवा प्रकाशो विश्रान्तिर्निशा सर्वत्र युग्मता ।
मेयाभासो रविस्तस्य प्रमातरि लयः शशिः ॥७॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वेत्तृवेद्यांशप्राबल्याद्दीर्घता तत्र लभ्यते।
उभयांशसमानस्तु कालो विषुवदुच्यते ॥८॥

प्राणसूर्यमपानेन्दुरर्पयत्यनुप्राणिनीम्।
कलामसितपक्षेऽन्त्ये स्वयं हंसे विलीयते ॥९॥

तुट्यर्धं पक्षसन्धिः स्यात् प्राणार्धेऽमा परेऽमृता।
अमांशस्य प्रतिपदि प्रवेशो ग्रहणं शुभम् ॥१०॥

वेशश्चन्द्रमसः प्राणे कलायाः प्रतिसंक्रमे।
सितोदयः पञ्चदशी सैवापानीयपूर्णता ॥११॥

दक्षद्वारेण बिन्दूश्चोत्क्षिप्तान् हरति भास्करः।
आधारचक्रेऽमावास्या समावेशे द्वयोरपि ॥१२॥

इडा सूर्यो देवयानम्पितृणाम्पिङ्गला च ग्लौः।
सोमः सिञ्चति पीयूष वामान्नाडीन् समाश्रयन् ॥१३॥

उत्क्षिप्तामृतकुण्डेऽस्मिन् शेते कुण्डलिनी शिवा।
शयनांशोऽसितो बोधः सितपक्षो विविच्यते ॥१४॥

रविस्थाने रवी रुद्धश्चन्द्रस्थाने क्षपाकरः।
नाप्नोति भुजगी बिन्दून् क्षिप्तान् जागर्ति तत्क्षणम् ॥१५॥

वलयाकारतां त्यक्त्वा बैन्दवं चन्द्रमण्डलम्।
प्रयाति तत्र सम्पर्कः शिवेन सह जायते ॥१६॥

कामेश्वर्यादिचित्रान्तनित्यानामुदयक्रमः।
तिथिमाश्रित्य नित्यानां पूजाकालस्तदावधिः ॥१७॥

चित्रादिभिः पूजयति कृष्णे मेयः प्रमारविम्।
कालो राश्युदयो वर्षोदयो द्वादशराशिभिः ॥१८॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

देवानां दक्षिणे षट्कमम्बिकायास्तु वामतः ।
देव्यायनं शान्तचक्रे नाडीतो भास्करक्रमे ॥१९॥

राशिचारे शुक्लपक्षे हानं कृष्णे तु सङ्ग्रहः ।
यान्त्यायान्ति कला राशेर्भास्करे प्रतिसंक्रमे ॥२०॥

शान्ते तु विषुवत्कालो नाड्यन्तस्तदनु क्रमः ।
सृष्ट्युन्मुखो मनस्त्वात्मा शान्तचक्रकुले स्थितः ॥२१॥

पिण्डब्रह्माण्डयोः साम्याद्यथैकत्र तथा परे ।
शाम्भवीशम्भुसंघट्टे त्रिशतं षष्टिरंशवः ॥२२॥

पिण्डे चित्तस्वरूपेण भूतान् कल्पयति प्रभुः ।
षट्पञ्चाशद्धरायां द्वापञ्चाशत्सलिले तथा ॥२३॥

द्विषष्टिरग्नौ नक्षत्रद्विगुणं तु समीरणे ।
आकाशे तत्त्वद्विगुणं चतुष्षष्टिश्च चेतसि ॥२४॥

अकुलस्य कुलेश्वर्या रश्मयो बोधहेतवः ।
नवात्मादिपरेशान्तालिङ्गि ताः क्रमदेवताः ॥२५॥

सारप्रस्तरः

भावाम्नायनिगर्भार्थकौलार्थपरिनिष्ठितः ।
रहस्यार्थमहार्थादिद्योतितश्चिद्वपुर्मनुः ॥१॥

स्फारो वागर्थविस्तारः सङ्कोचस्त्रिपुराभगः ।
कुलकौलमयं बीजं मन्त्रदेहस्य कारणम् ॥२॥

शक्तिबीजं गह्वरान्तं दिक्कालाभासवर्जितम् ।
तदुन्मेषनिमेषात्म वियदग्निस्वरूपतः ॥३॥

ईशनं शक्तिहृदयं विमर्शस्तन्निफालनम् ।
बिन्दुना सर्वसंघट्ट उल्लासो बीजभावतः ॥४॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऊर्ध्वबिन्दुः परावक्त्रं शिवो वैसर्गिकी कला।
कुचयुग्मतया नादबिन्द्वात्मा वाग्भवोदयः ॥५॥

बिन्दुरेव विसर्गात्मा बाह्यस्फारो द्वयान्वितः।
पिण्डस्तस्मात् सारतया हृत्स्वभावो निगद्यते ॥६॥

बिन्दुर्भानुः शिवः संविच्चितिः कोषतया स्फुटाः।
बाह्यान्तरविभेदेन लयक्षयस्वभावितः ॥७॥

सार्धचतस्रवलया त्रिगुणा नादविग्रहा।
नवके मिथुनस्यैतन्मन्त्राणां भाव उच्यते ॥८॥

ख–कू–मे–म–क्रमाद् विद्यावतारो युगसंक्रमे।
त्र्यम्बकामर्ददुर्वासाक्रमाच्छ्श्रीकण्ठभासितात् ॥९॥

महाभूतात्मकं विश्वं विद्यावर्णेषु गुम्फितम्।
तदहन्तासमापक्ष्या विद्यादेहः प्रवर्तते ॥१०॥

गुरुशिष्यतया साक्षाच्छ्श्रीकण्ठः सप्तधा स्फुटः।
निगर्भस्तस्य सम्बोधस्तदात्मन्यद्वयोदयः ॥११॥

चतुरस्रमर्धचन्द्रस्त्रिकोणं बिन्दवश्च षट्।
वृत्तं महाभूतयन्त्रं सङ्केताय निदर्श्यते ॥१२॥

मन्त्ररश्मिसमायोगाद्देवताविग्रहो यथा।
तत्तत्कोणारसंघट्टाद्यन्त्राणि विविधान्यपि ॥१३॥

अ–इ–उ–ऋ–लृ–वर्णेषु भूतानां बीजसंस्थितिः।
अनुत्तरकलोद्रेकात्तदतीतं निरञ्जनम् ॥१४॥

बिन्द्वादिभूपुरं यावद्रश्मयः क्रमशः स्फुटाः।
वैखरीचक्रप्रस्तारः पूर्वाम्नायो निगद्यते ॥१५॥

स्थितिर्निर्नादमयं चक्रं पश्यन्ती पश्चिमो नव।
षडरस्तु द्वयोर्योगादुच्छुष्मो मध्यविस्तरः ॥१६॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनाख्यस्तु परारूपो महाबिन्दुर्निरुत्तरः ।
सर्वाम्नायात्मकं यन्त्रं नित्यायोन्यात्मकं ततः ॥१७॥

नित्यावतारो नाख्येयो रहस्यो गुरुवक्त्रगः ।
युग्म–संघट्ट षडरभेदान्नित्यामयं जगत् ॥१८॥

गणेशो विग्रहं सोमसूर्याग्निमयतां ग्रहः ।
सप्तविंशतितत्त्वानि नक्षत्रं गतियोगतः ॥१९॥

ओजोमूला धातवस्तु योगिन्यो डाकिनीमुखा ।
दश प्राणाश्च जीवश्च परेशो राशिनोच्यते ॥२०॥

वह्निस्त्रिकोणमेकान्तो गह्वरो हृदयान्तरः ।
वासिनी तु परातीता चण्डिका मन्त्रदेवता ॥२१॥

कौलिनी विश्वमयतो निगर्भाखिलदेवता ।
तुरीया त्रिपुरेत्याख्या हृदयं द्वितयात्मकम् ॥२२॥

महार्थो हृदयस्यायमष्टात्रिंशं निगद्यते ।
तद्रूपत्वान्न भावोऽयं स्फारादस्य महोदयः ॥२३॥

नाभावो न च भावोऽस्ति न कालः कलना कुतः ।
सर्वातीतः सर्वमयो वाङ्मयो नामवर्जितः ॥२४॥

षोडशक्रमलक्ष्योऽसावुन्मनातीत उच्यते ।
अप्रकाश्यो महागोप्यस्तदावेशाच्छिवोऽस्तु नः ॥२५॥

। इति श्रीमन्त्रविद्यागर्भः ।

॥ इति श्रीस्थानेश्वरविरचितस्तन्त्रहृद्गह्वरः ॥

■■■

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संवर्तस्तवः

प्रातःसवनम्

ध्यानम्

सोमसूर्यमहासन्धौ किञ्चिन्मात्ररजःस्थितम्।
शुद्धसत्त्वात्मकं बालं वन्दे उषसि भैरवम्॥

जयति चिन्मयविश्वमयाद्वयः।
सृजनपालनसंहृतितूर्यगः॥
उदयलोपविविक्तचिदात्मना।
अहमि योऽष्टविधोऽस्ति विकल्पितः॥१॥

सकलनिष्कलमातृविलासकम्।
कुलपथोज्झितसाहसभावितम्॥
प्रमितिभावविनोदनभूमिकाम्।
असितकायमहं सततं भजे॥२॥

स्वयमनाख्यपदं लयमानयन्।
प्रकटयत्यसितोऽपि रुरुं तनुम्॥
परपदोच्छलनं वृषवाहनं।
प्रणिहितोऽस्मि चितेः प्रमितिं पदम्॥३॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्वविहितस्य डिमस्य चमत्कृतिम् ।
स्थितिपथं सहसा परिभावयन् ॥
अहिभुगासनचण्डमहेश्वरः ।
लसति वाङ्मनसाप्यतिगोचरः ॥४॥

अवतरत्यमलोऽपि कलाभुवि ।
प्रथितकर्तृपदं परिभावयन् ॥
स्वकृतभेदजकोपकलेवरः ।
गरुडवाहनभैरव मोक्षद ॥५॥

प्रकटमातृपथा विलयोन्मुखः ।
पुलकितोऽपि रसं न बहिष्कृतः ॥
स्वकृतलास्यचमत्कृतविग्रहः ।
जय तुरङ्गरथो मदभैरवः ॥६॥

जय चतुर्भुज पालनतत्परः ।
अहमि विश्वविकल्पनिधायकः ॥
प्रकटगुप्तरहस्यगणार्चितः ।
भरितभावमयो गजवाहनः ॥७॥

करणवर्गविविक्तचिदुद्द्रुतिम् ।
हरसि मान्तहकारमनुत्तरम् ॥
समधिरुह्य पिशाचवरं प्रभुः ।
प्रकटितो भव भीषणभैरव ॥८॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पुनरनाख्यपथं विनिवर्तितः ।
प्रमितिमेयसुमातृदशोज्झितः ॥
जयति पञ्चमुखासनभैरवः ।
भवभयान्तकरः सुखदायकः ॥९॥

माध्यन्दिनसवनम्

ध्यानम्

प्रचण्डे स्थितिमार्तण्डे कौमार्यङ्कस्थभैरवम् ।
प्रणमामीश्वरं हंसं सहस्रार्कसमप्रभम् ॥

कारकभावापन्नो लससि यदा स्वेच्छया स्वामिन् ।
मद्भावापन्नस्त्वं स्तौस्यात्मानं स्ववाग्भाभिः ॥१०॥

चिन्मात्रेऽप्याकाशे नर्तक आत्मा स्वकीयरङ्गेऽस्मिन् ।
वटुकादिलोलभावैः स्वस्वातन्त्र्याच्चकास्ति मे स्वामिन् ॥११॥

निगिरसि विश्वविकल्पं क्रममुल्लङ्घ्य कायमाविष्टः ।
झगिति चमत्कृत्या त्वं प्रकटयसि पुनर्जगद्भावम् ॥१२॥

न्यक्कृतषोढानन्दश्चिदात्मभावेनोच्छलन्सततम् ।
विश्वाकारः प्रथमो मन्नाथ आकाशभैरवो देवः ॥१३॥

भेदस्पर्शो घोरः प्रतिबिम्बतयोल्लसत्सकलम् ।
आसिञ्च्यात्मस्वरूपं संविन्मरीचिभिर्बाह्यम् ॥१४॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बहुरूपः सन् रुद्रस्तुर्यातीत आभासि निष्कलोऽप्येकः ।
स्वच्छन्दस्त्वं वन्द्यः जगच्छमशाननिविष्टानाम् ॥१५॥

प्रत्याभासं चेत्यं चिदभिन्नं सद्बाह्यतया विलसत् ।
स्वात्मन्युपसंहर्ता विमर्शभैरवीकायमाश्लिष्टः ॥१६॥

षोढोल्लासस्वरूपो जगदानन्दभरितरसस्वभावः ।
प्रथमप्रकाशोऽनुत्तरस्य स्फुरति स्वयमानन्दभैरवो देवः ॥१७॥

ज्ञानस्वप्नाविवेकैस्त्रिधावभातः स्वयंविमर्शस्त्वम् ।
मितिमेयमातृभावैः क्रमाश्लिष्टैरनाख्यान्तैः ॥१८॥

सृष्टिस्थितिलयकर्ता मथ्नासि त्वं विभज्य चिद्रूपम् ।
चण्डोग्रघोरकायो मन्थानो मे हृदयमध्यस्थः ॥१९॥

क्षणमप्यस्पन्दात्मन्महाकालोऽपि विवर्तमानस्त्वम् ।
स्पन्दात्मैकस्वभावः शान्तोऽपि चलन् लक्षितो बहुधा ॥२०॥

उपसंहरसि विकल्पं पुनरपि बहिष्करोषि स्वात्मानम् ।
विश्वमयास्तव भासा विश्वोत्तीर्णोऽपि स्वयं महाकाल ॥२१॥

परिवृतकलनो नवरणनाङ्कित भैरव्यौघसमावृतः ।
पाशाङ्कुशवरशूलधरो भवभयभञ्जननित्यरतः ॥२२॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिहृतकलनो लोकोल्लङ्घनविभवविकल्पविलेहकः।
जय जय वामेश्यालिङ्गितस्तुम्बुरुसोमव्रतभैरव ॥२३॥
रविशशिहुतभुक्करकृतसदनेऽष्टाष्टकखेचर्यावृतनिलये।
रतिशेखरमण्डलनवतत्त्वेश्वर भैरवसद्भावयुते ॥२४॥

बडवानलज्वालाकुलकाये प्रथतेऽष्टादशबाहुयुतः।
नववक्त्रासितभैरवदेवः परमोक्षैकनिदानमयः ॥२५॥

बहुरूपोऽप्यरूपोऽनेजन्नेजस्यजायमानश्च त्वं जातः।
आत्मनि विलाप्य सर्वं सङ्कर्षिण्यै चरुकतया जुहोष्यात्मानम् ॥२६॥

विमलबोधतनुर्जगदानन्दभरितो विकल्प्यात्मानम्।
क्रमकेलिकालिकाभिर्मिथुननिरतः परमस्वतन्त्रः ॥२७॥

सायंसवनम्

ध्यानम्

भानावस्तङ्गते शून्ये निशानथोदयात् पुरा।
प्रौढाङ्कस्थमहं वन्दे भैरवं पीठनायकम् ॥

प्लोषसि बाह्यविकल्पं कालं मृत्युं ग्रसस्युग्र।
अङ्गुष्ठाद्द्वादशान्तं चिदात्मतया भासि कायेऽस्मिन् ॥२८॥

कालाग्निरुद्ररूपो होता हविश्च स्वयं हवनं।
मत्पाशविलयदक्षो द्वैतभयाद्रक्षको जयति ॥२९॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संप्लावयसि स्वदग्धं बाह्यविकल्पं रसोद्रेकात् ।
अमृतेश चिन्नेत्रः उद्यमरूपो भेदविमर्दः ॥३०॥
सर्वाक्षचक्रद्वारा बहिरुल्लासेऽप्यनुत्तरप्रथन–
मात्रस्वभावः स्वामिन् भर रमस्व वमनशीलस्त्वम् ॥३१॥

कालग्रसनोग्रतपःस्फारितहृदयाह्लादमूर्त्तात्मा ।
खरसाग्निभावविचित्रो यस्य वपुर्वियद्व्यापि ॥३२॥

मृत्युर्भेदप्रथनं विकल्पप्रसरस्तवाण्डभावौघः ।
कुलपथभास्करभैरव मदणुतां दह मार्त्तण्ड ॥३३॥

कल्पान्तवह्निज्वालाव्याप्ते विलीने कारकभावे ।
उच्छिष्टसंविदग्नेस्त्वं विश्वरूपोऽसि साक्षिभूतः ॥३४॥

कालस्य ग्रासयोगे प्राणाग्निमालम्ब्य निरतानाम् ।
उच्छुष्म मोक्षदाता द्वैताद्वैतादिकल्पनाबन्धात् ॥३५॥

प्रलयाग्निज्वलितरूप रुद्रकोपाग्निप्रकटरूप ।
कामाख्यधामनिविष्ट बडवाग्निधृतमूर्त्तभाव ! ॥३६॥

ज्वल ज्वल संवत्र्तनाथ दह दह भेदमतिं समूलाम् ।
वस वस स्वाधिष्ठाने विलापय हृदयं द्वादशान्ते ॥३७॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निशीथसवनम्

ध्यानम्

पराह्लादरसोद्रेकजगदानन्दकारणम्।
वन्दे सोमरसाप्लुष्टभैरवं भयभञ्जनम्॥

विश्वात्मना प्रविविक्तैरविद्यात्मना भास्यवस्थाभेदात्।
प्रस्पन्दतया हृदि मे रागात्मना प्रथसे मनसि ॥३८॥

प्रतिवाच्यं त्वद्रूपं प्रतिशब्दं त्वत्स्फुरणं,
प्रतिकायं त्वद्भ्रमणं प्रतिविकल्पं त्वदुद्बोधः ॥३९॥

नामार्थबहुविकल्पैः क्रीडस्यतोऽसि महादेवः।
यन्मयि मत्त्वं भाति तदभिन्नतयासि त्वं भातः ॥४०॥

उदयलयमयः सन्निर्विकल्पस्वभावः।
कवलितजगदात्मा मालिनीमन्त्रगर्भः ॥४१॥

प्रथयति बहुरूपान् स्वेच्छयाच्छादितः सन्।
ह–स–ख–फ–र–भगान्तो बिन्दुरूपो महेशः ॥४२॥

प्रतिविषयविकल्पैः कल्पितस्त्वं कपाली।
रसकरनिजभावैर्भावितश्चिन्मरीचिः॥
विविधभवविडम्बैर्नर्तसे सप्तजिह्वः।
विमलचितिविलासात् स्वप्रकाशादभिन्नः ॥४३॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विगलितपशुभावो भैरवोऽहं शिवोऽहम् ।
सकलकरणचक्रेश्वर्यधिष्ठानकायः ॥
विकसितनयनः सन्निर्विकल्पे निषण्णः ।
भवडिमरसपूर्णो भैरवोऽहं शिवोऽहम् ॥४४॥

विहितकुसुमचर्यं भैरवीमण्डलस्थं ।
परिहृततनुभावं वीक्ष्य मां व्योमचित्तम् ॥
झटिति करणवाहात् प्राविशत् कायमध्ये ।
स्वयमकृतवचोभिः स्वात्मख्यातिं चकार ॥४५॥

प्रकटितनवमेघो भैरवोऽनुग्रहार्थम् ।
विगलितपशुभावान् साधकान् शक्तिपातैः ॥
भरितपरमभावैर्वाग्भिरख्यापयद्यत् ।
सकृदपि परिपाठाद् भैरवः स्यान्मनुष्यः ॥४६॥

वक्राङ्कनिलयं देवं मालिनीमातृकावपुः ।
संवर्तं सततं वन्दे सृष्ट्युन्मुखकुलेश्वरम् ॥४७॥

॥ इति स्थानेश्वरमुखोद्गीर्णः संवर्तस्तवः ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सन्दर्भग्रन्थसूची

अय्यर, को.अ. (सं.) (१९६५), वाक्यपदीयम् (स्वोपज्ञ वृत्ति तथा हरिवृषभकृत पद्धतिसहित), प्रथम भाग, पुना : डेक्कन कलेज।

अवस्थी, शिवशङ्कर (१९७०), भूमिका, प्रत्यभिज्ञाहृदयम् (हिन्दीव्याख्यासहित), चौखम्बा संस्कृत सिरीज अफिस वाराणसी।

..........................आकाशभैरवकल्प, अप्रकाशित पाण्डुलिपि, राष्ट्रिय अभिलेखालय, काठमाडौं।

आयङ्गर, एच्.आइ. रङ्गस्वामी (१९५०), शैव परिभाषा, ज्ञानशिवाचार्य विरचिता, ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टिच्यूट पब्लिकेशन्स, संस्कृत सिरीज नं. ५०, मैसूर।

एवेलोन, आर्थर (सं.) (१९७७ ई.), महानिर्वाणतन्त्र, दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।

कक, रामचन्द्र, भट्ट, हरदत्त (सं.), श्रीविद्यार्णवतन्त्र, भाग १ (१९३२), भाग २ (१९३७), श्रीनगर–काश्मीर।

कविराज, गोपीनाथ (सं.) (१९७०), विरूपाक्षपञ्चाशिका (विद्याचक्रवर्तीकृत विवृत्तिसहित), तन्त्रसंग्रह भाग १ में संगृहीत, वाराणसी : वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी।

कविराज, म.म गोपीनाथ (१९७२), तान्त्रिक साहित्य, हिन्दी समिति ग्रन्थमाला २००, महात्मा गान्धी मार्ग, लखनऊ।

कुप्पुस्वामी, ए. (सं.) (१९७६), सौन्दर्यलहरी (लक्ष्मीधरा, सौन्दर्यमोदिनी, अरुणामोदिनी आदि व्याख्यासहित), मद्रास : कुप्पुस्वामी, ए.।

कौल, मधुसूदन (सं.) (१८९२), स्वच्छन्दतन्त्र, मुम्बई : निर्णय सागर प्रेस।

कौल, मधुसूदन (१९१८), श्रीतन्त्रालोक, जयरथकृत विवेकव्याख्यासहित), कश्मीर शैवतन्त्र सिरीज, श्रीनगर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कौल, मधुसूदन (सं.) (१९२१), मालिनीविजयोत्तरतन्त्र (अभिनवगुप्तकृत वार्तिकसहित), श्रीनगर : काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावलि ।

कौल, मधुसूदन (सं.) (१९२६ र १९३९), नेत्रतन्त्र (उद्योतव्याख्यासहित १ र २ खण्ड), श्रीनगर : काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावलि ।

कौल, मधुसूदन (सं.) (१९३८—१९४३), ईश्वरप्रत्यभिज्ञा (अभिनवगुप्तकृत विवृत्तिविमर्शिनीसहित तीन भाग), श्रीनगर : काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावलि ।

गिरि, स्वामीकालिकानन्द (१९८६), सुभगोदयस्तोत्र (अमृतकारिका र अन्वयार्थबोधिनीसहित), आनन्दभवन ग्रन्थमाला १३, श्री स्वामीकाशिकानन्दजी ट्रष्ट, वाराणसी ।

गौड, रामस्वरूप (सं.), (ई.सं.१९९०), अथर्ववेद (सायणभाष्यसहित), वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन ।

चटर्जी, जे.सी. (सं.) (१९१३), स्पन्दकारिका (कल्लट र रामकण्ठको वृत्तिसहित), श्रीनगर : काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावलि ।

चटर्जी, जे.सी. (सं.) (१९१६), शिवसूत्र (भास्करकृत वार्तिकसहित), श्रीनगर : काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावलि, प्रत्नविद्याप्रकाश कार्यालय ।

चतुर्वेदी, राधेश्याम (सं.) (१९८६), शिवदृष्टि (उत्पलदेवकृत वृत्तिसहित), वाराणसी : वाराणसेय संस्कृत संस्थान ।

ज.ब.रा., धनशमशेर (वि.सं.२०२०), मन्त्रविद्यारहस्यम्, काठमाडौं ।

............................जयद्रथयामल (कालसङ्कर्षिणीकल्प), अप्रकाशित पाण्डुलिपि, राष्ट्रिय अभिलेखालय, काठमाडौं।

झा, किशोरनाथ(सं.) (१९७६ ई.), महाकालसंहिता (गुह्यकालीखण्ड), इलाहावाद : गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ ।

तीर्थ, त्रिविक्रम (सं.) (१९३६), चिद्गगनचन्द्रिका, कलकत्ता : आगमानुसन्धान समिति ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्रिपाठी, रामप्रसाद (सं.), (१९८०), रुद्रयामलतन्त्र, वाराणसी : सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय।

दीक्षित, रामेश्वर (सं.) (१९४५), शिवमहिम्नस्तोत्र, दिल्ली, कमल पुस्तकालय।

द्विवेद, व्रजवल्लभ (सं.) (१९८३), लुप्तागमसङ्ग्रह (भाग २), उपोद्घात, वाराणसी : सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय।

द्विवेद, व्रजवल्लभ (सं.) (१९८४), नित्याषोडशिकार्णव (ऋजुविमर्शिनी और अर्थरत्नावलीसहित), वाराणसी : सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय।

द्विवेदः, व्रजवल्लभ (सं.) (१९८४), विज्ञानभैरव (द्वितीय संस्करण), वाराणसी : मोतीलाल बनारसीदास।

द्विवेद, व्रजवल्लभ (सं.) (१९८८), अष्टप्रकरण, उपोद्घात, वाराणसी : सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय।

द्विवेद, व्रजवल्लभ (सं.) (१९८८), योगिनीहृदय (अमृतानन्दयोगिकृत दीपिकासहित), वाराणसी : मोतीलाल बनारसीदास

द्विवेद, व्रजवल्लभ (सं.) (१९९२), महार्थमञ्जरी (महेश्वरानन्दप्रणीत स्वोपज्ञ परिमल व्याख्यासहित), वाराणसी : सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय।

द्विवेदी, श्यामाकान्त (सं.) (१९९७), कामकलाविलास (चिद्वल्लीसहित), वाराणसी : चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन।

पटवर्धन, रामकृष्णशास्त्री र शास्त्री, केशव (सं.) (१९८४), योगवार्तिक, विज्ञानभिक्षु, काशी : डाक्टर लाजव साख्य साबिह।

पणशीकर, वासुदेवलक्ष्मण (सं.) (१९९०), ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषदः, वाराणसी : चौखम्बा विद्याभवन।

पन्त, दिनेशराज (२०४३), गोरखाको इतिहास, दोस्रो भाग, वटु, काठमाडौँ

पाण्डेय, जनार्दन (१९७६), गोरक्षसंहिता, भाग १, सरस्वतीभवन ग्रन्थमाला १२०, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बार्के, महादेव (सं.) (१९८२), पारस्करगृह्यसूत्र, दिल्ली : मुन्शीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स।

बोडास, राजाराम तथा शिवराम गौरे (सं.) (१९४५), ऋग्वेद (सायणभाष्यसहित), बम्बई : बम्बई टेक्नोलोजिकल पब्लिकेसन फन्ड।

भट्ट, एन. आर. (२०२२), तन्त्रावतार, सारस्वती सुषमा, वर्ष २०, अङ्क १, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालयः, वाराणसी।

भट्टाचार्य, रामशंकर (सं.) (१९८५), पातञ्जलयोगदर्शन (पातञ्जलयोगसूत्र—व्यासभाष्य तथा हरिहरानन्द अरण्यकृत भाष्यसहित), दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।

भट्टाचार्य, विनयतोष (सं.) (१९३२), शक्तिसङ्गमतन्त्र (खण्ड ३), बरोदा : ओरिएन्टल इन्स्टिच्युट।

रेग्मी, डा. जगदीशचन्द्र, (२०४०), प्राचीन नेपाली संस्कृति, साझा प्रकाशन, काठमाडौं।

वज्राचार्य, धनवज्र (वि.सं. २०३०), लिच्छविकालका अभिलेख, काठमाडौँ : नेपाल र एसियाली अनुसन्धान केन्द्र।

विद्यारत्नः, तारानाथः तथा एवेलोन, आर्थर(सं.) (१९७५) कुलार्णवतन्त्रम्, दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।

.... शतपथब्राह्मण (सायणभाष्यसहित), द्वितीय संस्करण २००२, दिल्ली : नाग पब्लिशर्स।

शर्मा, कृष्णमूर्ति, (२०२२), आम्नायस्वरूपम्, सारस्वती सुषमा, वर्ष २, अङ्क १, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालयपत्रिका, वाराणसी।

शर्मा, बुद्धिसागर, (२०२५), बृहत्सूचीपत्र तन्त्रविषयक चतुर्थ भाग, पुरातत्त्व प्रकाशनमाला।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शास्त्री, मुकुन्दराम (सं.) (१९१८), परात्रीशिका (अभिनवगुप्तकृत विवृत्तिसहित), श्रीनगर : काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावलि।

शास्त्री, मुकुन्दराम (सं.) (१९१८), तन्त्रसार, अभिनवगुप्त, श्रीनगर : काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावलि।

शास्त्री, मुकुन्दराम (सं.) (१९१८), बोधपञ्चदशिका, अभिनवगुप्त, श्रीनगर : काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावलि।

शास्त्री, मुकुन्दराम (सं.) (१९१८), महानयप्रकाश, शितिकण्ठ श्रीनगर : काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावलि।

शास्त्री, हरगोविन्द (१९८२), अमरकोष (रामाश्रमीटीकासहित), चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

.... (वि.सं. २०४५), श्रीमद्भगवद्गीता, गोरखपुर : गीताप्रेस।

सिंह, जयदेव (सं.)(१९७९), शिवसूत्र (क्षेमराजकृत विमर्शिनीसहित), दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।

Bagchi, Prabodhchandra (1975), Studies in the Tantras, Vol. 1, Calcutta : University of Calcutta.

Briggs, George Weston. Gorakhnath and the Kanphata Yogis, Calcutta : Y.M.C.A. Publishing House.

Goudriaan, TSen (1979), HINDU TANTRISM

Keith, Arthur Berriedale (Ed./Trans.) (1920), ṚIGVEDA BRAHMANS : The AITAREYA AND KAUSīTAKI BRAHMAṆS of the RIGVEDA, Harvard University Press.

Oldenberg, Hermann(Ed./Trans.) (1892), THE GRIHYA-SÙTRAS part II, Oxford : Clarendon Press.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Pandey, Kanti Chandra (1963), Abhinavagpta, an Historical and Philosophical Study Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi.

Rastogi, Navajivan (1979), The Krama Tantricism of Kashmir. Motilal Banarasidass.

Regmi D.R. (1983), Inscriptions of Ancient Nepal. Abhinav Publications, New Delhi.

Sanderson, Alexis (1986), Mandala and Agamic Identity in the Trika of Kashmir. L' image eulte et Meditation DANS L' HINDVISME, Editions due CNRS, Paris.

Sanderson, Alexis (1990), The Visullisation of the Deities of the Trika. L' image eulte et Meditation DANS L' HINDVISME, Editions due CNRS, Paris.

Singh, Jai Dev (1982), Introduction to Siva Sutras, Motilal Banarsi dass.

Sircar, D.C. (1950), The sakta Pithas, Motilal Banarasidass.

■■■

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आचार्य डा. स्थानेश्वर तिमल्सिना

विमर्श फाउन्डेशन के संस्थापक डा. स्थानेश्वर तिमल्सिना का जन्म नेपाल के धादिंग जिले के नलाङ में हुआ था। वे पारम्परिक रूप से उनके गुरु प्रेम चेतन ब्रह्मचारी (बाग्लुङ, नेपाल) और शंकर चैतन्य भारती (कश्मीर) द्वारा सर्वाधिकार-सर्वसाम्राज्य दीक्षा द्वारा अभिषिक्त हुए। वे नेपाली सर्वाम्नाय तन्त्र परम्परा में शैवाचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं। प्रसिद्ध साधक खप्तड बाबा, जिनका जन्म कश्मीर में हुआ और जिन्होंने नेपाल को अपनी साधनाभूमि बनाया और यहीं पर उनका निधन हुआ, उनके योग गुरु थे। उपर्युक्त तन्त्र गुरुओं के अलावा उन्होंने पं. टंक प्रसाद तिमल्सिना, विद्यानाथ उपाध्याय भट्ट, महेशानन्द गिरि, रामानन्द गिरि, रामजी मालवीय, व्रजवल्लभ द्विवेदी और हेमेन्द्रनाथ चक्रवर्ती जैसे विद्वानों से नेपाल और वाराणसी में वेद, न्याय, मीमांसा, वेदान्त, शैव सिद्धान्त, त्रिक, महार्थ और अन्य शास्त्रों का अध्ययन किया। डा. स्थानेश्वर तिमल्सिना ने व्याकरण और तन्त्र में अपनी औपचारिक शिक्षा नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय के अन्तर्गत वाल्मीकि विद्यापीठ, काठमाण्डू और सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से प्राप्त की। उन्होंने मार्टिन लूथर विश्वविद्यालय, जर्मनी से शास्त्रीय भारतीय दर्शन में पीएचडी की उपाधि प्राप्त की। अपने शोध प्रबन्ध पर काम करते हुए डा. तिमल्सिना ने कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, सान्ता बारबरा और वाशिंगटन विश्वविद्यालय में पढ़ाया। सन् २००५ से उन्होंने सान डिएगो स्टेट यूनिवर्सिटी में धर्म अध्ययन विभाग और दर्शनशास्त्र विभाग में अध्यापन किया है। वह वर्तमान में स्टोनी ब्रुक विश्वविद्यालय, न्यूयोर्क में एशियाई और एशियाई-अमेरिकी अध्ययन विभाग में इंडिक स्टडीज के सम्मान्य अध्यक्ष हैं। विरासत के रूप में प्राप्त पारम्परिक ज्ञान को आधुनिक तरीके से संस्थागत करने के लिए वे लम्बे समय से समर्पित हैं। नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय में तन्त्र विभाग की स्थापना के समय से ही उनका यह लक्ष्य रहा है। वर्तमान में विश्वविद्यालय के प्रोफेसर के रूप में उनके कार्य ने शास्त्रीय परम्पराओं को वैश्विक शैक्षणिक मञ्च पर संवाद और बहस का विषय बना दिया है। विभिन्न सनातन विचारधाराओं से प्राप्त दार्शनिक ज्ञान को और अधिक प्रसारित करने के लिए, डा. तिमल्सिना ने सन् २०१९ में विमर्श फाउण्डेशन की स्थापना की और तब से वे इस वैश्विक मञ्च के माध्यम से नियमित रूप से प्राच्य ज्ञान की धारा का प्रसार कर रहे हैं।

VIMARSHA FOUNDATION
ऋतं च सत्यं च

9 789937 186827